मालवी लोकगीत

एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय

मं ग ल प्र का श न

गोविन्दराजियों का रास्ता, जयपुर

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक,
मंगल प्रकाशन
गोविन्दराजिया का रास्ता
जयपुर

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य— [illegible]
संशोधित मूल्य २०) [बीस रुपए]

मुद्रक—
मंगल प्रकाशन
(प्रेस विभाग)
जयपुर

अर्पण

लोकयात्रा की सहधर्मिणी

मेरी पत्नी

श्रीमती सूर्यकुमारी उपाध्याय

को

जो सामान्य भारतीय नारी की तरह अंध विश्वास,
अज्ञान, मूढ़ता, परम्परा से पोषित-पारिवारिक
गर्व, गुमान, ईर्ष्या, कुढ़न, आत्म-पीड़न,
ममता, मोह, जिद्द, उदारता और
संकीर्णता से ग्रस्त है ।

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना करने के पूर्व मौखिक परम्परा में प्रचलित मालवी के लोकगीतो की लिपिबद्ध सामग्री का अभाव था। श्री श्याम परमार के कुछ स्फुट लेखों का संग्रह मालवी 'लोकगीत' शीर्षक से अवश्य प्रकाशित हो चुका था। किन्तु उक्त संग्रह में मालवी के लगभग ६५–७० गीत प्राप्त हो सके थे। अपर्याप्त सामग्री के अभाव में मालवी लोकगीतों का विस्तृत अध्ययन करना सम्भव नही था। अत सर्व प्रथम मुझे अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ गीतों के सकलन करने में जुट जाना पडा। सकलन के कार्य में अनुलब्ध की उपलब्धि एव उपलब्ध सामग्री के शोधन के पश्चात् मालवी लोकगीतों की सांगोपाग विवेचना करने की चेष्टा की गई है। वैसे तो लोकगीतों का क्षेत्र अनन्त है और उनका जितना भी संग्रह किया जावे वह अपर्याप्त ही लगता है। फिर भी मेरा ऐसा विश्वास है कि मालव के लोक-जीवन से सम्बन्धित सर्वप्रचलित गीतों का सकलन करने में मुझे आंशिक सफलता अवश्य मिली है। प्राप्त लोक-गीतो को चार पुस्तकाओं में लिपिबद्ध कर प्रस्तुत प्रबन्ध के लिये प्रामाणिक आधार तैयार किया गया है। गीतो मे बालक, स्त्री और पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों का समावेश किया है। विभिन्न पत्र पत्रिकाओ में प्रकाशित कुछ मालवी लोकगीतों को सन्दर्भ के रूप में ग्रहण किया है।

यह तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि यह प्रयास मालवी लोकगीतों के अध्ययन की दृष्टि से मौलिक महत्व रखता है। भारतीय लोक संस्कृति की अक्षुण्ण एव निरन्तर प्रवाहित होने वाली धारा को व्रत, उत्सव और त्योहार एव परम्पराओं ने शाश्वत जीवन प्रदान किया है। मानवी भाव धारा और धर्म भावना के अविच्छिन्न समन्वय से भारतीय लोक-जीवन मे मन और बुद्धि का, हृदय और मस्तिष्क की एकात्मक सत्ता का प्रभाव इतनी गहराई से जम गया है कि वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने के लिये समाज शास्त्र, जाति तत्व, नृतत्व, भाषा विज्ञान एव लोक साहित्य से सम्बन्धित मनोविज्ञान, इतिहास, धर्म दर्शन, आदि विषयों के सिद्धान्तो का ज्ञान बहुत आवश्यक है। लोकगीतों के मर्म को समझने के लिये जहा तक वैज्ञानिक पद्धति के चिन्तन का प्रश्न है, मैंने भ्रमपूर्ण निष्कर्षों से बचने की चेष्टा की है और आवश्यकतानुसार परम्परा का ऐतिहासिक एव तुलनात्मक विवेचन भी किया है। किन्तु लोकगीत का विषय ऐसा है जहा तथ्य ग्रहण करने के लिये केवल वैज्ञानिक मस्तिष्क ही काम नहीं देता वरन् जन भावना के मर्म को समझने के लिये एक भावनाशील हृदय की आवश्यकता होती है। मैंने इस ग्रन्थ मे वैज्ञानिक पद्धति के साथ ही रसात्मक शैली को भी अपनाया है और उसका उद्देश्य भी स्पष्ट है कि मालवी लोकगीतो की सामान्य जानकारी प्रस्तुत करने के अतिरिक्त जन जीवन में व्याप्त भावनाओं का मूल्यांकन करना।

पंचम अध्याय

छठा अध्याय

सप्तम अध्याय

परिशिष्ठ

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

लोकगीतों का उद्‌गम

लोकगीता की स्रोतस्विनी के उद्‌गम-स्थल को जानने की जिज्ञासा जन-सामान्य की अपेक्षा अध्ययनशील मस्तिष्क को अधिक सोचने और छानबीन करने के लिये प्रेरित करती है। जिन लोकगीता की सार्वकालिक एव सार्वभौमिक सत्ता हैं, जिनके आकर्षण की छाया मे मानव-जीवन आन्दोलित होता रहता है उनकी सृष्टि का आदि-स्रोत कहाँ छिपा हुआ है यह निश्चित एव निभ्रान्त रूप से कहना कठिन है। मानवीय ज्ञान के अनन्त भडार इतिहास के अनेक पृष्ठा को उलट-फेर के पश्चात् भी लोकगीता के सृजन की तिथि को खोज निकालना किसी भी अन्वेषक के लिये सम्भव नही है। अतीत के सहस्त्र-युगो के अनावरण के पश्चात् भी लोकगीता की उत्पत्ति के क्षणा को किसी काल-विशेष की सीमा म नही बाधा जा सकता। मानव-हृदय जब कभी भी स्वानुभूति से प्रेरित सुख-सवेदना से आन्दोलित हुआ होगा, गाता के अज्ञात स्वर मनुष्य के अधरो पर गूँज उठे होगें। आनन्द की भावना से मानव-जीवन सर्वदा ही पोषित होता रहता है। अत आनन्द-भावना का मानव-जीवन के विकास की प्रमुख प्रवृत्ति ही माना जायेगा। इसकी मूल प्रेरणा है-मानव-हृदय की रसात्मक अनुभूति। इस रसात्मक अनुभूति का उद्वेलन हृदय की सकुचित सीमा को तोडकर जब वाणी द्वारा मुखरित होने की स्थिति मे पहुच जाता है तभी लोकगीता का स्रोत उमड पडता है, इस प्रकार लोकगीत आनन्द प्ररित मानव-हृदय की रसात्मक अनुभूति की रागमय अभिव्यक्ति है। पश्चिम के लोकगीत-चिन्तको ने लोकगीता को 'मानव हृदय का उद्वेलित एव स्वत स्फूर्जित सगीत कहा है।'[1] मनुष्य के हृदय मे-चाहे वह सभ्य हो या असभ्य, पठित हो या अपढ, स्वय की भावनाओ को प्रकट करने की इच्छा और क्षमता अवश्य रहती है। वह उनके उद्भव को उद्‌गीत करने की चेष्टा करता है। इस प्रयास मे उसकी रागात्मक प्रवृत्ति लयपूर्ण होकर गीत का स्वरूप धारण कर लेती है। महादेवी वर्मा द्वारा दी गई गीत की परिभाषा मे भी लोकगीता के उद्‌गम की इस सहज स्थिति का उद्‌घाटन हो जाता है।[2] सुख-दु खमयी भावावेश की अवस्था के चित्रण का माध्यम अश्रुपात, दीर्घनिश्वास, पुलक और मुस्कान आदि आनुभाविक, आगिक-चेष्टाओ तक ही सीमित न रहकर हर्ष और वेदना का स्वरूप जब कण्ठ के द्वारा साकार हो उठता है, तभी गीतो के

---

१ The primitive spontaneous music has been called folk Songs Encyclopaedia Britanica, vol 9, page 447

२ सुख दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है —विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ १४१।

स्वर फूट पड़ते हैं। ये गीत किसी कवि के नाम आदि-विना न रहा, अपितु सामान्य जनमानस की अज्ञात सृष्टि है। लोकगीतों के उद्गम से सम्बन्धित जिज्ञासा का देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा प्रस्तुत समाधान भावात्मक होते हुए भी यथातथ्य विश्लेषण के अधिक निकट है।

"कहा से आते हैं इतने गीत? स्मरण विस्मरण की आँख मिचौनी से, कुछ अट्टहास से और कुछ उदास हृदय से। जीवन के खेत में ये गीत उगते हैं। कल्पना भी अपना काम करती है, रागवृत्ति भी, भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी।"[1]

मानव हृदय में स्पन्दित होने वाले विविध भाव ही लोकगीतों के प्रेरणा स्रोत सिद्ध होते हैं। मनुष्य के अर्धचेतन मन में जीवन की छोटी-छोटी परिस्थितियाँ भावों की हल्की अभिव्यक्ति का स्पर्श पाकर कण्ठ-माधुर्य से सिक्त होकर मुखर हो उठती हैं, तथा वे लोकगीतों का स्वरूप धारण कर लेती हैं। लोक मानस का रचनाकार प्रकृति के [illegible] रहस्योद्घाटन का इच्छुक रहता है, और इसके द्वारा अपरिमित मनोरंजन भी सम्भव है। जीवन में मनुष्य को अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य में होकर गुजरना पड़ता है। अनुकूल परिस्थितियों से हृदय में उल्लास छलकने लगता है। लहलहाती हुई फसलों में अपने श्रम की सार्थकता को देख उसका हृदय आत्म-विभोर हो नृत्य करने लगता है। भावों का आनन्द आंगिक चेष्टाओं में व्यक्त होकर नृत्य बन जाता है और 'वाचिक' होकर लोकगीत। ऋतुओं के उत्सवों के समय नृत्य और गान का समन्वय हो जाता है। नृत्य और गान मानव-हृदय के आनन्द की अभिव्यक्ति के इस प्रकार माध्यम बन गये। आदिमानव के युग से लेकर आजतक मनुष्य की इस प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आया है। गान मनुष्य जीवन का एक स्वाभाविक अंग है। उसके लिये प्रकृति की यह एक शाश्वत देन है। सुख में गाकर वह उल्लसित होता है किन्तु केवल सुख ही गीतों की प्रेरणा को मुखर नहीं करता कष्ट एवं पीडाओं की अनुभूति भी लोकगीतों को जन्म देती है। लोकगीतों का निर्माण तो प्रायः कुछ ही व्यक्तियों के द्वारा होता है, किन्तु उनकी अनुभूति की व्यापकता जन-सामान्य के हृदय से मेल खाकर सार्वजनिक वस्तु बन जाती है। मानव हृदय का यह शाश्वत सत्य प्रायः देखने में आया है कि प्रणय-सम्बन्धी सहजवृत्ति की तरह गीत-सृजन की सहज वृत्ति भी जन-मानस में समान रूप से स्पन्दित होती है।[2]

इस प्रकार लोकगीतों के उद्गम का स्रोत ज्ञात होते हुए भी अज्ञात है। भारतीय लोकगीतों के प्रति सर्वप्रथम आकर्षण उत्पन्न करने वाले गुजरात के लोकगीत संग्राहक स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी ने लोकगीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है —

"धरतीना कोई अधारा पडोमाथी वहा आवता झरणानु मूल जेम कोई क्दापि शोधा शक्यु नथी, तेम आ लोकगीतोना उत्पत्ति स्थान पण अणशोध्या ज रह्या छे[3]

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भी उक्त कथन का भावानुवाद हिन्दी में प्रस्तुत कर लोकगीतों के उद्गम-स्थल पर अपने विचार प्रकट किये —

---

१ धरती गाती है पृष्ठ १७८।
२ Humour in American Songs, preface, page–7
३ रढ़ियाली रात, भाग १, भूमिका, पृष्ठ ६।

"जैसे कोई नदी किसी घोर अंधकारमयी गुफा मे बहकर आती हो और किसी को उसके उद्गम का पता न हो, ठीक यही दशा गीता की है।"[1]

लोकगीतों की परिभाषा

लोकगीतो के उद्गम एव सृजन-सम्बन्धी मान्यताओ के आधार पर लोकगीतो के अध्येता एव विवेचनकर्ताओ ने लोकगीत-सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाएँ निर्धारित की हैं। व्यक्ति के मनोभाव लोक से सम्बन्धित होकर सामूहिक तत्वो के अनुरूप ढल जाते है, अत लोकगीतो के निर्माण का कारण व्यक्ति नही जन-समूह है। नृतत्वशास्त्र एव समाज विज्ञान के विशेषज्ञो ने आदिम समाज की मानसिक एव सामाजिक प्रवृत्तियो का अध्ययन करते समय आदिवासियो द्वारा गेय गीतो को लोकगीतो की सज्ञा प्रदान की है। 'लोक' शब्द का पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द फोक को ग्रहण कर विवेचना करना सुविधामय रहेगा। सभ्य राष्ट्रो मे बसने वाली असभ्य जगली एव आदिम जातियो की परम्परा रीति-रिवाज एव अध विश्वास आदि के लिये डब्ल्यू० जे० थाम्स ने सन् १८४६ मे सर्व प्रथम 'फोक-लोअर' का प्रयोग किया था।[2] उस समय मे आदिम जातियो के गीत एव नृत्य आदि के लिये 'फोक म्यूजिक' या फोक साग्स' एव 'फोक डास' शब्द प्रयोग मे आने लगे। अंग्रेजी का 'फोक' शब्द जर्मन भाषा के Volkslied का भाषातर जान पडता है। उक्त शब्द को लोकगीत के पर्यायवाची शब्द के रूप म ग्रहण करने मे अनेक पाश्चात्य लोकगीत-प्रेमियो को भी कुछ सकोच और अरुचि है। वे इसे असुन्दर एव भद्दा शब्द मानने के साथ ही यह अनुभव करने लगे हैं कि इस शब्द से अप्रिय सकीर्णता ध्वनित होती है।[3] इसका कारण भी स्पष्ट है। गीतो के निर्माण की अन्त प्रेरणा सभ्य एव असभ्य व्यक्तियो मे समान रूप से पाई जाती है। अत आदिम जातियो के गीतो के लिये ही 'फोक साग्स' की प्रयसत्ता को सीमित रखना सकीर्णता एव अभिजात्य वर्ग के अभिमान का परिचायक हो सकता है। हिन्दी मे प्रचलित ग्राम गीत एव लोक गीत आदि शब्दो पर भी इसी दृष्टिकोण को लेकर विचार करना है।

यूरोप के लोकगीतो के अध्ययनकर्ता विद्वानो द्वारा निर्धारित लोकगीत की परिभाषा विचारणीय है। उन्होने असभ्य एव आदिम स्थिति के लोगो के सहज-स्फूर्जित सगीत को लोकगीतो की परिभाषा दी है। किन्तु यह परिभाषा सकुचित है। मानव हृदय मे अपने आप उमड कर सगीत मे प्रकट होने वाली भाव धारा को हम आदिम और आधुनिक, सभ्य और असभ्य, ग्राम और नगर आदि विभेदो मे रखकर विचार नही कर सकते। लोकगीत केवल आदिम जातियो की वस्तु नही हैं। आधुनिक विश्व के जन-मानस मे भी गीतो के रूप म अनन्त भाव-धाराओ की अभिव्यक्ति होती रहती है। अपने आप को सभ्य समझने वाले यूरोपीय देशो के नगर निवासियो की अभिजात्य परम्परा मे, सास्कृतिक गर्व के दम्भ और

---

१ कविता-कौमुदी, भाग ५, ग्रामगीत प्रकरण, पृष्ठ ११।
२ Encyclopaedia Britanica, vol 9, page446
३ Humour in American Songs, preface, Page 8

मह म नारी–हृदय की भावनाएं कुंठित होकर रह सकती हैं, किन्तु भारत में क्या ग्राम, क्या नगर, सभी जगह उत्सव–त्यौहार एवं मंगलमय प्रसंगों पर गीतों का स्वर रुक ही नहीं सकता। पश्चिम के विद्वानों का अनुकरण करके कतिपय भारतीय मनीषियों ने भी लोकगीतों की परिभाषा देते हुए भारी भूल की है।[1] भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में उक्त परिभाषा को स्वीकार नहीं किया जा सकता। लोकगीतों के सम्बन्ध में भारतीय लोक साहित्य के मर्मज्ञों ने कलात्मक ढंग से अपने विचार प्रकट किये हैं। इन विचारों में लोकगीतों की परिभाषा का कुछ आभास अवश्य मिल जाता है। किसी निश्चित परिभाषा का निर्धारण करने से पहिले लोकगीतों के सम्बन्ध में प्रकट किये गये कतिपय विचारों का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है —

- "आज तो एवा गीतनी वात थाय छे के जेनां रचनाराए कदी कागळ ने लेखण पकड्या नहीं होय, ए रचनारा कोण तनीज कोई ने खबर नहि हाय। आ प्रेमानन्द के नरसिंह महेतानी पूर्वे केटलो काल वीधा ने ए स्वरो थाप्या आवे छे तेनीय कोई कल्पना करी नहि शक्यु होय, एनु नाम लोकगीत।"[2] —मेघाणी

- 'ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है॥ लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्यों के, स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम गीत हैं" [3] —रामनरेश त्रिपाठी

- "आदिम मनुष्य–हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख दुख की कहानी इनमें चित्रित है।

  न जाने कितने काल को चीर कर ये गीत चले आ रहे हैं।

  काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता।

  किसी की कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया पर ये अमर हैं"[4]

  —स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी

- 'गीत लोकगीत भी होते हैं और साहित्यिक भी। लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं। और कुछ में वह व्यक्त भी रखता है। वे लोक भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनके साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है'[5] —गुलाबराय

---

१ 'A follk Song is a spontaneous out flow of the life of the people who live in a more or less primitive conditons' A Study in Orrison Folk lore –K B Das Intd page I

२ रढियाळी रात, भाग १, भूमिका पृष्ठ ६ (गुजराती)।

३ कविता–कौमुदी, भाग ५, ग्रामीणगीतों का परिचय प्रकरण, प्रस्तावना, पृष्ठ १२।

४ राजस्थान के लोक गीत, (पूर्वार्द्ध) प्रस्तावना, पृष्ठ १२।

५ काव्य के रूप पृष्ठ १२३।

"लोकगीत किसी सस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं"।[1] —देवेन्द्र सत्यार्थी

"गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं"।[2] —वासुदेवशरण अग्रवाल

 "ग्रामगीत सम्भवत वह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म या क्रीडा के ताल पर रचा गया है। गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरजन भी है" [3] —सुधांशु

 "लोकजीवन मे लोकगीतो की एक चिरतर धारा अनादिकाल से चली आ रही है। मेरे अपने विचार से ये लोकगीत मानव हृदय की प्रकृत भावनाओ की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन (ध्वनि) प्रधान होते हैं" [4] —शान्ति अवस्थी

"ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद है"[5] —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

 लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नही। वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास-प्रश्वास हैं। सहजानन्द मे से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सच्चिदानन्द मे विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाए हैं।[6]

—डॉ० सदाशिवकृष्ण फडके

उपरोक्त उद्धरणो मे लोकगीतो के सामान्य लक्षण एव अन्य विशेषताओ के वैविध विचार प्रकट किये गये हैं। इन विचारो का मन्थन करने पर लोकगीतो के सम्बन्ध मे निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं—

१ लोकगीतो में मानव हृदय की प्रकृत भावनाओ एव विभिन्न रागवृत्तियो की अभिव्यक्ति होती है।

२ भावो को प्रकट करने के लिए वाणी का जो आश्रय लिया जाता है वह लयात्मक होता है।

३ गान म सामूहिक प्रवृत्ति अधिक व्यापक है।

४ लोकगीतो का रचयिता अज्ञात होता है व्यक्ति विशेष की रचनाए भी सामूहिक भावनाओ मे ढलकर सामान्य हो जाती हैं।

५ लोकगीतो म मानवीय सभ्यता एव सस्कृति के विभिन्न चित्र अकित रहते हैं।

६ लोकगीतो से मनोरजन भी होता है।

---

१ आजकल (दिल्ली) सख्या ७, नवम्बर १९५१ का अक।

२ देवेन्द्र सत्यार्थी, धीरे बहो गगा, भूमिका, पृष्ठ ६।

३ जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धात पृष्ठ १७५।

४ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पत्रिका, लोक-सस्कृति अङ्क, सवत् २०१०, पृष्ठ ३७।

५ छत्तीसगढी लोकगीतों का परिचय, भूमिका, पष्ठ ५।

६ सम्मेलन-पत्रिका लोक-सस्कृति अक पृष्ठ २५०-५१।

लोकगीतों के सम्बन्ध में तथ्यों का जो विश्लेषण किया गया है, उसमें भावानुभूति एवं उसकी अभिव्यक्ति के तत्व ही प्रधान रूप से व्याप्त हैं। समस्त विश्व में मनुष्य का भौगोलिक एवं प्राकृतिक विभिन्नताओं के कारण जाति, विशेष रूप रंग एवं शरीरगत बाह्य आकृतियों में ढल जाना पड़ा हो, किन्तु प्रकृति की इस विविधता में भी मानवता के हृदय में भावनाओं का जो प्रकृत एवं स्वाभाविक स्पन्दन हुआ है, उसमें एक रूपता का पाया जाना मानव हृदय के शाश्वत एवं शुद्ध रूप को प्रकट करता है। लोकगीतों की मूल प्रेरणा का कारण समस्त रागात्मक प्रवृत्तियों को ही माना जावेगा जहाँ आदिम मानव की चेतन एवं अर्ध चेतन स्वानुभूति भी सहज ही अपने आप व्यक्त हो गई। पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों के लिये जो Spontaneous music की संज्ञा दी है, वह अत्यन्त ही सार्थक है एवं तथ्य चिंतन की गम्भीरता को प्रकट करती है। किन्तु मनोभावों के स्वतः स्फूर्जित होने का प्रभाव भी अपना महत्व रखता है। अतः लोकाभिव्यक्ति में संस्कार एवं परम्पराओं का आधार भी विचारणीय है। वर्ग विशेष अथवा जाति विशेष के संस्कार प्राकृतिक परिस्थियों के कारण भिन्न भिन्न हो सकते हैं। भारतीय लोकगीतों का अध्ययन करते समय इस तथ्य को लेकर ही विचार करना पड़ेगा। धार्मिक, आनुष्ठानिक एवं विभिन्न प्रसंगों पर गाये जाने वाले गीतों में जो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं, उनमें मानव की आदिम रागात्मक भावनाओं के साथ ही भारतीय प्रदेश में पल्लवित एवं पुष्पित संस्कारों की छाया को भी स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। लोकगीतों की सुनिश्चित परिभाषा निर्धारित करते समय, उसके ठीक-ठीक लक्षण का निर्देशन करते समय लोक परम्परा का अवश्य ध्यान में रखना होगा। लोकजीवन एवं लोकरीति की सामान्य और समष्टिगत पार्श्व भूमि में लोकगीतों को पहिचानने के लिये तमिल एवं सिंहाली विचारकों की निम्नलिखित मान्यताएं लोकगीतों के सर्वमान्य लक्षण स्वीकार करने सहायक सिद्ध होंगी —

लोकगीतों का व्याकरण यही कहता है कि—

१ गीतकर्ता अज्ञेय हो।
२ गीत तुक आदि नियमों का उल्लघन अवश्य करे।
३ अनादि काल से जनता जिसे अपनाती चली आ रही हो।
४ लय के साथ गाने योग्य हो[१]।

उपरोक्त उद्धरण में तुक आदि के लिये निर्धारित शास्त्रीय नियमों के उल्लघन की अनिवार्यता भी लोकगीत का एक लक्षण मानी गई है। लोकगीतों की भावना और उसकी अभिव्यक्ति का आधार ही सरलता एवं सहजता है जहां किसी भी प्रकार के कृत्रिम बंधनों के लिये कोई स्थान नहीं होता। व्यक्तित्व प्रधान रचनाओं में भी भाषा, भाव, शैली आदि के संबंध में बंधनों की अनिवार्यता अनावश्यक समझी जाती है अतः सामूहिक-चेतना और लोक भावना पर आधारित गीतों की अभिव्यक्ति में छन्द या रचना विधान की रूढ़िगत परम्परा को लेकर चलना संभव भी नहीं है। स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त वातावरण तो लोकगीत

---

१ तामिल कान्फ्रेन्स के वार्षिक अंक सोवनीर मे प्रकाशित अंश का 'दिनमणि' साप्ताहिक में दिया गया उद्धरण।

के निर्माण की प्रथम एव आवश्यक स्थिति है। लोकभावना जहाँ सभ्यतागत मिथ्या आडम्बरो और बधनो की चिता नही करती, वहाँ अभिव्यक्ति सबधी भाषा एव छद के शास्त्रीय नियमो के बधनो की ओर ध्यान देने की चेष्टा होगी, वह आशा करना भी व्यर्थ है। लोकगीतो के सम्बन्ध मे दिये गये विभिन्न विचारो के मथन से परिभाषा का निर्धारण किया जा सकता है। सक्षिप्त मे लोकगीत की परिभाषा यही हो सकती है —

सामान्य लोकजीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास ही फूट पडनेवाली मनोभावो की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।

'लोक' और 'ग्राम' शब्द का प्रयोग,

लोक-गीत की परिभाषा के साथ ही अग्रेजी शब्द Folk फोक के हिंदी समानार्थी शब्द पर विचार करना भी आवश्यक है। उक्त शब्द के लिये हिन्दी मे ग्राम, जन और लोक इन तीनो शब्दो का प्रयोग किया गया है। प० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के लोकगीतो का सकलन करने के क्षेत्र मे अग्रणी रहे हैं। उन्होने अग्रेजी के 'फोक साग' शब्द का अनुवाद *ग्रामगीत ही किया है। त्रिपाठीजी की तरह हिन्दी के अन्य विद्वानो ने* भी ग्रामगीत शब्द का प्रयोग कर त्रिपाठीजी का अनुकरण किया है। त्रिपाठीजी ने उक्त शब्द का प्रयोग सन् १९२९ के लगभग किया था।[1] और इसके पश्चात् देवेन्द्र सत्यार्थी और सुधाशु ने ग्रामगीत शब्द को ही अपनाया।[2] 'ग्राम' शब्द को अपनाने मे जहाँ तक भावुकता प्रश्न है उसका प्रयोग करना व्यक्ति-विशेष के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है, किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन एव भाषा विज्ञान की दृष्टि से किसी भी शब्द के प्रयोग मे उसकी एकरूपता का रहना आवश्यक है। ग्रामगीत शब्द मे लोकगीत शब्द की सी व्यापकता का अभाव है। ग्राम के अतिरिक्त ऐसा भी एक विस्तृत समाज है जिसकी अपनी धारणाए हैं, विश्वास है, गीत हैं। भारत की सम्पूर्ण मानवता का ग्राम और नगर की सीमा मे बाँधना उचित नही है। क्योकि साधारण जनता *केवल ग्राम तक ही सीमित नही है। लोक की सीमा बडी व्यापक है, व उसमे ग्राम और नगर* का समन्वय अविच्छिन्न है। 'लोक' शब्द ही 'फोक' का सम्यक पर्यायवाची शब्द हो सकता है। इस शब्द की व्यापकता एव प्रामाणिक प्रयोग के आधार के लिये पृष्ठभूमि भी है। भरत मुनि ने लोकधर्मीय परम्पराओ एव रूढियो को अपनाने का विशेष आग्रह किया है।[3] लोक हमारे जीवन का महा-समुद्र है लोक एव लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप *मानव है।[4] लोकगीतो में मानव ने भूमि और जन दोनो की सहति पर ही अपनी भावनाओ*

१ कविता-कौमुदी, भाग ५ का उपशीर्षक—ग्रामगीत

२ अ-सत्यार्थी का लेख—हमारे ग्रामगीत, हस, फरवरी ३६।
   ब-सुधाशु, जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धात, ग्रामगीत का मम शीर्षक, आठवा अध्याय, (१९४२)।

३ लोकवृत्तानुकरण नाटयमेतन्मया कृतम् अध्याय १,श्लोक ११२, (नाटय शास्त्र) महापुण्य प्रशस्तम् लोकानाम् नयनोत्सवम् ३०।६८०।३८।३३ (वही)

४ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'लोक का प्रत्यक्ष दर्शन', शीर्षक लेख।

को सार्वभौमिक रूप मे मुखरित किया है। मत लोकगीत की व्यापक सत्ता का अस्वीकार कर देने मे भावावेशमयी मन स्थिति के साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को न अपनाने का आग्रह भी प्रकट होता है। इस संकुचित दृष्टिकोण की ओर स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक का ध्यान पहले गया और उन्होने हिन्दी म ग्रामगीत शब्द की अपेक्षा लोकगीत शब्द का प्रयोग करना ही उपयुक्त माना।[1] आज उक्त शब्द के प्रयोग की समस्या का समाधान प्राय हो चुका है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी एव आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'लोक' शब्द के प्रयोग की स्थिरता को स्वीकार किया है। आचार्य द्विवेदी जी ने लोकवार्ता लोकसस्कृति लोक साहित्य, लोकशिल्प आदि शब्दों का प्रयोग कर ग्राम और नगर के भेद को अस्वीकार किया है।[2] भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाएँ इस दिशा मे अधिक जागरूक दिखाई देती हैं। स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी ने गुजराती म 'लोकगीत' शब्द का ही प्रयोग किया है यद्यपि उन्होने इस दिशा मे त्रिपाठी जी से पूर्व ही सन् १६२५ तक पर्याप्त कार्य सम्पन्न कर लिया था।[3] मराठी में लोकसाहित्य के अध्ययन कर्ताओ ने भी 'लोक शब्द का प्रयोग करना ही उपयुक्त समझा है। लोक साहित्याचें लेणं।[4] वरहाडी लोकगीत आदि[5] पुस्तको के शीर्षक एव लोक-साहित्य के सम्बन्ध मे दी गई परिभाषा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।[6] किन्तु त्रिपाठीजी तो आज भी 'ग्रामगीत' शब्द के प्रयोग को नही छोडने के आग्रह पर अटल है।[7]

जनगीत एव कला–गीत

जन' शब्द भी लोक शब्द का पर्यायवाची माना जाता है। डा० मोतीचन्द ने कुछ स्थलो पर फोक के लिये जन शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु जन शब्द मे लोक जैसी व्यापकता नही है, और इस शब्द की व्युत्पत्ति पर यदि विचार किया जाय तो उसकी

१ कुछ लोगो ने लोकगीतो को ग्रामगीत भी कहा है, परन्तु हमारे ख्याल से लोकगीतों को ग्राम की सकुचित सीमा मे बाधना, उनके व्यापकत्व को कम करना है। ग्राम और नगर के भेद अर्वाचीन काल मे बढे हैं। गीतों की रचना मे ग्राम और नगर का इतना हाथ नहीं है जितना कि सवसाधारण जनता लोक का। —राजस्थानी लोकगीत—पृष्ठ १, फुट नोट।

२ जनपद खण्ड १, अक १, पृष्ठ ६६।

३ रढियाली रात, भाग १ परिचय शीर्षक प्रस्तावना, पृष्ठ ५–६।

४ सौ० मालती दाण्डेकर द्वारा लिखित।

५ प्रा० अ० गोरे द्वारा लिखित।

६ लोकाचें लोकसाठीच रचले गेलले व लोकानींच रचलेले तें लोक साहित्य। —लोकसाहित्याचें लेणं, पृष्ठ १।

७ मने गीतों का नामकरण ग्रामगीत शब्द से किया है। क्योंकि गीत तो ग्रामों की सम्पत्ति हैं। शहरों मे तो ये गये हैं, जन्मे नहीं इससे मैं उचित समझता हूँ कि ग्रामों की यह यादगार ग्रामगीत शब्द द्वारा स्थायी हो जाय। —जनपद, अक १, पृष्ठ ११।

अर्थ-सत्ता इतनी व्यापक हो जाती है कि विश्व मे उत्पन्न होने वाले सभी जड और चेतन तत्वो का इसमे समावेश हो जाता है, क्योकि संस्कृत मे 'जन्' धातु का अर्थ उत्पन्न होना होता है।

अत 'फोक' शब्द की वाछनीय अर्थ-सत्ता से 'जन' शब्द शून्य है, जिस प्रकार 'ग्राम' शब्द मे अर्थ की उसके विपरीत 'जन' शब्द मे भी अतिव्याप्ति है। फिर प्रयोग के कारण जन' शब्द मे ग्राम जैसी सकीर्णता का भी बोध होने लगा है । प्राचीन काल मे प्रदेश विशेष के लिये जनपद शब्द का प्रयोग होता रहा है। ग्रामीण क्षेत्रो के लिये 'जनपद' एव नगर के लिये 'पुर' शब्द भी विभेदात्मक स्थिति को प्रकट करते है । [१] आधुनिक हिंदी साहित्य मे जनगीत और जनवादी साहित्य की बडी चर्चा है। पूजीवादी समाज व्यवस्था के विरुद्ध साम्यवादी विचारधारा का अभिव्यक्त करने वाला साहित्य जनसाहित्य के अन्तर्गत आता है। नामवरसिंह ने जन एव जन साहित्य के सम्बन्ध मे विचार प्रकट करते हुए लिखा है जनसाहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका मे प्रवेश करने वाला सामान्य जन का साहित्य है, और इसीलिये जन साहित्य लोक-साहित्य से इसी अर्थ मे भिन्न है कि लोक साहित्य जहाँ जनता के लिये जनता द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन-साहित्य जनता के लिये व्यक्ति के द्वारा रचित साहित्य है'। [२] यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि 'जन शब्द भी औद्योगिक क्षेत्र के श्रमिको का पर्याय बन गया है और 'जन' शब्द को लोक' का पर्याय नही माना जा सकता। इसी तरह लोकगीत और जनगीत का अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। *लोकगीतो की परम्परा मे व्यक्ति को कोई महत्व नही दिया जा सकता।* लोकगीतो की परम्परा मे विराट् भावना मे व्यक्तित्व मिल भी नही सकता है । समष्टि मे तिरोहित हुए व्यक्तित्व के अवशेष का पता लगाना कठिन ही है। फिर भी जाने या अनजाने मे एक-दो साहित्यकारो ने लोकगीत की भावना को प्रकट करने के लिये जनगीत या जनगीति आदि शब्दो का प्रयोग किया है। किंतु उनका वास्तविक अभिप्राय लोकगीत ही जान पडता है। [३] सुधाशु ने काव्य के गेय रूप को कलागीत कहा है । कलागीतो के अन्तर्गत मुक्तक और प्रबन्ध काव्य दोनो का समावेश है। [४] कलागीत शब्द पर विवेचन करना इसलिये आवश्यक है कि लोकगीतो की आधार शिला पर ही काव्य-कला की सृष्टि हुई है । लोकगीतो की भावनाएँ क्रमश चिन्तनशील एव बुद्धि परक जीवन मे काव्य के रूप मे

१ पौरजानपदश्रेष्ठा । वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, १४ । ४१ ।
पौरजानपदश्चापि नगमश्च कृताञ्जलि । वही, १४।५५
जनपद विनिवेश । अर्थ शास्त्र १।२२ ।

२ जनपद, त्रैमासिक खण्ड १, अक २, पृष्ठ ६३, ६४।

३ ० कथा के प्रति आकर्षण जनता की स्वाभाविक रुचि है । जनगीतों में भी लोक प्रचलित कथाओं का आधार रहता है।
—डॉ० रघुवश, प्रकृति और हिंदी काव्य पृष्ठ ३३१ ।
० जीवन की छोटी परिस्थिति भावना की हल्की अभिव्यक्ति से मिल जुल कर जन गीतियों में आती है । —वही, पृष्ठ ३३३ ।

४ जीवन के तत्व एवं काव्य के सिद्धात पृष्ठ १७६ व २०८।

विकसित होती गई। किन्तु काव्य के क्षेत्र में आकर लोकगीतों की स्वच्छन्द भावनाएँ एवं उनकी अभिव्यक्ति प्रणाली शास्त्र की रूढ़ियों में आकर आबद्ध हो गई है। लोकगीतों में मानव-जीवन का जो सरल एवं नैसर्गिक स्वरूप था, काव्य की शिष्ट रचना तक पहुँचते पहुँचते वह अपना वास्तविक स्वरूप खो बैठा एवं जन-मानस से विच्छिन्न हो जाने के कारण उसका परिनिष्ठित गठन पुस्तकों के पन्नों में सिमट कर रह गया। मध्ययुगीन रामभक्ति का जन मानस पर जितना प्रभाव आज दिखाई है उतना रीतिकालीन कवियों का नहीं है। सूर और तुलसी की तरह कुछ ग्रामीण भाषाओं के कवियों का प्रभाव भी लोकगीतों में गुंजरित होकर जनमानस का परिष्कार करता रहा है। आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावाद, रहस्यवाद एवं प्रगतिवाद के रूप में उत्पन्न हुए काव्य विवर्तों के पश्चात लोक हृदय को स्पर्श करने के लिये काव्य-धारा तरसती रही है। आज कविता के क्षेत्र में साधारणीकरण, सहजता और स्वाभाविकता की ओर आकर्षण का ध्यान आकर्षित हो रहा है। 'आज की नयी कविता छायावाद के शब्द आडम्बर और संगीत से मुक्त होकर लोकगीतों की सहजता एवं सरलता से उतनी ही प्रभावित है जितनी कि नयी व्यंजना से। लोक भाषा, लोक-सरलता और प्रतीक एवं लोक संगीत लोकगीतों के ये सारे प्रभाव नई कविता में विभिन्न रूपों में व्यक्त हुए हैं।'[1]

लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप

लोकगीतों में मानव जीवन की उस प्राथमिक स्थिति के दर्शन होते हैं जहाँ साधारण मनुष्य अपनी लालसा उमंग उल्लास प्रेम, शोक एवं घृणा आदि भावों को प्रकट करने में समाज द्वारा मान्य शिष्टाचार के कृत्रिम बंधनों को स्वीकार नहीं करता। लोकगीतों की यह स्वच्छन्द भावना उसका प्रथम लक्षण है। भावनाओं और भावों को प्रकट करने की विविध प्रणालियों में लोकगीतों की जिन प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है, उनके आधार पर लोकगीतों के प्रकृत स्वरूप एवं सामान्य लक्षणों पर विचार किया जा सकता है भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही लोकगीतों में निम्नलिखित विशेषताएँ रहती हैं —

१—निरर्थक शब्दों का प्रयोग २—पुनरावृत्तियाँ

३—प्रश्नोत्तर प्रणाली ४—टेक (गीत की आधारभूत लय-बद्ध पंक्तियाँ)

निरर्थक शब्दों का प्रयोग करने का कारण स्पष्ट है। लोकगीतों के रचयिताओं के पास शब्दों का ज्ञान भण्डार बहुत ही सीमित रहता है। शब्द तो थोड़े होते हैं और भाव बहुत अधिक होते हैं। अतः शब्द चातुर्य की कमी को पूरा करने के लिये स्वरों की सहायता ली जाती है। इसमें निरर्थक शब्दों का प्रभाव तो भावों की अभिव्यक्ति को गेयता के अनुकूल बनाने के लिये किया जाता है एवं पंक्तियों की पुनरावृत्तियाँ संगीत का प्रभाव

---

[1] श्री सर्वेश्वरदयाल का लेख 'प्रयोगवादी काव्य में लोक-गीतों की अभिव्यक्ति' —सम्मेलन पत्रिका, लोक-संस्कृति अंक, पृष्ठ २७८।

। ध्वनि माधुर्य को साकार करती हैं। लोकगीतों में शब्दों के पहले लय को अधिक महत्व दिया जाता है। लय के द्वारा ही भावों को उठान का व्यक्त करने के लिये सहज प्रेरणा होती है। भावों का भारवहन करने वाले शब्द तो बाद में नियुक्त होते हैं। प्रश्नोत्तर अथवा संवादात्मक प्रणाली भी लोकगीतों की एक सार्वभौमिक प्रवृत्ति है। टेक के द्वारा गीत का विस्तार एवं भाव-व्यंजना को गति मिलती है। पाश्चात्य लोकगीतों में भी उपरोक्त चारों प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं।[1]

लोकगीतों में परम्परा का निर्वाह

सामूहिक लोकभावना पर आधारित होने के कारण परम्परा से प्रचलित लोकगीतों का भी निर्माण होता रहता है। मौखिक परम्परा में रहने के कारण लोकगीतों में पुरातन भावनाओं का समावेश तो रहता ही है, किंतु प्राचीन परम्परागत अभिव्यक्तियों के आधार पर जनमानस नवीन रचनाओं का निर्माण करने में भी सजग रहता है। भारतीय क्रियाओं में लोकगीतों के साथ आनुष्ठानिक प्रवृत्ति होने के कारण परम्परा के गीतों में परिवर्तन की उतनी संभावना नहीं है फिर भी बना बनी, गालियां एवं पारसी आदि लोकगीतों में विभिन्न युगों की परिवर्तित परिस्थितियों और इतिहास का प्रभाव पड़ा है। इस तरह के गीत प्राचीन परम्परा के बंधन से मुक्त हैं। आज से दस वर्ष पूर्व मालवा में विवाह के अवसर पर 'बना-बनी' के जो गीत गाये जाते थे शनैः शनैः उनका प्रचलन कम होता जा रहा है और नये गीतों का निर्माण हो रहा है। परम्परागत गीतों में भी परिवर्तन होने की बहुत कुछ संभावना रहती है, क्योंकि लोकगीत अपनी मौखिक परम्परा के कारण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक एवं एक स्थान से दूसरे स्थान तक अभ्यन्तरित होने में बहुत कुछ बदल जाते हैं। यूरोप आदि देशों में परम्परागत गीतों के गायक की अप्रत्याशित मृत्यु पर लोकगीत विशेष के लुप्त हो जाने का भय भी बना रहता है।[2] वास्तव में लोक-गीतों का परम्परा के साथ एक अविच्छिन्न संबंध है और सभ्यता के चरम विकास की स्थिति में उसकी व्यापकता का प्रभाव बना ही रहता है, उसको एकदम भुलाना संभव नहीं है। आज के उलझनमय एवं व्यस्त जीवन में लोकगीत एक पुराने मित्र के समान हैं, जिसके कारण अच्छे समय की मधुर स्मृतियां एवं आनन्द के क्षण सजग हो उठते हैं।[3]

---

१ The characteristics of folk songs are as to substance, repetitions, interjection, and refrains as to form a verse accommodeted to dance—George Sampson, Cambridge History of English Literature, Pp 106

२ Ozark Folk Songs Chap I, page 33

३ "An old Song is an old friend, it brings back memories of good times and pleasant feelings'

—Humour in American Songs, preface-14

लोकगीतों की कुछ रूढ़ियाँ

१ संख्या

भारतीय लोकगीतों में संख्याओं का कुछ रूढ़ प्रयोग मिलता है। जहाँ संख्या का प्रयोग किया जाता है वहाँ वास्तविकता में भले ही कोई अर्थ-सत्ता नहीं रहती और गणित की दृष्टि से उन संख्याओं का यथातथ्य महत्व भी नहीं होता। वैसे लोकगीतों में पाच सात, एवं नौ की संख्या का विशेष उल्लेख हुआ है।[1] लोकजीवन की मान्यताओं में से उक्त संख्याओं को शुभ माना जाता है। पाच, दस एवं बीस की संख्या मनुष्य के आदिम परिगणन ज्ञान की सूचक है। आदिम जातियों में हाथ पैर के पांचों उंगली अंगूठे को लेकर संख्या का निर्धारण किया जाता है।[2] किन्तु साधारण जनता में भी पचोल (५), छक्डो (६) एवं कोडी (२०) आदि संख्याओं के द्वारा जीवन में विनिमय व्यापार चलता रहा है। परिगणन की आदिम रीतों ने लोकगीतों में परम्परा का स्वरूप धारण कर लिया है। लोकगीतों में निम्नलिखित संख्याओं का रूढ़िगत प्रयोग होता है

१ समूह का भाव प्रकट करने में सात की संख्या का प्रयोग —
 —सात रानियां सात सहेलियां आदि।

२ हार नवसार का ही होता है। नवलाख की संख्या भी उल्लेखनीय है।
 नव लख बाग में डेरे डाल जाते हैं। राना भी नवसर धार में होता है।[3]

३ असंख्यत्व एवं परिगणन की सीमा के परे का भाव प्रकट करने के लिये छप्पन एवं द्वित्व की संख्या का प्रयोग मिलता है।[4] वैसे अत्रीस-बत्रीस[5] बावन-बीस, तेवन-तीस[6] एवं आसठ-बासठ[7] आदि संख्याएं भी उक्त भाव को प्रकट करती है।

---

१ संख्या ५ * पाच मोहर को कसूमल रंगायो] लेखक का हस्तलिखित गीत-संग्रह,
 * पाच रुपया का पतासा मगाव] भाग १। गीत १४०
 दीजो नगरी मे बटाय भाउजी १।४१
 * पाच करण की पिया बावडी २।३ १।६३
 संख्या ७ * सात सहेलिया हो
 * सात सयर जल भरवा जाय रढियाली रात भाग ४ पृ० २६।

२ E B Taylor, Anthropology II p 62, I p 13

३ यो छोरया छोरी-वालो ख्याल माण्डयो
 ने तू रावे नवसरधार ग्यारस कथा गीत की पंक्तिया, २।१२६।

४ नवकोडी नाग ने छप्पन कोडी देवता जोवे थारी वाट वही, २।१२६।

५ अत्रीस-बत्रीस बनडी लखि ने छप्पन करोड जमाईरा लख्या,
 —रढियाली रात, भाग ३, पृष्ठ ३।

६ बेगी हो जो बावन बीस, वऊ आजो तेवन तीस १।१५।

७ आसठ-बासठ मेलू मो इन्दर राजा सारणा, चोसठ मेलू नी बगार १।२६०।

२—कुछ अतिशयोक्तियां

भावनाओं व वैभवमय क्षेत्र में प्रभुता, सम्पन्नता एवं विपुलता आदि का भाव प्रदर्शित करने के लिये अतिशयोक्तियों का प्रयोग भी लोकगीतों की एक रूढ़िगत विशेषता है। मांगलिक अवसरों पर केसर से आंगन लीपा जाता है[१], उसमें मोती बिखेरे जाते हैं। चौक में मोती बिखरते रहते हैं।[२] प्रियतम के पत्र को पढ़ने के लिये दीप सजाने में सवा मन तेल की आवश्यकता पड़ती है।[३] दीपक भी मिट्टी के नहीं सोने चांदी के होते हैं, अतिथि के सत्कार में पचास पान [ताम्बूल] ही समर्पित किये जाते हैं।[४] लोकगीतों के क्षेत्र में सोने और चांदी की तो कमी नहीं है। पक्षियों का वर्ण्य सौंदर्य भी सोने और चांदी की चमक में परखा जाता है।[५]

३—प्रश्नोत्तर-प्रणाली

लोकगीतों में प्रश्नोत्तर शैली को अपनाने की प्रवृत्ति भी अत्यन्त व्यापक है। पश्चिम के लोकगीतों में भी इस परम्परा का निर्वाह किया गया है।[६] संवाद शैली में भाव बड़ी सरलता से व्यक्त हो जाते हैं। इसलिये उक्त शैली का प्रयोग लोकगीतों की एक

---

१ सासू ने घोल्यो केसर लीपणो १।८६।

२ अ गज मोतियन चौक पुराव

ब मोती बेराना चन्दन चौक में—१।१३१।

३ उठो दासी दीवडिया अजवासो, अध मण इनो करी छे वाटयु

रे सवा मण तेले परगटयो रे लोल रढियाली रात, भाग ३, पृष्ठ २८ २६।

४ अ काथो सुपारी आ इन्दर राजा एलची, पाका इ पान पचास —१।२६०।

ब मेमानने मुखवास एलची रे, राजा ने पान पचास

—रढियाली रात, १, पृष्ठ १४०।

५ बाई रे सावरे सोना नो सारो दीवडो —चून्दडी भाग १, पृष्ठ ५८।

६ दो सोना री चिरखली, दो रुपा री चिरखली—१।२७७।।

७ Oh, who will shoe my feet ?
And who will glove my hand ?
And who will kiss my rosy cheeks ?
When you are in furrin land
Your father will shoe your feet,
Your mother will glove your hand,
And some other will kiss your rosy cheeks,
When I am in furrin land

—Ozark Folk-Songs, page 118

रूढि बन गया है। प्रश्न मे उत्पन्न जिज्ञासा बडी सरल होती है, उसका समाधान-कारक उत्तर भी सीधा सादा एव आडम्बर विहीन होता है। यथा—

का तो तारी माता ये, तने मारीओ रे ?
का तो तारे दादे दीधी गाल ?
का तो तारा भाई बन्धे तने मोलव्यो रे
का तो तारे वेरीये बतावो वाट
नथी मारी माता य मने मारीओ रे
नथी मारे दादे दीधी गाल[१]

४—पुनरावृत्तिया

लोकगीतो मे कुछ पक्तिया को शब्दो के फर फार मे बार बार दुहराया जाता है। इन पुनरावृत्तिया मे चाहे भावगत सौन्दर्य का अभाव रहे किन्तु किसी गीत को मौखिक परम्परा में जीवित रखने के लिये प्रश्नोत्तर की शैली एव पुनरावृत्तिया बडी सहायक होती है। इस प्रकार के गीतो को बडी सरलता के साथ स्मृति म रखकर कण्ठस्थ किया जाता है। पुनरावृत्तिया से लय सौन्दर्य के साथ ही गीत म सगीत की सजीवता उत्पन्न हो जाती है।[२]

५ Ad-Infinitum (अनन्त-सयोजन का सिद्धान्त)

स्त्रिया म गीत निर्माण करने की प्रवृत्ति अधिक सजग रहती है। वे गीत की एक पक्ति को लेकर अपन मन मे अनेक वस्तुओ का उसमे समावेश कर गीत के कलेवर को बढाता चलता हैं। 'अनन्त सयोजन' का सिद्धान्त स्त्रिया के इन गीतो पर पूर्णत लागू होता है। भारतीय लोकगीतो म इस तरह के अनेक उदाहरण मिलत हैं।

चौपड काय कू मगाई, गोरी खेलन कू तरसे
बिडला काय को मगाया, गोरी चावन कू तरसे
ढोल्या काय का मगाया, गोरा पोढन को तरसे। —३।५६

---

१ रढ़ियाला रात ३ पष्ठ ११ १२

२ म He bought for the younger a fine gold ring
Most gently
He bought for the younger a fine gold ring
And for the older not a single thing
Oh dear me

—Ozark Folk Songs, page 57

ब सोनल रमना रे गडडा ने गोखे जा गन्डा ने गोखे जो
आडो घाल्यो हे सानल दादा नो देग जो दादा नो देग जो
बाँ दीधा रे सोनम घोडु का पए जो, घाडु का पए जो
—रढ़ियालो रात, १, पष्ठ १०७।

उक्त गीत मे विभिन्न वस्तुग्रा के उल्लेख का कोई ग्रन्त नही। इत्र की शीशी, पुष्प हार, सुन्दर वस्त्र, सोने चादी के ग्राभूषण, मिठाई एव उपभोग से सबधित ग्रनेक वस्तुग्रा के उल्लेख में गीत बढता ही जाता है। परिगणन की शैली भी इसी Ad-infinitum के सिद्धान्त के ग्रतगत मानी जावेगी। ग्राभूषण एव ग्रन्य वस्तुग्रा के नाम गिनाकर एक के बाद दूसरी वस्तुग्रा को लेकर गीत का कलेवर परिवर्धित किया जाता है।

लोकगीतों की मनोभूमि

देश ग्रोर काल की मर्यादा में न बंधकर मानव हृदय की भावनाग्रा का स्पन्दन एक जैसा ही होना है ग्रौर यही कारण है कि ससार भर के लोकगीतो मे सर्वत्र एक ही ग्रन्तधारा प्रवाहित होता है। लोकगीतो में मानव हृदय के सामूहिक भाव, ग्राशा निराशा, ग्राकर्पण विकर्षण, प्रणय एव कलह, हर्ष विषाद, शाक-उल्लास, भय ग्राशका ग्रादि भावात्मक मनोदशाग्रा की सागोपाग ग्रभिव्यक्ति हुई है। भावनाग्रो की ग्रभिव्यक्ति के प्रति लोकमानस की स्वाभाविक ईमानदारी है। इसका कारण स्पष्ट है। लोक मानस की ग्रनुभूति, चाहे वह ग्रानन्द के क्षणों की हो चाहे मनोवेदना के सतप्त रूप की, उन्मुक्त रूप मे प्रकट होती है। वहाँ मर्यादा का मिथ्या मोह नही रह पाता। लोकगीतो मे मानव जीवन की समस्त रागात्मक प्रवृत्तियो का चित्रण हुग्रा है।

भारतीय लोकगीतों मे स्त्री ग्रौर पुरुष दोनो की भावनाएँ ग्रभिव्यक्त हुई हैं वस्तुत भारतीय लोक मानस के मनोविज्ञान का ग्रध्ययन करने की प्रचुर सामग्री तो इन लोकगीतो म छिपी पडी है। इन मे पुरुष के जीवन की केवल दो भावनाएँ प्रमुख हैं —

१ ग्रानन्द-विलास (लौकिक सुख)
२ मोक्ष-कामना (पारलौकिक सुख)

किन्तु सामाजिक विपमताग्रा के कारण नारी मानस की ग्रनुभूति का क्षेत्र जीवन की बहुमुखी भाव धाराग्रो में उर्मिल होता है। नारी के जीवन की सबसे प्रमुख समस्या है उसका नारी होना! नारी ग्रौर पुरुष के सह सम्बन्ध से उसकी समस्याएँ उलझती और भावनाग्रो को जन्म देती हैं। जन्म के कारण पिता ग्रौर भाई के रूप मे पुरुष से उसका पहिला परिचय होता है। यहाँ उल्लास उमग एवं स्वच्छन्द जीवन में पली उ भावनाग्रो का उदय होता है जहाँ द्वन्द्व, विग्रह या वेदना के भावो की छाया भी नही पडती ग्रत माता पिता ग्रौर भाई बहिन के सम्बन्ध को लेकर नारी के वात्सल्य, ममत्व ए सुखप्रद माकाक्षा को गीतो में व्यक्त किया है। युवावस्था मे पति के रूप में पुरुष से उसका समागम होता है। यही से उसके जीवन की भाव धाराग्रो को प्रेरित करने वाली ग्रनेक समस्याग्रो का सूत्रपात हो जाता है। प्रेम ग्रौर विरह नारी के जीवन की दो प्रमुख समस्याएं बन जाती हैं ग्रौर इसी के साथ राग-द्वेष ईर्ष्या, गृह-कलह, घृणा ग्रौर क्रोध का उभार वाली ग्रनेक घटनाएँ एव जीवन की कठोरता मे ग्रनेक भावनाएँ उद्वेलित होती हैं

भारतीय लोक-जीवन की प्रत्येक गतिविधियाँ लोकगीतो मे प्रतिबिम्बित हुई हैं, धार्मिक भावना, रीति-नीति एव लोक-मान्यताओ का सच्चा इतिहास लोकगीत ही प्रस्तुत करते हैं। साहित्यकार एव कवियो की रचनाओ में मानव जीवन का जो चित्र मिलता है वह व्यक्ति परक होने के कारण वास्तविक रूप में अकित नही हो पाता। साहित्य के क्षेत्र मे तो लोकजीवन का सार, मथन के पश्चात उतारा जाता है। लोकगीत लोकजीवन की सच्ची झाँकी प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य के सामाजिक, पारिवारिक एव व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित अनेक मार्मिक चित्र लोकगीत म ही उतर पाते हैं। सभ्यता-जड शिष्ट जीवन के प्रच्छन्न पक्ष का उद्घाटन करने मे लोकगीत बडे सहायक होते हैं। भारत के धर्मशास्त्र निर्माताओ ने शास्त्रीय कर्म-काण्ड आदि आचारो के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचनाएँ की हैं, किन्तु लोक-जीवन की व्यापकता को बाँध लेना उनकी क्षमता से पर है। लोकाचारो मे जो लोकमानस व्यक्त होता है वह युग-युगो की विभिन्न धाराओ को पचाकर लोकजीवन के प्रति मगलमय दृष्टिकोण रखता है। लौकिक अनुष्ठानो की भावना को लेकर लोकगीत आगे चलते हैं। मानव के जीवन की महानतम घटनाएँ जन्म, विवाह एव मृत्यु भी लोकगीत की छाया म अपना रागात्मक स्वरूप लेकर चलती हैं।

लोकगीतों की अभिव्यक्ति एवं कला का स्वरूप

अपढ एवं सामान्य जनता के पास शब्द तो थोडे होते हैं और भाव अधिक। अत अपने भावो का प्रकट करने के लिये स्वर एव लयात्मक ध्वनियो का सहारा लिया जाता है। शब्द-चातुर्य की कमी को स्वर की सहायता से पूरा किया जाता है। लोकगीतो के निर्माता स्वर के धनी होते हैं। हृदय में उद्वेलित भावो के व्यक्त होने मे पहिले स्वर का स्पन्दन होता है, धुन मे वह बँधता है और उसके पश्चात् शब्द के रूप मे अपनी अभिव्यक्ति की सत्ता को स्पष्ट करता है। स्वरो के द्वारा मानवीय भावो की अभिव्यक्ति का जो स्वरूप हमारे सामने आता है वह स्थूल रूप से उतना आकर्षक एव कलात्मक नही होता। वेदना एव पीडा के कष्ट की चरमता एव उसकी असह्य स्थिति को प्रकट करने वाली ध्वनियाँ अर्थ-सत्ता की दृष्टि से कोई महत्व नही रखती। किन्तु वहाँ एक भाव विशेष की अभिव्यक्ति अवश्य होता है। सुख और दु ख के कारण अनेक ध्वनियाँ हमारे मुख से निसृत होती हैं। इन ध्वनियो मे जो विविधता आती है वह भावो की विविधता का एक शरीर-जन्य (Physiological) परिणाम है।[१] ध्वनि की यही विविधता लयात्मक होकर सगीत का स्वरूप धारण कर लेती है। वस्तुत सगीत भावो की प्रकृत भाषा का एक आदर्श रूप है और इसी प्रकृत भाषा में लोकगीत प्रकट होते हैं। लोकगीतो की अभिव्यक्ति अपने प्रारम्भिक रूप में सगीत कला को जन्म देती है। मुखरित स्वरो के साथ नृत्य, भावो को प्रकट करने वाली विभिन्न मुद्राएँ एव शारीरिक हाव भाव तथा वाद्य-सगीत लोकगीतो पर आधारित है।

सगीत के पश्चात् भावो की अभिव्यक्ति के लिये शब्दो का माध्यम अधिक महत्व पूर्ण है। शब्द हमारी वाणी के वाहक हैं और जीवन के सामान्य व्यवहार में वाणी मनुष्य

१ Herbert Spencer, Literary Style and Music, pase 49

की भाषा भावनाओं को एक दूसरे के सम्मुख प्रकट करती है। भाषा आदान-प्रदान जो व्यक्ति और समाज के सामने अभिव्यक्त करने के लिये हमारे मुख से जो ध्वनियाँ निकलती हैं, वे समूहबद्ध होकर सार्थकता ग्रहण करती हैं। वाणी के द्वारा मनुष्य चाहे तो अपने भावों को प्रकट कर सकता है किन्तु जीवन की कठोरता में विविध प्रतिबन्धात्मक परिस्थितियों में भावों को प्रकट करना उतना सरल नहीं है। मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ देखता है, सुनता है और अनुभव करता है उसकी प्रतिक्रिया को व्यक्त करना चाहता है। किन्तु समाज की मान्यता के विरुद्ध हृदयगत भावों को मूल रूप में संकोच एवं भय के कारण प्रकट नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में भावों को प्रकट करने वाली भाषा अन्य मार्ग खोजती है और अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये मनुष्य संकेत एवं अन्योक्ति जैसी पद्धतियों को ग्रहण करता है।

लोकगीतों की भावना एकाकी रूप में कभी प्रकट नहीं होती। प्रकृति के सुन्दर एवं आकर्षक उपकरणों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक देश का रमणीय वातावरण, वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, जन्मभूमि के संस्कार एवं मनुष्य के चारों ओर फैली हुई सृष्टि की पूरी कहानी सिमट कर लोकगीतों में समा जाती है और इनकी सफल अभिव्यंजना जितनी लोकगीतों में प्राप्त होती है उतनी साहित्य के उस क्षेत्र में प्राप्त होना सम्भव नहीं जहाँ केवल शब्द शिल्प द्वारा भावों का कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। लोकगीतों की सरल एवं स्वच्छन्द दुनिया में कला का प्रमुख स्वरूप सहजतया निर्मित होता है।

भारतीय लोकगीतों की परम्परा

संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। वैदिक युग में पुत्र जन्म, यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि उत्सवों पर गाये जाने वाले लोकगीतों का स्वरूप कैसा रहा होगा, यह निर्धारित करना बड़ा ही कठिन है। यज्ञ, उत्सव एवं पर्वों के समय स्त्रियों के द्वारा अपने कोमल कण्ठों से गीत गाकर मंगलमय प्रसंग में मनोरंजन की रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया गया होगा किन्तु उसका निश्चित प्रमाण मिलना सम्भव नहीं है। वेदों में 'गाथा' एवं 'गाथिन्' (गानवाला) शब्दों का प्रयोग देखकर गाथा को लोकगीत मान लिया गया है।[1] विवाह आदि अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'रैभी' एवं 'नाराशंसी' तथा गाथा आदि शब्दों के नाम से प्रसिद्ध थे।[2] सूर्या के विवाह संस्कार के प्रसंग में रैभी एवं नाराशंसी शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है। किन्तु उक्त दोनों गाथाएँ हैं,

---

१ गाथा १ अग्नि मालिष्वावसे गाथाभि शीरशोचिषम्
गाथा वाङ्नाम ऋग्वेद ८।७१।१४।

२ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथायोरौ रथ उरुयुगे
गाथा स्तोत्रेण फुट नोट, व्याख्या ऋग्वेद ८।९८।९

२ डॉ० शिवशेखर मिश्र का लेख 'भारतीय संस्कृति में लोकगीतों की अभिव्याप्ति'— सम्मेलन-पत्रिका, लोक-संस्कृति, अंक, पृष्ठ १३९।

लोकगीत नहीं । 'गायागीयते', गाथा गायी अवश्य जाती है किन्तु वह पुरोहित एवं ब्राह्मणों के द्वारा वैदिक मंत्रों की तरह गाया जाने वाली रचना है । रैभी अन्य वैदिक मंत्रों की तरह एक ऋचा है और नाराशंसी ऋचा में मनुष्य की स्तुति का समावेश है।[१] वैदिक गाथाओं के कुछ उदाहरण ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में दी गई गाथाओं में राजाओं के चरित का वर्णन मिलता है । वहाँ लोकगीतों की मूल भावना का अभाव है ।

वस्तुतः संस्कृत जैसी वर्ग विशिष्ट की भाषा में लोकगीतों का समावेश होना सम्भव भी नहीं है । साहित्यिक एवं पुरोहित वर्ग की भाषा जन सामान्य के लिये पराई भाषा है और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारानुसार मृत भाषा में पराई भाषा में गल्प और गान सम्भव भी नहीं है । भाषा जब तक भावों के प्रवाह में बहा न ले जाय तब तक गान गल्प का प्राविर्भाव सम्भव नहीं हो सकता । सरल काव्य के रचयिता कालिदास एवं संस्कृत के गीतकार जयदेव भी बंगाली वैष्णवों की समता नहीं कर सकते । कालिदास का काव्य भी झरने की तरह सर्वांग रूप से नहीं बहता । उसका श्लोक अपने में ही सम्पूर्ण है, उसका श्लोक हीरे के टुकड़े के समान है । किन्तु नदी के समान कल-कल निनादिनी अविच्छिन्न धारा नहीं ।[२] लोकगीतों की अजस्र धारा को हम संस्कृत के कूप-जल में नहीं, जन जीवन को तरङ्गित करने वाली जन भाषा में खोजना पड़ेगा । वेद, ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में वर्णित यज्ञगाथा अथवा राजाओं के यशोगान में लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप दुर्लभ ही रहेगा । संस्कृत-साहित्य में लोकगीतों के अस्तित्व का केवल संकेत मिल सकता है । इस विषय की विस्तृत जानकारी हमें पाली, प्राकृत आदि जन भाषाओं में अवश्य ही मिल सकती है । क्योंकि जन जीवन के सम्पर्क की व्यापक आयोजना में लोकगीतों का पक्ष अछूता कैसे रह सकता है । बौद्ध साहित्य को सच्चे अर्थों में लोक-साहित्य की संज्ञा प्राप्त है । त्रिपिटकों में स्थान-स्थान पर सामान्य जन-जीवन का यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्र मिलता है । 'सुत्त निपात' में धनिय गोप के जीवन का चित्र एक गीत में प्रस्तुत किया गया है

> अब हे देव चाहे तो खूब बरसो ।
> भात मेरा पक चुका है, दूध दुह लिया गया है,
> गंडक नदी के तीर पर अपने स्वजनों के साथ मैं वास करता हूँ

---

१ रैभी— रैभ्यासीदनुदेयीनाराशंसी न्योचनी
नाराशंसी — सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयेति परिष्कृतम् ऋग्वेद १०।८५।६।
व्याख्या — रैभ्य काश्चनच रैभी शंसति रैभतो व देवाश्चयश्च
स्वर्गलोकमायन् इत्यादि ब्राह्मण विहिता रैभ्य
मनुष्याणां स्तुतयो नाराशंस्य सा नाराशंसी न्योचयो
गाथा गीयते इत्यादि ब्राह्मणोक्ता गाथा ।
नाराशंसी मोऽस्तु प्रजाजे ऋग्वेद १०।१८२।२।
Vedic Research Institute Poona, Publication Vol IV.
२ रवीन्द्रनाथ टगोर प्राचीन साहित्य (बंगला संस्करण) पृष्ठ ५५।५६।

कुटी छा ली है, आग सुलगा ली है, अब हे देव चाहो तो खूब बरसो।
मच्छर मक्खी यहा नही है, कछार में उगी घास गाय चर रही है,
पानी भी पडे तो वे उसे सह ले, अब हे देव चाहो तो खूब बरसो।
मेरी ग्वालिन आज्ञाकारी और अचचला है,बहुचिरकाल की प्रियसगिनी है
उसके विषय में कोई पाप नही सुनता अब हे देव चाहो तो खूब बरसो
मेरे तरुण बैल और बछडे है, गाभिन गाए और तरुण बछडे भी हैं
सब के बीच वृषभराज भी है, खूटे मजबूत गडे है,
मु ज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे हुए है।
बैल भी उन्हे नही तोड सकते हैं अब हे देव चाहो तो खूब बरसो—[1]

उक्त गीत मे लोक गीत का एक प्रमुख लक्षण विद्यमान है । लोकगीतो में भावना की सरल एव अकृत्रिम अभिव्यक्ति के साथ ही गीत रचना विधान में एक सुनिश्चित आधारभूत पक्ति 'टेक' का बडा महत्व रहता है । टेक की पक्तियाँ बार बार दोहराई जाती हैं । अब हे देव चाहो तो बरसो गीत की टेक है । बौद्ध साहित्य की थेरी गाथाएं लोकगीतो की कोटि मे आती हैं । इनमे टेक एव प्रश्नोत्तर प्रणाली के अनेक उदाहरण मिलते हैं । थेरी गाथा के कुछ उद्धरण विचारणीय हैं

—कालका भमरवण्ण सदिसा वेल्लितग्गा मम मुद्धजा अहुँ
ते जराय साणवाक सदिसा सच्चवादि वचन अनञ्ञथा २५२।
वासितो व सुरभिकरण्डको पुप्फपूरमम उत्तमङगमु
तं जराय समलोम गन्धिक सच्चवादी वचन अनञ्ञथा २५३।
कानन व सहति सुरोपित कोच्छसूचिविचितग्ग साभित
त जराय विरल तहि तहि सच्चवादि वचन अनञ्ञथो २५४।
सण्हगन्धक सुवण्ण मण्डित सोभते सुवेणिहि अलङ्कत
त जराय खलति सिर कत सच्चवादि वचन अनञ्ञथा २५५।

* मोर के रग क समान काले जिनके अग्रभाग घु घराल थे,
ऐसे किसी समय मेरे बाल थे
वही आज जरावस्था मे जीर्ण सन के समान है
सत्यवादी के वचन कभी मिथ्या नही होते।
* पुष्पा-भरणा से गु था हुआ मेरा क शपाश कभी चमेली के पुष्प की-सी गध को वहन करता था।
उसी मे आज जरा क कारण खरहे के रोओ की सी दुर्गन्ध आती है,
सत्यवादी के
* कघी एव चिमटियो स सजा हुआ मेरा सुविन्यस्त केश-पाश कभी अच्छे रोपे हुए सघन उपवन के समान सोभा पाता था।

[1] पालि-साहित्य का इतिहास पृष्ठ २३७।

वही आज जरा-ग्रस्त होकर तहा-तहा बाल टूटने के कारण विरल हो गया है। सत्यवादी के

* सोने के आभूषणो में सजी हुई महकती हुई चोटियो से गुथा हुआ कभी मेरा सिर रहा करता था। वही आज जरावस्था मे भग्न और विनमित है।

२७० क्रमांक तक सत्यवादी के वचन मिथ्या नही होते टेक, गीत को आगे बढाती है।[1]

प्रश्नोत्तर प्रणाली का उदाहरण—

विपुल अन्नञ्च पानञ्च समणान पवेच्छसि
रोहिणी दानि पुच्छामि केन ते समणा पिया २७२।
अकम्मकामा आलसा परदत्तोपजीवनो
आससुका सादुकामा केन ते समणा पिया २७३।
कम्मकामा अनलसा कम्मसेठस्स कारका
रोगदोस पजहन्ति तेन मे समणा पिया २७५।
तीणि पापस्स मूलानि धुनन्ति सुचिकारिनो
सब्ब पाप पहीनेस तेन मे समणा पिया २७६।
काय कम्म सुचि नेस वचीकम्मञ्च तादिस
मनो कम्म सुचिनेस तेन मे समणा पिया २७७।[2]

* श्रमणो को तू बहुत अन्नपानादि दान करती है
राहिणी मै तुमसे पूछता हूँ श्रमण तुम्हें इतने प्रिय क्यो है ?
* देख, ये भिक्षु श्रम नही करते, आलसी हैं, दूसरो का अन्न खाने वाले हैं। लोभी और स्वादिष्ट भोजन के लालची हैं
फिर भी ये श्रमण तुम्हे क्यो प्रिय हैं ?
* वे श्रमशील है अप्रमादी हैं श्रेष्ठ कर्म करने वाले हैं
उनमे तृष्णा नही है, द्वेष नही है, इसीलिये श्रमण मुझे प्रिय हैं।
* तीनो प्रकार के पापो की जड काटकर उनकी देह विशुद्ध है,
उनका चित्त शुद्ध है।
सब पाप उनके प्रहीण हो गये है, इसीलिये श्रमण मुझे प्रिय है।
* कायिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, वाचिक कर्म उनके विशुद्ध हैं,
मानसिक कर्म उनके विशुद्ध है, इसीलिये श्रमण मुझे प्रिय हैं[3]

---

१ थेरीगाथा, वीसतिनिपातो, राहुल सांस्कृत्यायन, आनन्द कौसल्यायन एव जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, सस्करण १९३७ पृष्ठ २३।२४।

२ वही, पृष्ठ २४।२५।

३ हिंदी अनुवाद भरतसिंह उपाध्याय कृत 'थेरी गाथाएं' पर आधारित है।

गीता के रूप म व्यंजित हुई भिक्षुणियो की भावना का आधार केवल उपदे अथवा अपने सम्प्रदाय के विचारो का प्रचारित करने का प्रयास मात्र ही नही माना जायेग यहा वैयक्तिक ध्वनि प्रत्यक्ष है। किन्तु जीवन की गहनतम अनुभूतियो के उभार में ना की स्वत स्फूर्जित प्रेरणा भी कार्य करती है और इसी कारण भावो का निर्मल एवं प्र स्वरूप सामने आ सका है। गीतो के भावो की पृष्ठभूमि म भले ही बौद्ध-दर्शन की छा का प्रभाव हो किन्तु भावो की व्यजना एव गीतो की रचना-शैली लोकगीतो के अधि निकट है। पालि-साहित्य मे लोकगीतो की भावना का भडार सुरक्षित है। प्राकृत-भाग भी इसकी कमी नही है। विक्रम की तीसरी शताब्दी में जिस समय प्राकृत का प्रच अधिक व्यापक हो गया था लोकगीतो की उन्नति मे भी एक गति आई। 'हाल गाथाशप्तसती म लोक-साहित्य के माधुर्य का रसास्वादन किया जा सकता है। प्राकृत गाथाओ के साथ ही अपभ्रंश साहित्य मे लोकगीतो की परम्परा का अधिक विकास हुआ बौद्ध, सिद्धो क गान एव जैन कवियो की अनेक रचनाओ में आधुनिक लोकगीतो की विभि प्रवृत्तियो के दर्शन होने लगते हैं। गीतकथाओ का प्राचीन रूप गुणाढ्य की बृहत्कथ मजरी म बीज-रूप मे विद्यमान है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पद्यबद्ध कथाओ व परम्परा का श्रीगणेश यही से मानते हैं।[1] लोकगीत एव कथागीतो की रूढियो व अपभ्रंश काल के जन कवि एव हिन्दी के प्रारम्भिक कवियो ने ग्रहण किया है। लोकगीत मे फाग एव नृत्य क साथ गाये जाने वाले गीतो के प्रचलन का प्रमाण ११वी शताब् से मिलने लगता है। चचरी-गान का प्रथा का प्रचार तो सम्राट हर्ष के समय में भ था। बाण भट्ट एव हर्ष ने रत्नावली में चचरी गान का उल्लेख किया है। जिनदत्त सूर ने चचरी गान सुना था। उन्होने अपनी रचनाओ में लोकप्रसिद्ध इस चर्चरी गान एव रास जाति के गीतो का सहारा लिया। चर्चरी उन दिनो बडे चाव से गाई जाती थी। य चचरी गान वसन्तकालीन लोकगीत होना चाहिये जो नृत्य के साथ गाया जाता था कबीर ने भी लोक गीत की इस पद्धति को अपनाकर चाचर नामक अध्याय बीजक म दिया है। चचरी की तरह फाग जस प्रसिद्ध लोकगीतो का भी जैन कवियो ने प्रयो किया है।[2] ११वी सदी में क्षेमेन्द्र ने अपने आसपास गान सुन रखे थे। दशावतार क वर्णन करते समय इन्ही लौकिक गीतो का उन्होने अनुसरण किया था।[3]

हिन्दी के आदि-काल से लेकर सूर और तुलसी के युग तक लोक गीतो की निम्न लिखित पद्धतिया प्राप्त होती हैं—

१ फाग, होली के गीत, २ चर्चरी (चाचर) नृत्यगीत
३ बधावा ४ सोहर पुत्र जन्म के गीत
५ मगल-काव्य विवाह के गीत
६ गारी (गाली) ७ अचरियां (भजन)

---

१ हिन्दी साहित्य का आदि काल पृष्ठ ५६

२ (क) राजशेखर कृत 'नेमिनाथ फागु' (ख) पद्म सूरि कृत, 'थूलभद्द फागु' ।

३ हिन्दी-साहित्य का आदिकाल पृष्ठ १०८।

फाग और चर्चरी गान का उल्लेख किया जा चुका है। बधावा मंगल-मय प्रसंग : गाये जाने वाले गीतों का नाम है। जन्म और विवाह के अवसर पर मालवा और जस्थान में बधावे गाये जाते हैं। बीसलदेव रासो में मंगलाचार एवं बधावे का उल्लेख ता है।[1] विवाह गीतों की प्राचीन परम्परा के आधार पर कबीर और तुलसी ने भी ने आसपास के लोक-प्रचलित विनोदों और काव्यरूपों को अपनाया होगा। तुलसी द्वार चित 'जानकी-मंगल' एवं 'पार्वती-मंगल' प्रसिद्ध हैं ही। मंगलकाव्य वस्तुतः विवाह काव्य । इनकी परम्परा बंगाल में भी प्राप्त होती है। जान पड़ता है कि तुलसी के पूर्व इस कार के मंगल काव्य बहुत लिखे जाते थे।[2] कबीर के नाम से भी 'आदिमंगल', नादिमंगल' एवं 'अगाध-मंगल' काव्य मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो के ४७वें समय में नय मंगल के रूप में विवाह काव्य का कुछ अंश विद्यमान है। यह तो निश्चित ही है कि लसी और कबीर ने लोकगीतों की परम्परा को अपनाया है। काव्य के विभिन्न रूपों के याग में से कबीर के बीजक में प्राप्त निम्नलिखित गीत पद्धतियां भी लोकगीतों की देन हैं।[3]

१ वसंत (ऋतुओं के गीत) २ हिंडोला (झूले के गीत)
३ चाचर (फाग) ४ साखी (शिक्षाप्रद उपदेश)
५ बेली (उद्बोधन के गीत) ६ (बिरहुली साप का विष उतारने वाला गीत, गारूड मंत्र)

हिंडोला, सावन एवं वर्षाकालीन लोकगीतों को कहा जाता है। झूलते समय हिंडोला ान गाया जाता है। साखी का छंद दोहा है। संतों ने पूर्व पुरुषों के अनंत अनुभवों को पना छाप लगाकर स्वीकार किया है। इस प्रकार कबीर, तुलसी आदि संतों की साखियां ों—दोहों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति आ गई है। किन्तु साखी आज भी लोकगीतों की एक द्धति बनी हुई है, जिसमें जन-जीवन की विभिन्न अनुभूतियां प्रकट होती हैं। सर्प-काटने र उसके विष उतारने के गीत को ताखा कहते हैं। बिरहुली भी इस प्रकार का गान हा होगा। बुंदेलखण्ड की काछी और कोलि जाति के लोग आज भी सर्प का विष उतारने े लिये बिसतेल के साथ ताखा गाते हैं। 'ढाक', एक प्रकार की ढोलक बजती है, और सर्पों ा आह्वान किया जाता है —

छोटे छोटे छौना नाग के हों नाग के निकरे ओस चाटा तो
जाने मेरे फन मं पग धरो पग धरत ही डस लये हो डस लये
बदन गये कुम्लाय तो जाने मेरे फन पै पग धरो
कौन दिसन के आयगो हो कौन दिसन के मोर

---

१ घर घर गुड़ी उछली, होवउ बधांवउ नगरी धार।
२ हिंदी-साहित्य का आदिकाल पृष्ठ १०३।
३ बीजक-(रामनारायण लाल अग्रवाल द्वारा प्रकाशित १९५४) पृष्ठ २७१-३०५।
४ के बोला भाई बम, बोलो भाई बम भोले।
माई बाप के लाडले पियें कटोरन दूध,
गंगाजी की गैल मे भये छपटा माल। के बोलो भाई बम (शेष २७ पर)

सर्प-काटे मनुष्य को जिस समय लहर आती है यह ताखा ढाक की द्रुत गति के साथ गाया जाता है। जन-सामान्य की ऐसी धारणा है कि यदि काले तक्षकवंशीय नाग ने काटा होगा तो वह गीत की ध्वनि के वशीकरण में खिचा चला आवेगा। सम्भवतः तक्षक नाग के नाम से ही सर्प उतारने के गीत का नाम ताखा प्रचलित हुआ है। कबीर के युग का विरहुली एवं आज के युग का ताखा लोकगीतों के रूप में द्रविडों की नागपूजा की परम्परा को सुरक्षित किये हुए हैं।

कबीर आदि सन्तो ने जहा लोकभावना के अनुकूल रचनाएं की हैं वहा उनका व्यक्ति-परक काव्य भी लोकगीतो में लीन हो गया है। कबीर एवं तुलसी का प्रसिद्धि के कारण लोकगीतो के अज्ञात रचयिताओ ने इन दोनो सन्तो के नाम पर गीता का निर्माण कर डाला। मालवी भाषा में कबीर और तुलसी के नाम पर अनेक गीत प्रचलित है। वस्तुत ये गीत इन कवियो द्वारा नही रच गये हैं किन्तु लोक-परम्परा में हिन्दी के महान सन्त कवियों का साधारणीकरण हो गया है।[1] वस्तुत मध्य-युग की हिन्दी रचनाओ में लोकगीतो के व्यापक प्रभाव को ढूढा जा सकता है। सदेसरासक, बीसलदेव रासो, ढोला मारू रा दूहा परमार-रासो (आल्हा) आदि रचनाए तत्कालीन लोकगीत एवं कथागीतो का विकसित एवं साहित्यिक रूप हैं। बीसलदेव रासो एवं आल्हा तो गाने के लिये ही लिखे गये हैं। इनकी मौखिक परम्परा आज भी जीवित है। लिपिबद्ध साहित्य एवं काव्य का अस्तित्व तो कागज एवं पुस्तको मे सिमट कर शिक्षित वर्ग-विशेष एवं युग-विशेष तक सीमित रहता है। किन्तु लोकगीतो का अस्तित्व उसकी अन्तःशक्ति के कारण जन-मानस पर छाया ही रहती है। युग के युग काल की अनन्तता में भूत—बीते हुए क्षण बनकर समा गये किन्तु लोकगीतो की अक्षुण्ण परम्परा में भूत भविष्य और वर्तमान के लिये कोई विभाजक सीमा-रेखा नही बन सकी है। यही लोकगीतो की स्पन्दित सत्ता परम्परा से आबद्ध होकर भी चिरनवीन है, चिरन्तन है।

—राधाजी के हात मे अजब फूल एक सेत
राधाजी बूजे क्रिस्न से क्रिस्न नाम नहीं लेत। के बोलो भाई बम—
भूरे पे की दलडी घोरे चकरे पात, के हमु देखो नगर अजोदया के सन्तन के पास

—ग्राम सिकाटा (जिला भिण्ड) से प्राप्त एक गीत
बामणी—विष उतारने वाला तान्त्रिक
मोर—सप के मस्तष्क की मणि (मालवी शब्द-मोरा)

१ देखे तृतीय अध्याय (ई) 'कबीर और तुलसी का मालवीकरण' शीर्षक में विस्तृत विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय

विषय प्रवेश

१ मालवा की धरती

२ मालवा की भौगोलिक स्थिति एवं सीमाएँ

३ मालवा नाम की प्राचीनता

४ मालवा की जन-जातियाँ

५ मालवी लोक-साहित्य की स्थिति

६ मालवी लोक-साहित्य का संकलन-कार्य

७ मालव लोक-साहित्य-परिषद्

८ मालवी और उसके लोकगीत

९ मालवी लोकगीतों का वर्गीकरण

मालवा की धरती

मालव जनपद के लोग अन्य पृथ्वी-पुत्रों की तरह धरती को माता कहकर पुकारते हैं। यह वही माता है जिसके धर्य की तपस्या से मानव शिशुओं का पोषण एवं विकास होता है। मालव भूमि की यह विशेषता रही है कि धान्य की विपुलता के कारण यहाँ के लोगों के लिये मालव की उर्वरा भूमि ही इस प्रदेश का वरदान है। प्रकृति के इस हरे भरे एवं रम्य प्रदेश, मालव की भूमि पर ही तो प्रसन्न होकर सन्त कबीर ने अपने अनुभूतिजन्य विचार व्यक्त किये थे

"देश मालवा गहन गभीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर"[1]

कबीर की यह अनुभूति अपने में एक शाश्वत सत्य को छिपाये हुए है। रत्नगर्भा मालव मही के गर्भ से पत्थरों के अन्तराल को चीरकर जीवन के आधार धान्यकणों को बटोर कर मालव का आदिवासी भील आज भी उल्लास के साथ गा उठता है —

'मालवे न धरती, सेलीं, भली, गूजर
महान महोरतो बिन पानी, मक्का पकावे
ने पानो जुआरियो पाकावे, महान महोरती "

परिश्रम से चूर होकर भी मालवे का भील अपनी महान महोरती महान महिमा वाली धरती माता के गुणों का गान करने से नही अघाता। वास्तव मे मालव की धरती 'सेलो' है उपजाऊ है बडी भली है। क्या यह उसकी महान विशेषता नहीं है कि जहाँ बिना पानी के मक्का पक जाती है और यदि थोडी सी वर्षा भी हो जाये तो जुआर की खेती भी लहलहा उठती है।'

विन्ध्य की पर्वतमाला के आंचल मे बसे इस भू-भाग की सम्पन्नता एवं उर्वरा शक्ति प्रतीक बनकर मालव शब्द मे समा गई है। जहाँ भूमि का वैभव एवं धन धान्य की विपुलता का भाव प्रकट करना होता है, वहाँ मालव को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है। महाकवि तुलसी ने मरूभूमि की नीरसता एवं शुष्कता के विपरीत हरियाली एवं धरती के शस्य श्यामल स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये मालव का प्रतीक रूप मे उल्लेख किया है।[2] मालवे की धरती में प्रकृति प्रदत्त विशेषताओं के कारण अनन्त वैभव एवं

---

१ कबीर ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पृष्ठ १०६

२ कासीमग सुरसुरी क्रम नासा। मरु मालव महिदेव गवासा ॥

—रामचरित मानस,-बालकाण्ड।

महिमा का समावेश हो गया है। यहाँ की मिट्टी की श्यामता ही उसकी विशेषता है। काली मिट्टी के साथ ही मानो मालवा का नाम जुड़ा हुआ है। काले रंग के अतिरिक्त विविध रंग की मिट्टी भी यहाँ अप्राप्य नहीं है किन्तु उसमें भी एक विशेष गुण विद्यमान है कि सील (moisture) को सुरक्षित रखने की उसमें क्षमता है। इस कारण उपज के लिये सिंचाई की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी रेतीली एवं अनुपजाऊ भूमि के लिये वाञ्छनीय है। भूमि की गहनता उसको उर्वरा बना देती है और खाद आदि कृत्रिम शक्ति को प्रदान करने की आवश्यकता नहीं रहती।[1]

लोक-भावनाओं में भी मालव-भूमि की महत्ता को स्वीकार किया गया है। मालव की मिट्टी में उपजने वाली मेंहदी का रंग गुजरात तक पहुँच जाता है।[2] इसी तरह गुजराती ग्राम-वधू को मालव देश देखने की लालसा निरन्तर बनी रहती है।[3] राजस्थानी महिलाएँ वर और वधू के लिये विवाह के अवसर पर उबटन आदि के निमित्त मालवे में उत्पन्न होने वाली अच्छे रंग की हल्दी का उल्लेख करती हैं।[4] मालव के सम्बन्ध में केवल एक स्थान पर ऐसी उक्ति आती है जहाँ हृदय का आवेश रागात्मक ईर्ष्या के रूप में प्रकट होता है। किन्तु वहाँ भी मरु-प्रदेश के सम्बन्ध में किये गये कटाक्ष के उत्तर देने की प्रवृत्ति के साथ ही अपने प्रियतम को लुभानेवाली मालवी स्त्री के प्रति रोष की भावना है, मालव प्रदेश के प्रति नहीं।[5] ढोला की प्रियतमा जिस प्रकार अपने प्रियतम के कारण मालव के प्रति अच्छी भावना नहीं रखती, मालव के माडवगढ में प्रियतम का समीप्य प्राप्त करने की कामना के कारण रूपमती का मन सदा मालवे की ओर ही लगा रहता है।[6]

मालवा की भौगोलिक स्थिति एवं सीमाएँ

मालव शब्द उन्नत भूमि का सूचक है।[7] विन्ध्य पर्वत के उत्तरी आंचल में फैला हुआ विस्तृत पठार सम्पूर्ण मध्यभारत में उन्नत खण्ड बनकर अपनी भौगोलिक सीमा

१ Physical basis of Geography of India, Vol II, by H L Chhibber, page 208

२ मेंदी तो वावी मालवे, ऐनो रग गयो गुजरात
मेंदी रग लाग्यो रे रढियाली रात, भाग १, पृष्ठ १७।

३ दादे नो जोयो देश मालवो रे चूंदडी भाग २, पृष्ठ ५०।

४ म्हारी हल्दी रो रग सुरग
निपजे मालवे राजस्थानी लोकगीत पृष्ठ १६।

५ बालू बाबा देसडो, जर्थां पाणी सेवार
ना पणियारी झूलसे ना कुवे लयकार,, ढोला मारु रा दूहा, सख्या ६४।

६ रूपमती एव बाजबहादुर की प्रणय-कथा के सम्बन्ध में लोक-प्रचलित दोहा
चित चन्देरी मन मालवे हियो हाडोती माय
पलग बिछाऊ रतन-भवर में पोढूँ मांडव मांय

७ मालमुन्नत भूतले।

निर्धारित करता है। 'मलय' शब्द की तरह मालव भी उच्च भूमि अथवा पहाड़ी-क्षेत्र के भाव को प्रकट करता है।[१] यही पठार मालव की स्वाभाविक सीमा का बोध करता है फिर भी समय समय पर राजनैतिक हलचलों के कारण मालव की सीमाएं बदलती रही हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने आधुनिक मालव के विस्तार एवं सीमाओं के सम्बन्ध मे विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि मध्य भारतीय एजेन्सी के सम्पूर्ण भूभाग के साथ ही मालवा का क्षेत्र विस्तार दक्षिण में नर्मदा तक, उत्तर में चम्बल, पश्चिम मे गुजरात एवं पूर्व मे बुन्देलखण्ड तक माना जावेगा।[२] स्मिथ महोदय द्वारा मालव प्रदेश की सीमाओं का जो उल्लेख किया है वह अंग्रेजो द्वारा राजनैतिक एवं प्रशासकीय दृष्टि से निर्मित मध्य-भारत क्षेत्र की व्यापकता को लिये हुए हैं किन्तु मालव की भौगोलिक स्थिति का यहा केवल स्थूल रूप से ही परिचय होता है—इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका मे मालव की सीमा के सबध मे कुछ स्पष्टीकरण होता है। पठार के अतिरिक्त विन्ध्याचल और नर्मदा उपत्यका के प्रदेश निमाड को भी मालवा मे सम्मिलित कर लिया गया है।[३] वस्तुत निमाड ही मालव की दक्षिण सीमा रेखा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् १९४८ में जब मध्य-भारत का निर्माण हुआ तब राजनैतिक सुविधा की दृष्टि से अंग्रेजों द्वारा सामिल मध्य-भारत की प्रादेशिक स्थिति का ही स्वीकार कर लिया गया। भोपाल आदि मालव से सबधित प्रदेश राजनैतिक दृष्टि से अपना अलग महत्व रखते थे, किन्तु यहा ऐतिहासिक एवं सास्कृतिक परम्पराओं को ध्यान में रखकर मालव प्रदेश के क्षेत्र विस्तार और सीमाओं पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि राजनैतिक धरातल पर निर्धारित की गई सीमा की महत्ता स्वाभाविक होने के कारण प्रदेश की एकात्मकता के साथ ही विकास की प्रेरणा को लेकर चलती है।

मालव की सास्कृतिक सीमाओं की कुछ निश्चित मान्यताएं रही है। परन्तु ये सीमाएं समय-समय पर बदलती रही हैं। मुगलकाल के समय की सीमाओं की रूपरेखा और उसका निश्चित विवरण तो प्राप्त होता है किन्तु मराठो के आधिपत्य काल में मालव की राजनैतिक एकता समाप्त हो गई और उसकी सीमाएं भी पूर्णतया अनिश्चित बनी

---

१ The Age of Imperial Unity, page 163

२ Malwa the extensive region now included the formost part in the Central India Agency, and lying between Narbada on the south, the Chambal on the north, Gujrat on the west and Bundel-khand on the east

—Oxford History of india, Page 265

३ Strictly, the name is confirmed to the hilly table-land bounded south by Vindhya-ranges which drain north into the river Chambal but it has has been extended to include Narbada Valley further in south

Encyclopaedia Britanica, page, 747

रही। यहा अंग्रेजो के आगमन के पश्चात् सीमाओं की सही जानकारी प्रस्तुत करना अनिवार्य है। डॉ० यदुनाथ सरकार ने मुगल कालीन मालवा की सीमाओं के संबध में लिखा है कि यह प्रदेश उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ है। इसके पश्चिम में चम्बल के पार राजपूताना था और पूर्व में बुंदेलखण्ड की सीमा मालवा से लगी हुई थी। बेतवा इसकी सीमा रेखा थी।[1]

राजनैतिक सीमाए तो बदलती रहती हैं, परन्तु भौगोलिक और लौकिक सीमाए उतनी सरलता से नही। जहा तक जन, भाषा और संस्कृति का प्रश्न है, आज मालव की उत्तरी सीमा न तो यमुना नदी हो हो सकती है और न पश्चिम में स्थित चम्बल ही। मध्य-भारत एवं उसके संलग्न प्रदेशों के मानचित्रों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट समझा जा सकेगा कि मालव की प्रकृत स्थिति का स्वरूप कैसा है। नवीन मध्य-प्रदेश में मध्य-भारत के १६ जिलों में से शिवपुरी गुना, भेलसा, राजगढ शाजापुर देवास, इन्दौर, उज्जैन, मन्दसौर रतलाम, झाबुआ धार आदि १२ जिले मालवा के पठार पर स्थित हैं। भोपाल राज्य भी मालवा का अविभाज्य अंग है। होशंगाबाद का जिला सन् १८१३ तक भोपाल राज्य का ही अंग था। और वस्तुतः यह भाग भी नर्मदा की घाटी में स्थित मालव का ही भूभाग है। विन्ध्याचल के दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी की उपत्यका का एवं सतपुडा के बीच का प्रदेश मालव के पठार के नीचे होते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से दक्षिण मालव की परिसीमा में सम्मिलित होगा। शिवपुरी जिले का उत्तरी भाग मालव में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिये। वैसे शिवपुरी नगर की स्थिति मालवा पठार की उत्तरी सीमा पर है किन्तु नगर एवं उसके उत्तर का सम्पूर्ण क्षेत्र ग्वालियर और आगरा से ही शासित होता रहा है। शिवपुरी जिले के कोलारस एवं पिछोर आदि तहसील के क्षेत्र मालव की उत्तरी सीमा के अन्तर्गत आते हैं। इसी तरह मन्दसौर जिले के उत्तरी क्षेत्र में सिंगोली एवं रतनगढ के धार के उत्तर का क्षेत्र मेवाड का अविभाज्य अंग है। गुंजाल नदी के पश्चिम स्तर में स्थित भूभाग एवं जावद तहसील के अठाना का उत्तरी हिस्सा भी मालवा में सम्मिलित नही किया जा सकता। मध्य-भारत के क्षेत्र में जिस तरह राजस्थान के कुछ भूभाग सम्मिलित हैं राजस्थान में मालव का हिस्सा मिला हुआ है। राजस्थान की भूतपूर्व टोंक रियासत का सिरोंज, पिडावा और छबडा आदि क्षेत्र मालवा का ही एक भाग है। इसी तरह मन्दसौर और शाजापुर जिले के मध्य में स्थित भूतपूर्व झालावाड राज्य एवं ... राज्य मालव की निजामतें मालवी क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं।[2]

मालव की प्रमुख नदियों में चम्बल, क्षिप्रा, बेतवा, छोटी काली सिंध, बडी काली सिंध पार्वती, निवाज एवं माही नदी आदि प्रमुख हैं किन्तु सीमाओं के निर्धारण में बेतवा, नर्मदा और चम्बल ही महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं। बेतवा नदी मालव की पूर्वी सीमा को

---

१ शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब का हिन्दी रूपांतर, पृष्ठ ५४३।

२ मालवा की भौगोलिक सीमाओं पर महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह द्वारा सीमा कमीशन को प्रस्तुत किये गये स्मृति-पत्र The geographical boundries of the malwa states में विस्तार के साथ विचार किया है।

बनाती हैं। बेतवा के पश्चिमीय तट पर बसे हुए भेलसा, गुना, और शिवपुरी जिले के पछोर का क्षेत्र मालवा का भू भाग है। बेतवा के पूर्व मे बुन्देलखण्ड स्थित है । यहा नदी मालवा और बुन्देलखण्ड के मध्य सीमा रेखा का कार्य करती है और इसीलिये मध्य-युग के इतिहास मे इस नदी का नाम कही कही पर 'मालव नदी' दिया गया है [१]। नर्मदा मान्धाता श्रोंकारेश्वर से लेकर भोपाल राज्य के उदयपुरा क्षेत्र तक दक्षिण की सीमा निर्धारित करती है। चम्बल और पार्वती मालव के कुछ पश्चिमोत्तर क्षेत्र का राजस्थान से अलग करती हैं । पश्चिम मे माही नदी बांसवाड़ा और मालवी क्षेत्र के बीच की सीमा बनाती है।

मालव नाम की प्राचीनता

वर्तमान मालव की स्थापना कब हुई, यह निश्चित रूप मे नही कहा जा सकता, प्राचीन ग्रथो मे इस प्रदेश के विभिन्न भागो के लिये अवन्ती, उज्जयिनी, आकर-अवन्ती एव दशपुर आदि नामो का उल्लेख मिलता है। सिकन्दर के समय से लेकर छठी शताब्दी तक इस प्रदेश का नाम मालवा नही था यह निश्चित है । मालव गणो की एक शाखा 'ओलीकरो' का शासन आधुनिक मालवा के दशपुर प्रदेश पर सन् ४०४ ई० के लगभग स्थापित हो चुका था। गगानगर से प्राप्त नरवर्मन के शिलालेख मे यह पता चलता है कि ओलीकरो की यह शाखा पुष्कर्ण (जोधपुर के निकट का क्षेत्र) से यहाँ आई थी [२] हूणो का परास्त करने वाला प्रसिद्ध नृपति यशोधर्मन इसी परम्परा का व्यक्ति था । किन्तु उस समय भी अवन्ती, दशपुर एवं मालव भिन्न प्रदेश ही माने जाते रहे । सभवत उस समय मारवाड एवं ढूँढाड क्षेत्र ही मालव कहलाता था। क्योकि 'मालवाना जय' के सिक्के प्राचीन कर्कोटक नगर एव नगरी आदि उसी क्षेत्र मे प्राप्त हुए हैं । [३] अवन्ती प्रदेश के शासक के लिये मालवपति की सज्ञा सर्वप्रथम वाकाटक राजा, पृथ्वीसेन द्वितीय के बालाघाट से प्राप्त शिलालेख मे मिलती है। पृथ्वीसन द्वितीय का समय ५८० ईसवी के लगभग रहा है । [४] इसके पश्चात् सम्राट हर्ष के समकालीन बाण भट्ट ने देवगुप्त के लिये भी मालवपति शब्द का प्रयोग किया है। [५] मुज और भोज के समय से अर्थात् नवी शताब्दी से लेकर तेरहवी शताब्दी के बीच यह प्रदेश मालव नाम से प्रसिद्ध हो गया था, यह गुजरात प्रदेश के विभिन्न भागो में प्राप्त शिलालेखो से सिद्ध हो जाता है। [६]

१ The Age of Imperial Kanauj Page 95
२ New History of the Indion People, Vol II Page 181
(Bhartiye Itihas Parishad Publication)
३ The Age of Imperial Unity, Page 165
४ कोशलमेकलमालवाधिपतिर भ्यर्चित शासनस्य, E I IX, No 36, P 271
५ हर्ष चरित पृष्ठ १७८ ।
६–१ अपरञ्च अत्रा गम मालवदेशे तो 5 मी खम्भात के चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर में प्राप्त शिलालेख वि० स० १३५२ ।
२ Historical Inscriptions of Gujrat, Part III, Page 93
३ मालवपति बल्लालमाघवान् वि० स० १२६७ आबू के परमार राजा यशोधवल ने मालव राज बल्लाल को बन्दी बनाया था । देलवाड़ा मन्दिर में प्राप्त शिला लेख, वही लेख २०६, पृष्ठ ६ ।

मालव की जन-जातियाँ

मालव की भूमि प्राचीनकाल से ही अनेक संस्कृतियों के संगम की क्रीडास्थली रही है। भूमि की उर्वरा शक्ति एवं रत्नगर्भा महिमा ने अनेक जातियों को अपनी क्रोड़ में आश्रित किया है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर वैदिक, जैन एवं बौद्धकालीन इतिहास की परम्परा एवं सांस्कृतिक धाराओं के उद्‌गम एवं सह विलीनीकरण का आज प्रसंग से विश्लेषण करना असम्भव है विभिन्न युगों के सांस्कृतिक आदान प्रदान का लेखा-जोखा देकर मालवा मे बसने वाली अनेक जातियों का विस्तृत परिचय प्राप्त कर लेना अत्यन्त ही कठिन है। वर्तमान मालवा के क्षेत्र में बसने वाली जातियों की परम्परा मे प्राचीन युग की जन-जातियों का इतिहास भले ही अप्राप्य हो किन्तु जो कुछ भी लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं उनमें यह सहज ही सिद्ध होता है कि आज की अधिकांश जातियाँ मालव के संलग्न प्रदेश गुजरात, मेवाड, मारवाड से आकर बसी हैं, मॉलकम के अनुसार ब्राह्मण वर्ग की उपजाति के 'छयाती' (छ जाति के ब्राह्मण दायमा, पारोख, गुर्जरगौड, सारस्वत, सखवाल, खण्डेलवाल) लोग अपने को मालवी ब्राह्मण कहकर इस प्रदेश के शाश्वत निवासी होने का दावा करते हैं।[1] किन्तु ये ब्राह्मण जातियाँ भी अन्य जातियों की तरह गुजरात और राजस्थान से आई हैं।

गुजरात से आने वाली जाति का प्रथम प्रमाण हमे वत्स भट्टी की प्रशस्ति में प्राप्त होता है। रेशमी वस्त्रों का व्यवसाय करने वाली बुनकरों की यह पटवा जाती थी। मन्दसौर मे सम्राट यशोधर्मन् के समय मे पटवा व्यापारियों ने सूर्य का एक विशाल मंदिर बनवाया था[2] पटवाओं के पश्चात् गुजरात से आकर मालवा मे बसने वाली दूसरी जाति नागर ब्राह्मणों की है। भोज के समय से ही इस जाति ने मालवा मे आकर बसना आरम्भ कर दिया था। गुजरात के सोलंकी एवं चालुक्यो के राज्य के समय राज-कारण से नागर ब्राह्मण मालवा मे आकर बस गये। रामपुरा (मन्दसौर जिला) की बावडी मे से गुजराती भाषा का एक शिला लेख मिला था जिसमे यह उल्लेख है कि नडियाद से आये हुए नागर ब्राह्मणो ने यह बावडी बनवायी थी। सिद्धराज जयसिंह ने विक्रम सम्वत् १०६० मे महादेव नाम के एक नागर ब्राह्मण को मालवा का सूबेदार बनाया। चालुक्यो के राज्य के समय बडनगर नागर ब्राह्मणों की बसावट का एक प्रमुख केंद्र था।[3] सम्भव है कि नागर ब्राह्मणों के साथ ही गुजरात की अन्य जातियाँ भी इसी समय मालवा मे आकर बस गई हो। आज भी मालवा मे गुजरात से आई हुई निम्नलिखित मध्यम-वर्गीय जातियाँ निवास करती हैं —

---

१ Memoirs of Sir John Malcolm, Part II, Page 122 (O E)

२ Fleet, C I I, VoL III pp 81

३ मालवा उपर गुजराती प्रभाव शीर्षक लेख, बुद्धि प्रकाशनो, त्रमासिक सन् १६३६

नागर (ब्राह्मण एव बनिया)
मोड (ब्राह्मण एव बनिया)
श्रीमाली (ब्राह्मण एग बनिया)
पारख (ब्राह्मण ए। बनिया)
औदीच्य (ब्राह्मण) एव नीमा (बनिया) पटवा, नाई, माली, दर्जी
(सालवी) दर्जी, (मकवाना) आदि।

इसी तरह माहेश्वरी, ओसवाल, पोरवाल, माड एव श्रीमाल आदि वणिक-वर्ग की परम्परा भी गुजरात के श्रीमाली एव मोढेरा प्रदेश से जोडी जा सकती है [१] हिन्दुओ के शासन के पश्चात् मुसलमानो के राज्य में भी यहाँ अनेक जातियो का आगमन हुआ, मालवा पर मराठों का अधिकार हो जाने के पश्चात दक्षिण से भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण एव कुछ निम्न-वर्गीय जातियाँ यहाँ आकर बस गई। तामिल और तेलगु की अपभ्रष्ट भाषा बोलने वाले बरगुण्डे एव बन्सफोड भी मराठा के साथ शायद इसी समय आकर बसे है।

पेशवा ने जिस समय मालवा पर प्रथम बार आक्रमण किया, नागर ब्राह्मणा का शासन में अधिक वचस्व था। मुगल बादशाह की ओर से लडने वाले मालवा के सूबेदार गिरधर बहादुर तथा दया बहादुर नागर ब्राह्मण ही थे। [२] गुजराती ब्राह्मणो के अतिरिक्त राजस्थान एव उत्तर भारत से आई हुई ब्राह्मण एव वैश्या की अनेक उप-जातिया मालव में विद्यमान हैं। मॉलकम ने मालव की ब्राह्मण जातियो के सम्बन्ध मे विस्तृत परिचय देते हुए लिखा है कि जावपुर के ब्राह्मण व्यापार करते हैं। उदयपुरी ब्राह्मण कृषि एव गुजराती ब्राह्मण पूजा और व्यवसाय कर सम्पन्न जीवन व्यतीत करते हैं। इन ब्राह्मणो के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणा की ८४ उप जातियाँ हैं, जो पन्द्रह पीढियो से पूर्व गुजरात, उदयपुर, जोधपुर, जैपुर, एव कन्नौज आदि प्रदेशा से आकर बसी हैं। [३] ब्राह्मण एव व्यापारी वर्ग की जातियो के अतिरिक्त कृषि जीवन से सम्बन्धित अनेक जन-जातियाँ हैं, जिन्होने अकाल पडने के कारण जीविकोपाजन के हेतु यहाँ की भूमि को अपना चिर निवास स्थान बना लिया। विभिन्न धन्धो में लगी हुई जातियो के अतिरिक्त निम्न लिखित जन जातियाँ भी उल्लेखनीय हैं —

* अहीर, आजना, रजपूत, जाट, गूजर, मीना, देसवाली, मोघिया, सोंधियाँ, कन्जर, एव बनजारा आदि।
* बलई, बागरी, खटीक, लोधा, चमार, आदि।
* भील, भीलाला, बारेला, मानकर आदि।
* खाती, कुलमी (पाटीदार)

---

१ The Glory that was Gurjar desa, part III, page 22
२ ई० सन् १७२८ के लगभग।
३ Memoirs of Sir John Malcolm, II, pp 122

* माली (गुजराती, मेवाडी, मारवाडी एव पुरविया)
* नाईता, नायक, बनजारा, मुसलमान, (मेवाती, मुल्तानी पठान)
* काछी, कीर, कोरी, महार वहार आदि ।
* भाई, पारधी, धीमर, केवटिया, नावटिया आदि [1]

इनमे अहीर आजना आदि जातियाँ अपने को रजपूतो वश परम्परा म सम्बद्ध मानती है किन्तु इनमे गोप जीवन एवं कृषि-सभ्यता क अकुर आज भी विद्यमान है, जिन्हें प्राचीन काल की आभीर सस्कृति से सम्बद्ध किया जा सकता है । जाट, कलाता गूजर, मोघिया, सोंधिया आदि राजपूतो की उप-जातियाँ है । कञ्जर गूजरा पर आश्रित मगता की एक घुमन्तु जाति है । वसे बञ्जारे भी घुमन्तु जीवन की जन जातियो के अन्तर्गत आते हैं किन्तु अब ये व्यवस्थित होकर कृषि जीवन व्यतीत करने लगले है । माघिया, सोंधिया एव कञ्जर आदि साहसी जातियाँ हैं । लूटपाट धाडे (डाके) मारना इनकी आजीविका का प्रमुख साधन रहा है । मध्य भारत बनन स पूर्व इन जातिया की गणना जरायम पेशा के रूप मे होती थी । भील एव कञ्जरो मे यह प्रवृत्ति आज भी विद्यमान है । फिर भी बदलते युग क साथ इन जातिया की अपराध प्रवृत्ति मे सुधार आ गया है और अधिकाश लाग कृषि-कर्म मे रत हाकर शात एव व्यवस्थित जीवन बिताने लगे है ।

भील भीलालो को सर जान मालकम ने राजपूता की श्रेणी म रखा है । भिलाले तो स्पष्ट राजपूत ही हैं । [2] भीना को भाषा को देखकर शायद मालकम ने उन्हे राजपूत मान लिया है किन्तु भील मालव की बनवासी आदिम जाति के अन्तर्गत ही माने जावेंगे । भीलालो के सम्पर्क मे आने के कारण उनकी भाषा में आमूल परिवर्तन होकर उनकी मूल बानी सवथा लुप्त हो गई है । [3] बलाई बागरी भी मालव का मूलनिवासी जातियाँ हैं । यद्यपि अन्य जातियो क सम्बन्ध म ता भाट परम्परा म उनके बाहर से आने का उल्लेख मिलता है । किन्तु उक्त दाना जातिया के सम्बन्ध म किसा प्रकार के प्रमाण उपलब्ध नही हैं । खाती और कुलमी पाटीदार मालवा की सम्पन्न एव परिश्रमी कृषक जातियाँ है । इन्दौर मन्दसौर एव निमाड जिले मे पाटीदारो की सख्या अधिक है । पाटीदार गुजरात स आये हैं । खाती जाति क कृषक पजाब के खत्रियो स एव काश्मीर से अपना सम्बन्ध जोडते हैं । नायता आदि राजपूत जातियाँ हैं जो मुसलिम शासन म मुसलमान बन गयी थी इस्लाम की सामान्य प्रवृत्तियाँ अपनाने क बाद भी इन जातिया ने यहा के लोक जीवन की रुढियो का नहीं छाडा है । पिंजारा छीपा, रगरेज कूंजडा एव बनजारा जाति की स्त्रियाँ आज भी इजार (चुस्त पायजामा) के ऊपर घाघरा (लहँगा) पहनती हैं । ग्रामीण क्षेत्र के पुरुष हिन्दुओ जसी पोषाक ही धारण करते हैं । मुलतानी मुसलमाना की दो शाखायें हैं । लाधा एव बनजारा । लाधा पशु व्यापार एव कृषि करते हैं । [4] काछी, कीर, कहार आदि

---

१ Census of Central India, 1901, Vol XVI, Tabe 17-18

२ Memoirs of Sir John Malcolm ii, pp 155

३ देखें बाग क्षेत्र के भील भिलाले, प्रतिभा निकेतन, उज्जन की सर्वे रिपोट पृष्ठ ११।

४ Memoirs of Sir John Malcolm, ii, p p 113

जातियाँ बुंदेलखण्ड से आई हैं। पशु-पालन से अपनी आजीविका चलाने वाली गवली जाति बुन्देलखण्डी संस्कृतियों को लेकर मालव की संस्कृति में घुलमिल गई है। भोई, पारधी धीमर एवं केवटिया आदि मत्स्य-व्यवसायी जातियाँ भी अपनी आदिम संस्कृति के सौन्दर्य को सुरक्षित रखे हुए है। इस प्रकार वैदिक, शैव, शाक्त एवं तान्त्रिक-परम्पराओं के आधार पर विकसित, अन्ध विश्वास, जादू-टोने, पूजा अनुष्ठान, आचार विचार एवं लोक मान्यताओं के साथ ही गुजरात, राजस्थान, बुन्देलखण्ड एवं दक्षिण आदि निकटवर्ती क्षेत्रों से आई हुई जातियों की परम्परा और संस्कारों का एक विचित्र सहयोग लेकर मालव की लोक संस्कृति एवं भाषा ने एक नवीन स्वरूप धारण कर लिया है। संस्कृति समागम की मनोरम भूमि मालवा में प्राचीन काल से लेकर आज तक न जाने कितनी ही जातियाँ एवं परम्पराएं आकर इतनी घुलमिल गई है कि लोक-जीवन में व्याप्त उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं को विच्छिन्न कर अलग से देखना असम्भव है। व्यक्तिगत आचरण व्यवहार एवं प्रवृत्तियां लोक-जीवन के महा-समुद्र में इतनी विलीन हो गई हैं कि बूंदों के रूप में उनके अस्तित्व का महत्व ही नहीं रह जाता। मालव के हरे भरे विस्तृत मैदानों एवं खेतों में सोने से गेहूँ और मक्का एवं चाँदी सी जुवार की लहलहाती फसलों ने यहाँ जन जीवन को एक विशिष्ट संस्कृति में ढाल दिया है। सम्पूर्ण भूभाग का सामान्य जीवन संघर्षों से बहुत कम टकराया है। अतः शांति प्रियता एवं सौजन्य यहां के लोक-जीवन का शाश्वत स्वभाव बन गया है और कृषिकर्म मालवी जीवन का सुन्दर शिल्प एवं लोकगीत उस जीवन की अभिव्यक्ति का साकार रूप।

मालवी लोक-साहित्य की स्थिति

भारतवर्ष के लोकगीतों में धार्मिक विचारों की जड़ें इतनी सुदृढ़ एवं गहनतम हैं कि संस्कृति और परम्पराओं की निरन्तर प्रवाहित होने वाली विभिन्न धाराओं में भी उसका प्रकृत स्वरूप परिवर्तित नहीं होता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें लोक-साहित्य, लोक-कथा एवं लोक-कलाओं में प्राप्त होता है। भारत के विचारक, मनीषी एवं साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा जन-जीवन की सांस्कृतिक परम्पराओं को समझने में जहां व्यक्तिगत भावना और बुद्धि-वैभव का आश्रय ग्रहण किया है वहां युग-विशेष का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। किन्तु लोक-साहित्य की परम्पराएं जन-जीवन में अबुद्धिवाद के धरातल पर इस तरह व्याप्त हो गई है कि उनका सामान्यतः पृथक करना कठिन हो जाता है। इस क्षेत्र में आकर ग्राम और नगर के जन-मानस में एकाकार हो जाता है। लोक साहित्य में ग्राम एवं नगर की धर्म-भावनाएं एवं परम्पराएं समरस होकर एक साथ गुंथी चली आ रही हैं। युग की हलचल एवं राजनैतिक उत्क्रान्तियों का मानो उन पर कोई असर ही नहीं पड़ता। पुस्तक-बद्ध साहित्य में विकार उत्पन्न हो सकता है, वाह्य प्रभाव का कालुष्य भी आ सकता है किन्तु लोक-कण्ठों द्वारा अबाध गति से प्रवाहित होने वाला साहित्य हमारे देश की संस्कृति एवं आचार-परम्पराओं को भूत और भविष्य की शृंखलाओं में बांध कर वर्तमान का जीवित सत्य बना देता है।

सम्पूर्ण भारत में व्याप्त लोक-चेतना के स्पन्दन का मालव में भी वही स्वरूप मिलेगा जो देश के विभिन्न भूभागों में दृष्टिगत होता है। वस्तुतः संस्कार, विचार एवं सामाजिक

धार्मिक भाव भूमि पर आधारित लोक-जीवन की परम्परा और मान्यताओं को लेकर मानव का लोक-साहित्य अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखता। धार्मिक व्रत, त्योहार एवं अनुष्ठानों से सम्बन्धित लोक-कथाएं जन्म विवाह आदि संस्कारों के लौकिक आधार, अन्ध विश्वास एवं सामाजिक रूढ़ियां, नारी मानस की स्नेह द्राह से आपूर्ण कुण्ठाएं, अतृप्त वासनाएं, आदि भारतीय प्रदेशों के लोक-साहित्य में समान रूप से उद्भावित हुई हैं। किन्तु जलवायु, प्राकृतिक स्थिति, जातिगत परम्पराओं तथा अन्य स्थानागत विशेषताओं के कारण प्रत्येक प्रदेश विशेष के लोक साहित्य के बाह्य स्वरूप मे यत्किंचित् अन्तर अवश्य ही दिखाई पड़ता है। मालव का लोक-साहित्य भारतीय संस्कृति का एक संश्लिष्ट अंग बनकर अपनी परम्परागत विशेषताओं से आवेष्टित है। मालव की शस्य श्यामला भूमि ने अनेक कवियों की प्रतिभा को जागृत कर काव्य सृजन की प्रेरणा दी। तब यहाँ का जन-सामान्य अपने भावों के उफान को अभिव्यक्त न करें यह कैसे सम्भव हो सकता है। भारत का हृदय-स्थल मालव अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सदा ही विभिन्न संस्कृति एवं जातियों का संगम स्थल रहा है। अतः यहां के लोकगीतों मे लोककथाओं में लौकिक रीति-नीति और संस्कारों मे रोचक विविधता एवं विलक्षणता के दर्शन होंगे। प्राचीन काल में यहां वैदिक, शैव शाक्त एवं आदिवासी प्रेरणाओं का समन्वय रहा है अतः लोक-कथाओं मे, गीतों मे भी देवी देवताओं के सम्बन्ध मे अनेक मान्यताओं का निर्धारण हुआ है। रतजगा के समय स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत प्रमाण मे प्रस्तुत किये जा सकते हैं। चौंसठ जोगनी, भूखीमाता, लालबाई फूलबाई, बिजासन एवं विक्रम नृपति की कुल-देवी हरसिद्धि के सम्बन्ध मे अनेक लोक-कथाएं एवं गीत प्रचलित हैं जिनका संकलन होना शेष है। मालवा का कथा-साहित्य अन्य जनपदों की मौखिक-कथाओं की तरह अपना अलग ही अस्तित्व रखता है। धार्मिक व्रत और त्योहारों से सम्बन्धित कथाओं के साथ ही मन-रंजन के लिये कल्पित की गईं कथाओं का यहां भी अनन्त भण्डार है। आबालवृद्ध नर नारी कथाएं कह कर कल्पनाओं के मनोरम प्रदेश मे विचरण करने के साथ ही सिद्धान्तों का प्रचार, उपदेश एवं कौतूहलगत भावनाओं की रुचि से ही वार्ताएं कहते और सुनते हैं। बालक अपनी वृद्धा दादियों के मुख से कथाओं को सुन कर आश्चर्यमय भावनाओं को लेकर मीठी नींद सोता है। प्रत्येक बालक का मनोरंजन करने वाली एक कहानी का उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

> एक थो राजो, खातो थो खाजो, खाजा को पड्यो बूर,
> बूर लई गई कीडी (चीटी) कीडी ने बनायो बिमलो,
> बिमलो लई गयो कुमार, कुमार ने बनाई मटकी।

बाल सुलभ कल्पनाओं को उभारने के साथ ही इस प्रकार की कहानियां मानव समाज का संस्कार भी करती हैं। उक्त कहानी मे कल्पना की असम्बद्धता के स्थूल रूप को तो देखा जा सकता है कि राजा और खाजा को तुक मिलाने के अतिरिक्त चीटी के बिमले से कुम्हार द्वारा मटकियां बनाना कैसे सम्भव हो सकता है। परन्तु कथाकार की मनोभूमि को समझने पर ही उसके गाम्भीर्य का परिचय हो सकता है। यह संसार ऐसा है

कि यहा पर प्रत्येक वस्तु का अन्योयाश्रित सबंध है, परस्पर अवलम्बन से ही विश्व का कार्य निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, ऐसी कथाओ के द्वारा जटिल भाव भी मानव मस्तिष्क पर सरलता के साथ अङ्कित किये जा सकते हैं, विश्व के प्राचीन विचारको ने कहानी के माध्यम द्वारा देशानुकूल सस्कार एव प्रभाव डालने की चेष्टा की है, पञ्चतन्त्र एव हितोपदेश के मूल भावना एव उद्देश्य का धूमिल एव प्रछन्न आभास हमे इस प्रकार की लोक कहानिया मे प्राप्त हो सकेगा, जहा बालक को मनोरञ्जन के साथ शिक्षित किया जाता है, स्त्रिया के व्रत और त्योहारो से सबधित कथा-वार्ता और कहानिया के सम्बन्ध मे विचार करना यहा आवश्यक है, क्योंकि भारतीय कथा-परम्पराओ मे उनका अलग से अस्तित्व रही है।

बालका की कहानियो की तरह युवा और बृद्धा के साथ ही किशारा को आकर्षण डार मे बाधने वाली 'सोना रूपा' की कथा मालवी लोक साहित्य की अपनी देन है। इस सुदीर्घ कथन का सुनने के लिये उत्सुक आबाल, बृद्ध नीद की खुमारी को पीकर रात्रि क तृतीय पहर तक समाप्त कर देते हैं। यहाँ जन मानस की स्मृति-क्षमता पर वास्तव मे आश्चर्य हाने लगता है कि विभिन्न घटनाओ क जाल मे उलझी हुई इन लम्बी कथाओ को मौखिक रूप से कैसे जीवित रखा। निहालदे की गद्य पद्य मयी कथा क सबध मे सात सौ परवाना (प्रेम पत्रा) का उल्लेख आता है। निहालदे अपने प्रियतम को सात सौ प्रेम-पत्र भेजती है। प्रत्येक प्रम-पत्र मे रोचक घटनाओ का समावेश होता है। निहालदे की पूरी कथा को सुनाने वाला आज तक प्राप्त नही हो सका। बडनगर के श्री अनूप ने निहालदे की कथा के कुछ अश लिपिबद्ध अवश्य किये हैं। इसी तरह शृगारिक गीत-कथाओ मे 'सारठ एव 'चम्पाद' उल्लेखनीय हैं। इन गीत कथाओ पर सोरठी और गुजराती लोक-साहित्य का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत हाता है। मध्य-युग म मालवा मे गुजरात, राजस्थान एव बुन्देलखण्ड से जो अनेक जातियाँ आकर यहाँ बस गई उनकी परम्पराएँ एव गीत भी मालव की मिट्टी में नवीन रूप से प्रकट हुए। आश्विन मास की नवरात्रि मे अम्बादवी के पूजन का समारोह गर्वा के नृत्य और गीता के साथ पूर्ण होता है। पुरुपा ने भी गुजरात की गरबा प्रथा का शरदकालीन धार्मिक उत्सव के रूप मे अपनाया है। मालवी स्त्रिया का गरबा उत्सव विजयादशमी के एक दिन पूर्व समाप्त होता है और पुरुपो के गरबा आश्विन शुक्ला एकादशी से प्रारम्भ होकर शरद पूर्णिमा की रात्रि के समाप्त हाने पर प्रभात मे विसर्जित हाते है गर्बा गीतो म गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित हाता है। गुजरात के गरबा गानों की तरह राजस्थानी परम्पराओ से प्रेरित 'तेज्या धाल्या, नागजी-दूधजी' एवं चतन कुँवर' आदि गीत-कथाएँ एक तरह से महाकाव्य का स्वप्न लिये हुए हैं। सर्पों क प्रति पूजा भाव क साथ ही अनेक वीर गाथाओ का इतिहास इनमे छिपा हुआ है। कृषि सभ्यता एव भूमि की महत्ता को प्रकट करने वाला गोचारण का लोक महाकाव्य 'हीड' है, यह बगडावत गूजरो की परम्परा से सबधित है। धार्मिक भावनाएँ एव एकादशी व्रत के महात्मा की लोक-गाथा, 'ग्यारस' ग्रामीण-जनो का अपना पुराण है। जनता की यह गीत-कथा दार्शनिक महत्व रखती हैं। किसी भी जटिल तत्व को कथा भाव म सुलझा कर रख देना हमारे भारतीय पुराण एव उपनिषद् साहित्य की विशेषता रही है। जनता की ये गाथाएँ प्राय उपदेश क लिये ही होती हैं। यहा पतन या जीवन के

निकृष्टतम स्तर का किंचित आभास भी नही मिल पाता। मानव जीवन की पूर्णता सुख और आनन्द प्राप्ति का आदर्श इन गीत-कथाओ में अबाह्य रूप से प्रतिपादित हुआ है। मालव मे प्रचलित लोक-नाट्य माच की कथाएँ भी जन रुचि, परम्परा, विश्वास और अपनी धारणाओं का प्रकट करने की क्षमता रखती है।

स्त्रिया की मौखिक परम्परा मे प्रचलित कथा, वार्ता एव गीत-कथाओ की तरह लोक-गीता का अनन्त वैभव भी आकर्षण की वस्तु है। सम्भव है कि अनेक गीत एव कथाए लिपिबद्ध नहा हाने के कारण विस्मृत होकर काल की क्रूर क्रोड मे अपना अस्तित्व खो बैठी हो भजन एव त्यौहारो के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो के प्रचलन की गति से हम उक्त अनुमान को सत्य होता हुआ पाते हैं। आज ही से पच्चीस वर्ष पूर्व स्त्रियो और पुरुषो मे गेयता की जो स्वत प्रेरित प्रवृत्ति थी उसमे शैथिल्य आगया है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने मालव मे प्रचलित चन्द्रसखी एव नटनागर के भजना का उल्लेख किया है।[1] चन्द्रसखी के नाम से प्रचलित लगभग पचास गीतो का सग्रह करने मे मुझे सफलता मिल गई है। किन्तु नटनागर का एक भी गीत किसी व्यक्ति के मुख से सुनने को नही मिला। वैराग्य भावना से युक्त भर थरी एव गापीचन्द की कथाओ से संबंधित जोगडे के गीत अवश्य प्रचलित हैं। भक्तिपूर्ण गीता में रामदव जी एव पनीहा के गीत विशेष उल्लेखनीय है। मालव के जन मानस ने कबीर और तुलसी का भी मालवीकरण कर दिया है। कबीर एव तुलसी के नाम की छाप देकर मालवी महिलाओ ने स्वय की प्रतिभा और भक्तिपूर्ण हृदय को लोकगीता मे उतारा है। स्त्री-पुरुषा के द्वारा कहे गये मालवी दाहे भी जन हृदय को समझने-परखने के लिये पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

काव्य प्रतियोगिता जैसी प्रवृत्ति को प्रकट करने वाली 'तुर्रा किलङ्गी' की परम्परा आज से अर्द्ध शताब्दी पूर्व मालवा एव निमाड मे व्यापक रूप से विद्यमान थी। उत्तरी मालव के क्षेत्र मे मन्दसौर नीमच एव मनासा आदि स्थाना पर तुर्रा किलगी पिछली शताब्दि तक पुरुषो के मनोरञ्जन का प्रमुख साधन था। किन्तु इस परम्परा का अब लोप होता जा रहा है। इसका स्थान नगरा में प्रचलित राम मण्डल लेता जा रहा है। राममण्डल मे लोक साहित्य की प्रकृत भावना का अभाव है और खडी बोली में रचना होने के कारण उसको मालवी लोकगीता की कोटि मे रखकर उस पर विचार नही किया जा सकता, वैसे रामदङ्गल पद्धति का आविर्भाव सन् १९४४ के बाद की वस्तु है और उसका प्रभाव भी दो चार नगरों को छोडकर अन्यत्र दिखाई नहीं पडता।

मालवी में गीतों की अकृत्रिम छटा के साथ ही अशिक्षित ग्रामीण समाज अपनी परम्परा के कारण ज्ञान और बुद्धि के कौतूहल वैभव को आज तक सुरक्षित रखता चला आ रहा है। इसका प्रमाण मनोरञ्जन की छोटी-मोटी कहानी और चुटकला के अतिरिक्त मालवी की पहेलियों में मिलेगा। नगर के नागर नागरिका मे प्राय विवाह आदि अवसरों पर बुद्धि और सामान्य ज्ञान की परीक्षा के लिये पहेलिया बुझाने को कहा जाता है। मालवी मे गेय

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १३।

पहेलियां को 'पारसी' कहते हैं।[१] गेयता की दृष्टि से इनका स्थान लोकगीतों की कोटि में आता है किन्तु ग्रामों में बसने वाली जनता के मुख पर जीवन की अनुभूतियों से आप्लावित अनेक अगेय पहेलियां भी नाचा करती हैं यहाँ तक कि छोटे बालक भी बुद्धि की परख के इस खेल में पीछे नहीं हटते। ये पहेलियां सामान्य जीवन की प्रमुख घटनाओं और वस्तुओं में सम्बन्धित रहती हैं। इनमें बुद्धि परीक्षा के साथ-साथ ही मनोरञ्जन के तत्व भी रहते हैं। कौतूहल मयी बातें, आश्चर्यजनक और अनहोनी कल्पनातीत सूझ को देखकर परिष्कृत एवं व्यापक बुद्धिवाले सम्भ्रजनों को भी ग्रामीणों के मस्तिष्क की कसरत को समझने में उलझना पड़ता है। यही उलझन पारसी, गेय पहेली एवं कणी अथवा बारतां (अगेय पहेली) की विशेषता है।[२] मालवी के गद्यात्मक मौखिक लोक-साहित्य को अगीत साहित्य की संज्ञा दी गई है। अवकाश के समय अथवा शीतकाल की रात्रि में वस्त्राभावों की पूर्ति के लिये अलाव के चारों ओर बालक युवा एवं वृद्धों का समुदाय एकत्रित हो जाता है और उनका यह सामाजिक नैकट्य सङ्गीत-साहित्य की मौखिक परम्परा को जीवित रखता है। पुरवा में प्रचलित कथाएँ, लोकोक्तियां, पहेलियाँ, चुटकुले एवं गपशप ऐसे समय ही मनोरञ्जन के प्रधान अङ्ग होते हैं।[३] इनमें लोकोक्तियों का बड़ा महत्व है। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोकोक्तियों को मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र कहा है।[४] मालवी लोकोक्तियाँ भी ज्ञान और रस का अनन्त भंडार हैं। युग युग से संचित जीवन की विविध अनुभूतियां सूत्र रूप में लोकोक्तियों में आकर बँध गई हैं। इतिहास की कुछ ज्वलन्त घटनाएँ भी लोकोक्तियों में आकर इतनी प्रच्छन्न हो चुकी हैं कि उनका प्रकृत ज्ञान भी धूमिल होगया है। व्यक्ति की महानता को तुलनात्मक दृष्टि से परखने के लिये 'काँ (कहा) राजा भोज ने का गांगली तैलन' लोकोक्ति है। तेलगाना का अधिपति तैलप एवं त्रिपुरी का राजा गांगेयदेव कण जन दृष्टि में आकर एक हो गये और गांगली तेलन का स्वरूप धारण कर लिया। घानी से तेल निकालने वाली एक अकिंचन तेलन जिस प्रकार एक राजा के महान व्यक्तित्व की समता में प्रस्तुत नहीं की जा सकती, उसी प्रकार राजा भोज की वीरता और उदारता के सम्मुख प्रपंची एवं कायर तैलपराज नहीं ठहर सकता। इतिहास की धुँधली स्मृति जन मानस पर अवश्य विद्यमान है। यद्यपि भोज की लड़ाई तैलप से नहीं हुई थी। राजा भोज के पितृव्य मुञ्ज एवं तैलप के मध्य युद्ध अवश्य हुआ था। तैलप का समकालीन त्रिपुरी का राजा कलचुरी नरेश गांगेयदेव मुञ्ज और भोज का समकालीन था जिसे मुस्लिम इतिहासकारों ने गंग नाम से पुकारा है।[५] जनता के मस्तिष्क में इतिहास के दो प्रसिद्ध व्यक्ति गंग और तैलप एक हो गये। गङ्ग का विकृत स्वरूप गांगली होगया और तैलप तेलन बनकर गांगली का जाति सूचक विशेषण बन

१ पारसी पर विवाह के गीतों में विस्तार के साथ विचार किया गया है।

२ मालवी पहेलियों के लिये देखें मेरा लेख विक्रम 'मासिक' भाद्रपद २००७, पृ० २ व वैशाख २००६।

३ मालवी और उसका साहित्य पृष्ठ ७०।

४ पृथ्वीपुत्र पृष्ठ ११।

५ अ Dynastic History of Northern India, Vol II (H C Roy) p p 772

ब प्रबंध चिंतामणि मेरुतुङ्गाचार्य, पृष्ठ ३३।३६।

गया। इस तरह इन लोकोक्ति मे युग-युग के इतिहास का कटु सत्य अभिव्यक्त हुआ है। मालव का भूमि सदा ही इतर व्यक्तियो के द्वारा आक्रान्त रही है और यहाँ के निवासी स्वयं की भूमि का वैभव का उपभोग नहीं कर सका। युगो की संचित अनुभूति 'मालवा की धरती को कई, या राड़ का परभोगी है' कहावत में प्रकट होती है। वास्तव में परमारो के शासन के पश्चात महामालव की जनता को पराजित रहना पड़ा। मध्ययुग के विभाजी विधर्मी पठान एवं मुगलों के शासन मे मालव की जनता का सांस्कृतिक एवं भौतिक जीवन बड़ा ही त्रस्त ग्रस्त रहा। इसके पश्चात् मराठो के शासन मे भी यहाँ की सामान्य जनता उपेक्षित ही रही। भाषा, संस्कृति एवं साहित्य के उन्नयन की दृष्टि से मराठा शासन का वर्तमान युग भी अधकार युग ही रहा। मध्य भारत के निर्माण के पूर्व ग्वालियर, इन्दौर आदि मराठा राज्यों मे मालवी लोगों का शासन मे कितना स्थान मिल सका था? इतिहास की इस कटु स्थिति का विगत युग एवं आज की पीढ़ा भूल नहीं सकी है। किन्तु यह कठोर सत्य लोक साहित्य मे आंशिक रूप से ही सही, प्रकट हुआ है। लोकगीतों की नारी ने मराठा शासन की अरक्षित स्थिति के प्रति असन्तोष व्यक्त करते हुए अभिशाप ही दिया है घर जइयो मरैठा राज, बुन्देली बैरी ले गयो।[1] मालवा और बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती प्रदेश में बुन्देली डाकुओं द्वारा त्रस्त नारी ने जहाँ अत्याचारों प्रति रोष प्रकट किया है वहीं अहिल्याबाई होल्कर के उदार एवं धर्ममय चरित्र को मालवी जनता ने श्रद्धा की दृष्टि से भी देखा है। लोकगीतों में महारानी अहिल्याबाई को अवतार माना गया है।[2] पहिले दो सो छः वर्षों के इतिहास मे अहिल्याबाई के अतिरिक्त केवल एक और राजपूत वीर के नाम को लोकगीतों का मानस ग्रहण कर सका है। मालव के नरसिंहगढ़ राज्य का राजपुत्र चैनसिंह अंग्रेजों से युद्ध करता हुआ सिहोर (भोपाल राज्य) की छावनी मे वीर गति को प्राप्त हुआ था। उसकी अलौकिक वीरता के संबंध में भी एक दो लोकगीत सुनने को मिले हैं।

मालव प्रदेश का लोक साहित्य अपनी प्रदेशगत नैसर्गिक सुषमा और वैभव की तरह ही समृद्ध एवं मनोहारी है। गीत एवं अगीत, प्रबन्ध एवं मुक्तक और गद्य एवं पद्य की विभिन्न शैलियों में मालवी लोक साहित्य की प्रचुर सामग्री मौखिकरूप से आज भी सुरक्षित है। किन्तु उचित सकलन के अभाव मे इसका सांगोपांग मूल्य अङ्कित करना सहज संभाव्य नहा है। बदलते युगों की तीव्रतम गति मे इसका स्वरूप यथावत् ही रहेगा यह अनुमान कल्पना से परे की वस्तु है। आज आवश्यकता इस बात की है कि किसी व्यक्ति विशेष के प्रयास को इति न मानकर व्यापक रूप से शासकीय अथवा अशासकीय संस्थाओं के द्वारा सम्पूर्ण साधनों के साथ मालवा के विस्तृत एवं विच्छिन्न लोक साहित्य के सङ्कलन का काय प्रारम्भ होना चाहिये।

---

१ ग्राम भाटनी (भेलसा) से प्राप्त एक गीत की प्रथम पंक्ति।

२ रेल्लया श्रौलार जिनका पुनगई पार, हाथों करे दान मुलक मुलक में नाम।
बुढी परकासना धरम खम्ब जाव का, देवल श्रो बध घाट तीरथ पे लगे घाट
सूरवीर हसत राम धनगर या जातरा, चढता घोड़े असवार पड़ती पिंडार
उनके मारने से डरते सारी विल्लात का

—ग्राम लेकोड़ा(उज्जन) से प्राप्त। पृष्ठ २।१२०

मालवी लोक-साहित्य का संकलन-कार्य

हिन्दी की जनपदीय भाषाओं में लोकगीतों के संकलन का व्यवस्थित इतिहास पं० रामनरेश त्रिपाठी की अथक साधना एवं प्रयास से प्रारम्भ होता है। इसके पहिले स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी ने सन् १९१३ में सरवरिया नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें गोरखपुर एवं बस्ती जिले की भाषा के गीत एवं छोटी कहानियाँ अँग्रेजी अर्थ सहित दी गई थी। सन् १९२४ में श्रीयुत सन्तराम ने भी सरस्वती में पंजाब के कुछ गीत हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशित कराये। तभी से श्री त्रिपाठी जी लोकगीतों की खोज में संलग्न हुए।[1] सन् १९२८ तक उन्होंने उत्तर प्रदेश, पंजाब, काश्मीर, राजस्थान एवं गुजरात तथा काठियावाड आदि प्रदेशों में यात्रा कर दस-बारह हजार गीत एकत्रित कर लिए। इस गीत यात्रा में उन्होंने पैदल एवं रेल से लगभग नौ-दस हजार मील का सफर किया।[2] इसके पश्चात् भी पण्डित जी का कार्य बड़े उत्साह के साथ चलता रहा। किन्तु दुर्भाग्यवश मालव प्रदेश में उनका शुभागमन नहीं हुआ। अन्यथा यहाँ के लोक गीतों की अमूल्य सम्पत्ति का प्रमाण भी उसी समय सिद्ध हो जाता। गीत संग्रह के कार्य में जिन महिलाओं और सज्जनों ने त्रिपाठीजी को किसी प्रकार की सहायता प्रदान की थी उनकी सूची में इन्दौर के दो व्यक्तियों के नामों का उल्लेख हुआ है। महिलाओं में श्रीमती राजकुँवर बाई है, एवं पुरुषों में प० जगन्नाथराव दुल्लू।[3] परन्तु इसमें सहायता किस प्रकार की दी गई इसका कोई उल्लेख नहीं है। संभवतः दो चार गीत लिखकर भेज दिये गये होंगे। इस प्रकार त्रिपाठी जी के गीत संग्रह में मालव से प्रचुर मात्रा में गीतों का समावेश नहीं हो सका किन्तु मालवी लोक-साहित्य के संकलन कार्य में उनकी प्रेरणा अनुकरण के रूप में अवश्य प्रकट हुई और सन् १९३२ एवं ३८ के बीच में भूतपूर्व इन्दौर राज्य के शिक्षा एवं रेवेन्यू विभाग द्वारा मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति के तत्वावधान में लोक-गीतों के संकलन का कार्य प्रारम्भ किया गया। गावों की प्राथमिक शालाओं के शिक्षक एवं पटवारियों से लोक-गीत लिखवा कर मँगवाये गये। इन्दौर राज्य द्वारा संकलित इस गीत-संग्रह की चर्चा प्रायः पुराने लोगों से सुना करते थे किन्तु उसका पता नहीं लग रहा था कि अचानक ही दिनांक १५ जून १९५४ को मध्य भारत हिन्दी-साहित्य-समिति के कार्यालय में गीतों की वही फाइल देखने के लिये प्राप्त होगई। संकलित गीतों का सम्पादन होल्कर कालेज के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० कमला शंकर जी मिश्र ने किया है। मालवी भाषा एवं लोक-साहित्य के महत्व पर एक विस्तृत भूमिका भी लिखी गई। संकलित गीतों में भीली, निमाडी एवं मालवी के कुछ गीतों का समावेश है। ये गीत केवल होल्कर राज्य के ग्रामों से ही एकत्रित किये गये थे, अतः सम्पूर्ण मालवी गीतों के प्रतिनिधित्व की क्षमता का नहीं होना आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य तो उस समय होता है जब सरकारी कागजों के अम्बार में लोक-गीतों की यह अमूल्य निधि भी उस युग की धूल खाकर लगभग-सोलह वर्षों के पश्चात् प्रकट हुई। यदि यथा समय ही मालवी से

---

१ कविता कौमुदी, भाग ५ भूमिका, पृष्ट २४।२५।

२ देखें वही, पृष्ठ ४३।

३ देखें वहीं। पृष्ठ ७१, सहायकों की नामावली, सूची क्रमांक ७ एवं ६५।

सम्बंधित यह गीत संग्रह प्रकाशित हो जाता तो लोक-गीतों के अन्य अध्ययनकर्ताओं के लिये यह एक बड़े महत्व का संग्रह होता। फिर भी इस प्रयास का मालवी लोक साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक महत्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस अप्रकाशित गीत संग्रह के अप्राप्य होने की स्थिति में श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव जी को मालवी लोक-गीतों का प्रथम सकलन कर्ता मानते थे किन्तु लिखित प्रमाण प्राप्त होने पर अब प्रारम्भिक प्रयास का श्रेय भूतपूर्व होल्कर राज्य एवं मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति को ही दिया जायगा, जिसने सन् १९३२ में ही इस दिशा में सुव्यवस्थित कार्य प्रारम्भ कर दिया था। लोक साहित्य विशेष कर मालवी लोकगीतों के सकलन कार्य को दो कालों में विभाजित कर सकते हैं —

१—सन् १९३२ से सन् १९४४ तक
२—सन् १९४४ से सन् १९५४ तक

सन् १९३२ एवं ४४ के एक युग के समय को प्रारम्भिक प्रयास का काल ही कह सकते हैं, क्योंकि सकलन का कार्य पूर्ण रूप से प्रदेशव्यापी न होकर व्यक्ति विशेष एवं क्षेत्र विशेष तक ही सीमित रहा। श्री जी० आर० प्रधान ने मालवी के कुछ गीतों को लेकर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार अवश्य किया किन्तु अधिकाश व्यक्तियों ने स्फुट गीतों को लेकर कुछ लेख ही लिखे हैं जिसमें भावुकता एवं रसात्मक प्रवृत्ति ही अधिक पाई जाती है। निम्न लिखित लेख सामग्री में लोक साहित्य के सकलन का आभास मात्र प्रकट हो जाता है —

१ श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'—मालवी के भेद और उनकी विशेषताएं हिंदुस्तानी एकेडमी में प्रकाशित, जनवरी १९३३।

२ होलकर राज्य-द्वारा सकलित गीत—
 १ मालवी
 २ निमाडी
 ३ भीली } सन् १९३२ ३८ के मध्य।

३ श्री जी० आर० प्रधान—'सकलन का क्षेत्र धार राज्य Folk Songs from Malwa [The Journal of the Department of Sociology, Bombay vol VII, IX में प्रकाशित लेख]

४ श्री प्रभागचन्द शर्मा—मालवी लोकगीतों में नारी, हंस' मासिक में प्रकाशित १९४०।

५ श्री रामनिवास शर्मा—'गव की एक अपूर्व साहित्यिक वस्तु', 'वीणा इंदौर, सितम्बर १९४१।

६ श्री विश्वनाथ पौराणिक—मालवा के ग्राम गीत, 'वीणा' इंदौर, मई १९४१।

७, श्री गोपीबल्लभ उपाध्याय—एक लेख साधना १९४३।

८ श्री चन्द्रसिंह झाला–मालवा के ग्रामगीत वीणा (इंदौर) दिसम्बर १९४४।

सन् १९४४ के पूर्व जिन व्यक्तियों ने मालवा के कुछ गीतों को लेकर लेख लिखे हैं उनमें साहित्यिक प्रवृत्ति ही अधिक है। पं० रामनिवास शर्मा ने तो लोक गीतों से संबंधित एवं दोहे की व्याख्या एवं काव्य-सौन्दर्य पर लगभग छः सात पृष्ठ का लेख लिख डाला था। ग्राम के साहित्य की ओर लोगों का ध्यान अवश्य गया था किन्तु किसी भी व्यक्ति में सकलन की प्रवृत्ति सजग नहीं हो पाई। इने गिने दो चार-लेखकों में श्री चन्द्रसिंह झाला ने अवश्य इस दिशा में कुछ प्रयास किया। मालवा के कृषक-जीवन एवं लोकगीतों के संबंध में उनके तीन-चार लेख वीणा में प्रकाशित हुए। इन लेखों में झालाजी ने विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लगभग ४० गीतों के सुन्दर उद्धरण दिये हैं।[1] झालाजी के अतिरिक्त सन् १९४४ तक श्री श्याम परमार ने भी लोक-गीतों के विषय में लिखना प्रारंभ कर दिया था। ग्वालियर से प्रकाशित जयाजी प्रताप (साप्ताहिक) में श्री बद्रीप्रसाद परमार के (श्री श्यामपरमार का प्रकृत एवं घर का नाम) नाम से मालवा के ग्रामगीत शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था? उसमें लोकगीतों के सकलन की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है, 'मालवा के ग्रामगीत लिखित नहीं हैं। स्त्रियों और पुरुषों ने इस पर कभी सोचा भी नहीं कि उनके गीत लिख जाने मालवा के गीतों का संग्रह करना कठिन जरूर है क्योंकि स्त्रियों की सकोच-वृत्ति गीतों का लिपिबद्ध करने में अवश्य बाधक होती है। इस काम को शिक्षित स्त्रियाँ जितनी सरलता से कर सकती हैं पुरुष नहीं अतः मालवी गीत जो कि कोमल भावनाओं से ओत प्रोत, कर्ण-प्रिय सुमधुर है, संग्रह किये जावें। उनका संग्रह होने पर साहित्य की नवीनता बढ़ जावेगा तथा उनका संग्रह जन साहित्य का विशेष प्रतीक होगा। इन गीतों का एकत्रित करना प्रत्येक मालवी से परिचित स्त्री-पुरुषों को अपना कर्तव्य समझना चाहिए''।[2]

वास्तव में गीत अथवा अन्य प्रकार के लोक-साहित्य को हेय एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। 'बइरों का गीत लिखने का अच्छो धन्धो पकड्यो' आदि व्यंगपूर्ण उक्तियों के सुनने में हम लोग तो अभ्यस्त हो गये हैं किन्तु स्त्रियों की सकोचशील प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी अप्रत्याशित बाधाएँ भी आई एवं लोगों के द्वारा शका एवं उपहास की दृष्टि से भी देखे गये। मालवी लोक-साहित्य के क्षेत्र में श्याम परमार ने अपना कार्य प्रारम्भ रखा और वे व्यवस्थित ढंग से लोक-साहित्य की विविध सामग्री के सकलन में निरन्तर व्यस्त रहे।

मालवी का लोक-साहित्य अत्यन्त ही विशद एवं विभिन्नता को लिये हुए है, और आज तक उसका विधि-पूर्वक संग्रह नहीं हो सका है। इस लेखक ने श्याम परमार आदि साथियों को लेकर प्रतिभा निकेतन नाम की संस्था के तत्वावधान में ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर

---

१ —चन्द्रसिंह झाला के तीन लेख —

१—मालवा के किसानों का सङ्गीत प्रेम वीणा, अक्टूबर ३६।

२—मालवा के किसान वीणा, अप्रल १९४१।

३—मालवा के ग्राम गीत वीणा, सितम्बर १९४४।

२. जयाजी प्रताप १५ अप्रल १९४३।

लोक-साहित्य सम्बन्धी सामग्री संचित करने का प्रयास किया । किन्तु इस प्रयास में हमें आंशिक सफलता ही मिली । प्रतिभा निकेतन को ग्राम के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की स्थिति के अध्ययन, पर्यवेक्षण एवं अन्य रचनात्मक कार्यों मे भी संलग्न रहना पड़ता था। अतः लोक साहित्य के संकलन का उद्देश्य पृष्ठभूमि मे आ गया । फिर भी जून १९५० में सेकाडा ग्राम मे तीन सप्ताह का शिविर एवं जून १९५१ में बाघ की प्रसिद्ध गुफाओं में चार सप्ताह का कार्य लोक-साहित्य के संकलन-कार्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण आयोजन थे। इसी समय से लोक-साहित्य को विभिन्न मौखिक-परम्पराओं को लिपिबद्ध करने का व्यवस्थित क्रम निर्धारित हो गया । मेरे निजी संग्रह की निम्नलिखित सामग्री उल्लेखनीय हैं

१ मालवी पहेलियाँ संख्या २००
२ मालवी लोकोक्तियाँ संख्या १००० के लगभग
३ मालवी दोहे ,, १४५
४ मालवी के शब्द ,, ७००० *

५ स्त्रियो के गीत—
(१) संस्कार सम्बन्धी ५३६
(२) ऋतु एवं त्योहार सम्बन्धी ११०
(३) भक्ति भावना के गीत १०

६, पुरुषो के गीत—
(१) कथा-गीत [लघु] ५
(२) गेय प्रबन्ध-कथाएँ ५
(३) भक्ति भावना के गीत ५५

७ बालको गीत— ५५
८ मालवी, भीली, निमाडी भाषा-सम्बन्धी नोट्स ।

उपरोक्त लोक-साहित्य का संकलन उज्जैन, शाजापुर, इन्दौर, बडनगर, रतलाम, मन्दसौर आदि प्रमुख नगर एवं इनके निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से किया गया है। भीली, निमाडी बुन्देली एवं भदावरी (भिण्ड) लोक-साहित्य की संचित सामग्री का विवरण प्रस्तुत करना यहां अप्रासंगिक होगा । उक्त संग्रह मे राजोद ग्राम (बडनगर) से विद्यार्थी कैलाश त्रिवेदी द्वारा प्रेषित साहित्य भी सम्मिलित है ।[1] इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्राप्त लेखों से भी कुछ मालवी लोकगीतो का संकलन कर लिया है । उक्त संग्रह के अति

---

* महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की प्रेरणा से मालवी का शब्द-कोश संकलित करने की दिशा मे यह प्रयास-मात्र था, जो अपूर्ण स्थिति मे ही रह गया ।

१. राजोद ग्राम से प्राप्त सामग्री
१—स्त्रियों एवं बालकों के गीत । २५
२—पहेलियाँ ५७
३—मालवी लोकोक्तियाँ ६१

रत्न श्याम परमार द्वारा संकलित सामग्री हिन्दी एवं अँगरेजी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के रूप में प्रकट हुई। परमारजी के लगभग पचास लेख अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। 'वीणा' (इन्दौर) में जून १९५० के अङ्क से प्रारम्भ की गई लेखमाला को मध्य भारत, हिन्दी-साहित्य समिति ने 'मालवी लोकगीत' शीर्षक से प्रकाशित की। इस संग्रह में लगभग ५५ लोकगीतों का समावेश किया गया है। लोक-साहित्य से सम्बन्धित प्रकाशित लेखों का संग्रह मालवी और उसका साहित्य एवं भारतीय लोक-साहित्य के नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। श्याम परमार के पास बालिकाओं के साँझी गीत, जन्म-संबंधी गीतों का अच्छा संग्रह है। अन्य गीत-संकलन कर्ताओं में सर्वश्री ओमप्रकाश 'अनूप' बंसीलाल 'बंम' एवं हरीश 'निगम' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'अनूपजी' ने बडनगर के ग्रामीण क्षेत्रों से फाग एवं सावन के गीतों का संग्रह कर सुन्दर लेख लिखे हैं। अन्य तीन कार्यकर्ताओं के संग्रह का प्रामाणिक विवरण इस प्रकार है —

१—'बंम'
  [१] लोकोक्तियाँ १२००
  [२] हीड 'अपूर्ण'
  [३] फुटकल गीत ४०

संकलन का क्षेत्र—नेवेरी एवं भवरासा ग्राम।

२—हरीश 'निगम'
  [१] लोकोक्तियाँ १०६६
  [२] मुहावरे ४००
  [३] पचीडा के गीत ५०

संकलन का क्षेत्र—नागदा, सैलाना एवं आलोट

३—सौ० मनोरमा उपाध्याय
  [श्री मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही' की धर्मपत्नी]
  [१] लोकोक्तियाँ ८००
  [२] लोककथाएँ ४०
  [३] गीत २१०

संकलन का क्षेत्र—रामपुरा, भानपुरा, रतलाम।

लोकोक्ति साहित्य के संकलन-कर्ताओं में उज्जैन के प० सूर्यनारायणजी व्यास एवं सूरज प्रसाद सेठ का प्रयास भी महत्वपूर्ण रहा। व्यासजी के पास लगभग दो हजार मालवी निवाडी लोकोक्तियों का संग्रह है। मालव के अन्य लेखकों ने भी लोक-साहित्य की यत्किंचित् सामग्री एकत्रित कर स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में कुछ लेख लिखे। इनमें सर्वश्री चन्द्रशेखर दुबे, रतनलाल परमार, श्रीकृष्ण गोपाल निगम, कृष्णवल्लभ जोशी, शिव नारायण शर्मा एवं शिवकुमार 'मधुर' आदि स्फुट लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

मालवी लोक-साहित्य के संकलन की दिशा में गीत एवं लोकोक्तियों का संग्रह

तो पर्याप्त हो चुका है। जन्म और विवाह-संस्कार के गीत ही अधिक लिपिबद्ध किये जा सके हैं। ऋतुओं के गीतों का सङ्कलन नगण्य-सा है। पुरुषों द्वारा गेय फाग के प्रचलित लोक-गीत बड़ी संख्या में एकत्रित किये जा सकते हैं। इसी तरह शरत्कालीन गर्बा-गीतों का संकलन होना भी शेष है। प्रबन्ध गीत या गीत-कथाओं का सङ्कलन यद्यपि कष्ट-साध्य है किन्तु उनका लिपिबद्ध होना आवश्यक है। सन् १९५४ के मई और जून मास में उज्जैन के निकटवर्ती ग्रामों में जाकर मैंने हीड चन्दन कुंवर सम्पदा एवं तेज्या धोल्या आदि सुदीर्घ गीत-कथाएं लिपिबद्ध करने की चेष्टा की किन्तु पूरी कथाओं को सुनाने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं मिल सका। हीड को लिपिबद्ध करने मे तीन-चार व्यक्तियों को अलग अलग सुना और बडी कठिनाई से साहू माता आदि की कथा को सम्मिलित कर हीड की लगभग २७५ पंक्तियां ही लिपिबद्ध हो सकीं। इसी तरह चन्दन कुंवर की २०५ एवं तेज्या धोल्या की ३४० पंक्तियां ही लिख सका। ये कथाएं अपूर्ण सी लगती हैं। मालवी का लोक-कथा साहित्य संकलन की दृष्टि से अछूता ही रह गया है। बालकों द्वारा कही जाने वाली छोटी छोटी कहानियां स्त्रियों के व्रत और त्यौहार सम्बन्धी कथाएं एवं पुरुषों की नीति परक एवं शृङ्गार भावना की मनोरंजक लोक-कथाओं का व्यवस्थित संकलन करना वांछनीय है। लोकजीवन से सम्बन्धित कला एवं संस्कृति का, कथा और गीतों का सांगोपांग एवं व्यापक अध्ययन करने के लिये वांछित सामग्री के संग्रह का प्राय अभाव ही रहा। इस दिशा मे योजना-बद्ध कार्य करने के उद्देश्य से स्थापित की गई मालव लोक-साहित्य परिषद् के कारण लोक साहित्य के संगठन एवं अध्ययन में गति अवश्य आ गई है।

मालव-लोक-साहित्य-परिषद्

मालवा की सांस्कृतिक परम्परा एवं गौरवगाथाओं के प्रति जागरूक दृष्टिकोण रखकर उसकी सुरक्षा एवं विकास की प्रेरणा देने के कार्य में विक्रम के संपादक पं०सूर्यनारायणजी व्यास अग्रणी रहे हैं। उनका वास-स्थान उज्जैन, 'भारती भवन' के रूप मे मालव की सांस्कृतिक चेतना का आधार बन गया है। मालव लोक-साहित्य-परिषद् के निर्माण का दायित्व भी पण्डितजी का ग्रहण करना पड़ा। १९ अप्रैल १९५२ के दिन उक्त परिषद् की स्थापना हुई। परिषद् के निर्माण के पश्चात् मालवी भाषा मे साहित्य-सृजन के साथ ही लोक-साहित्य के संकलन एवं समाजशास्त्रीय तथा नृतत्व शास्त्र की दृष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन के लिये प्रेरणाप्रद वातावरण बन गया। मालव भाषी जनता में नवीन चेतना जागृत करने की दृष्टि से परिषद् ने २ नवम्बर १९५२ को शिप्रा तट पर व्यापक मालवी कवि-सम्मेलन का आयोजन किया। लोक-साहित्य के प्रति व्यापक जनानुराग उत्पन्न करने के साथ ही मालवी लोक-साहित्य के सुव्यवस्थित अध्ययन, समालोचनात्मक विवेचन नृतत्व-शास्त्र, संस्कार और सभ्यता एवं विभिन्न जातियों के संस्कार प्रभाव आदि का पर्यवेक्षण कर निश्चित दिशा एवं लक्ष्य को लेकर कार्य करना मालवा लोक-साहित्य परिषद का परम उद्देश्य निर्धारित किया गया। मालवी भाषा एवं लोक-संगीत के शास्त्रीय अध्ययन को भी परिषद् ने अपनी कार्य-सीमा में सम्मिलित कर लिया।[1] उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयोगात्मक दृष्टि से

---

१ देखें—मालवी लोक-साहित्य परिषद् का परिचय पत्र।

जून १९५२ मे गमन्त उपत्यका के सलग्न क्षेत्र निमाड का सास्कृतिक पर्यवेक्षण एव लोकगीत लोककला एव लोक नृत्य आदि के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त की है, परिषद के सक्रिय कार्यकर्ताओ ने अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार अध्ययन के लिये निम्नलिखित क्षेत्र निर्धारित कर लिये है —

१	समाज शास्त्रीय अध्ययन	श्री रामचन्द्र राजे एम ए, एम एस सी, एल एल बी
२	लोक-कथा, लोक साहित्य एव लोक-कला (चित्राकन आदि)	श्री श्याम परमार
३	लोकगीत	प्रा० चिन्तामणि उपाध्याय
४	लोक नृत्य	श्री अमर बोस एव त्रिभुवननाथ दवे[१]
५	लोक सगीत	श्री कुमार गन्धर्व

मालव के विभिन्न क्षेत्रो से वाछित सामग्री प्रस्तुत करने के लिए कुछ परिपत्रो का निर्माण किया गया है। इस कार्य मे विद्यालय के छात्र एव अध्यापको का सहयोग उद्देश्य सिद्धि मे अधिक उपयोगी होगा। सास्कृतिक पर्यवेक्षण के लिये निर्धारित किये गये परिपत्रो का यहा उल्लेख कर देना अप्रासगिक नही होगा।

क्रम सख्या	विवरण
१	ग्राम का परिचय पत्र।
२	लोक-साहित्य के सकलन कर्ताओ के लिए आवश्यक निर्देश
३	परम्परा से प्रचलित धार्मिक आनुष्ठानिक आकृतिया।
४	गुदनाकृतिया।
५	वेशभूषा एव आभूषण
६	लोक नृत्य।
७	भाषा ।

मालवी और उसके लोकगीत

मालवी भाषा की उत्पत्ति एव प्राचीनता

लिखित साहित्य के अभाव मे किसी भी भाषा की उत्पत्ति एव विकास के सम्बन्ध मे मान्यताएँ निर्धारित करना बडा ही कठिन कार्य है। मालव प्रदेश की सामान्य जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा को प्रदेश के नाम पर मालवी कह सकते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है। जनपद के नाम पर ही भाषा एव साहित्य की विभिन्न शैली, वेष विन्यास, विलास विन्यास एव वचन विन्यास के नामकरण की पद्धति प्राचीन साहित्य-शास्त्रियो के द्वारा अपनाई गई है वेष विन्यास, विलास विन्यास एव वचन विन्यास को क्रमश प्रवृत्ति, वृत्ति

---

१ श्री त्रिभुवननाथ दवे का युवावस्था मे ही देहान्त हो गया।

और रीति की सज्ञा दी गई है ।[1] नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने चार प्रकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते समय दाक्षिणात्य पाचाली एव ओड्र मागधी आदि के साथ अवन्ति प्रदेश की प्रवृत्ति को 'आवन्ती' सज्ञा दी है ।[2] इसी तरह भाषा का नामकरण करते समय अवन्तिका की भाषा का 'अवन्तिजा' सज्ञा देकर सप्त भाषा के वर्ग में स्थान दिया है ।[3] अवन्तिजा निश्चित ही उस युग की जीवित भाषा थी, क्योंकि संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के साथ ही इस भाषा के विकल्पन का ग्रहण करने के लिए भरत मुनि ने विशेष आग्रह किया है किन्तु अवन्तिजा भाषा के स्वरूप, गुण और लक्षण आदि के सम्बन्ध में नाट्य शास्त्र मौन है । उसे केवल धूर्तों के द्वारा प्रयुक्त होने योग्य बताया है प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानाम प्यवन्तिजा ।[4] प० मन्नारायणजी व्यास ने अवन्तिजा के साथ 'धूर्त' शब्द का सलग्न देख कर भाषा और प्रदेश की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए 'धूर्त' शब्द की विशेष व्याख्या कर डाली, धूर्त का अर्थ उन्होंने (Diplomate) माना है ।[5] किन्तु यहा भाषा की प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा का प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि श्लोक के उक्त अश का पाठान्तर भी प्राप्त होता है 'याज्ञा भाषा अवन्तिजा'[6] अवन्तिजा को धूर्तों की भाषा घोषित करने वाला अश किसी भी दूषित मनोवृत्ति के कारण ही जोड़ा गया है । मालवी के महत्व एव उसकी प्राचीनता को सिद्ध करने के लिये श्री श्याम परमार ने मालवी की जननी अवन्तिजा को माना है ।[7] किन्तु राजशेखर द्वारा काव्य मीमासा में प्रस्तुत किये गये नवीन प्रश्न का वे उचित समाधान नहीं कर सके । राजशेखर ने अवन्ति पारियात्र एव दशपुर के निवासियों की भाषा को भूत भाषा कहा है ।[8] भूत भाषा पैशाची का ही दूसरा नाम है किन्तु भूत से सलग्न शब्द पिशाच के साथ सम्बन्ध जोड़ कर उसे अनार्य भाषा करार देना उचित नहीं ।[9] फिर भरतमुनि के युग ईसा पूर्व तीसरी सदी से लेकर राजशेखर के समय तक लगभग एक हजार वर्षों के दीर्घ काल को चीर कर अवन्तिजा का वही रूप स्थिर रहा होगा यह भी असम्भव है । नाट्यशास्त्र में जिस अवन्तिजा का उल्लेख मिलता है उसकी अपेक्षा मालवी को हम भूत भाषा के निकट पाते हैं । क्योंकि राजशेखर द्वारा वर्णित भूत भाषा एव प्रचलित मालवी में एक गुण समान

१ देश विन्यास-क्रमो प्रवृत्ति विलास विन्यास-क्रमो वृत्ति, वचन विन्यास-क्रमो रीति राजशेखर कृत, काव्य मीमासा अध्याय ३ (बि०रा० भा० प० पटना)

२ आवन्ती दाक्षिणात्याच पाचाली चौड्र मागधी } नाट्य शास्त्र अध्याय १३ श्लोक ३२ । निर्णय सागर प्रेस १६४३ ।

३ मागध्यवन्तिजा प्राच्या सूरसेन्यर्धमागधी
बाह्लीका दाक्षिणात्याच सप्तभाषा प्रकीर्तिता नाट्य शास्त्र १७।४।

४ वही, १७।५१ ।

५ श्याम परमार के लेख पर दी गई टिप्पणी के आधार पर ।

६ नाट्य शास्त्र अध्याय १७।५१ पाद टिप्पणी ।

७ मालवी और उसका साहित्य पृष्ठ २० ।

८ आवन्त्या पारियात्रा सह दशपुरजै भूत भाषा भजन्ते काव्य मीमासा, अध्याय १०

९ मालवी और उसका साहित्य पृष्ठ २० ।

रूप से विद्यमान है। मालवा की सरसता एवं मिठास तो प्रसिद्ध ही है एवं राजशेखर ने भी भूत भाषा की विशेषता प्रकट करते हुए उसे सरस कहा है।[1]

परमार जी को दूसरा क्रम सिद्ध एवं जैन लेखकों की अपभ्रंश रचनाओं में प्रयुक्त कुछ प्रचलित मालवी शब्दों को देखकर हुआ।[2] हिन्दी काव्य धारा (राहुल जी कृत) में प्रस्तुत कुछ उद्धरणों में प्रयुक्त निम्नलिखित शब्दों को परमार जी मालवी के शब्द मान बैठे

सक्कर खडहि पायस पाय माही	पृष्ठ ४८
सहज अंगिठी भरि भरि रांधे	१५८
जीत्या संग्राम पुरिप भया सूरा	१६८
मासूडी पाननडे मुट्टी हिंडाने	१६१
सोन रूपे सींक वाज	१६३
बळद विग्रापल गविग्रा बाफ	१६४

सक्कर (शक्कर) रांधे (पकाना है) जीत्या (जीतकर) मासूडी (मास), बहूडा (बहू) सोन (स्वर्ण) रूपे (रौप्य), बलद (बैल) आदि शब्द गुजराती एवं राजस्थानी में भी उसी अर्थ में प्रचलित हैं। इन शब्दों के अतिरिक्त मालवी के कई शब्द ऐसे हैं जो गुजराती एवं राजस्थानी में समान रूप से प्रचलित हैं।[3] किन्तु इसका यह तात्पर्य तो नहीं हो जाता कि शब्द-साम्य के कारण हम गुजराती और राजस्थानी को भी अवन्ति अपभ्रंश या मालवी से निसृत मान लें।

वस्तुतः जिस समय अपभ्रंश के आंचल को छोड़कर उत्तर भारत की वर्तमान भाषाओं का जन्म हो रहा था, उस समय उक्त प्रदेशों की आधुनिक भाषाओं की प्रेरणा स्रोत

---

१ सरस रचन भूतवचनम् बाल रामायण, अंक १, श्लोक ४।

२ मालवी और उसका साहित्य पृष्ठ २१।

३ १—गुजराती

सासूडी धूतारी वीर चूनडी भाग २ पृष्ठ ३७।
सासूडी मागे रींनडो रे भीणा वही पृष्ठ २२।
सासूडी सोमल पाया रढियाली रात, भाग, १, पृष्ठ ६६।
सोनला थाटकडो ने रूपला कागसडो .. रढियाली रात, १।६४।
अधमण रुपाना भरन भराया वही १।५३।
सवा मण सोना नु पापडो वही १।५३।
दूध ने साकर पाजो
घाई रे साल रे सोना नो सारो दीनडो चूंदडी २। १७।
ईने वीनडीए रंग रूपाना मोर

२—राजस्थानी १ एवड छेवड म्हारा भात रँधेगा, पृष्ठ ५६
२ आठ बळदा की ए मोरी नीरणी, ,, ६०
३ सासू नणद गुण मानसी, पृष्ठ ५२ (राजस्थान के लोकगीत)

एक ही है, इसम कोई स देह नही है। प्रद गत भेद तो कालान्तर म विकसित हुए हैं। गुजराती के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने गुजर प्रदेश की प्राय भाषा के सम्ब ध म विचार करते समय मालव की भाषा के लिये भी यह अभिमत प्रगट किया है कि राजपूताना, मालवा और आधुनिक गुजरात म बसने वाले लोग एक ही संस्कृति और परम्परा से आबद्ध थे एव एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग करते थे। यह स्थिति हुएनत्सग के समय से अर्थात् छठी शताब्दी से लेकर सन् १३०० तक बनी रही जब पश्चिमी राजस्थानी और स्वर्गीय प्रो० दिवेटिया के शब्दों में गौजरी अपभ्रंश का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् ही आधुनिक काल की गुजराती मालवी और जयपुरी के स्वरूप प्रगट हुए।[1] मुन्शी जी ने जिस भाषा की ओर सकेत किया है वह निश्चित ही जन साधारण म प्रचलित लोकभाषा थी और उस अपभ्रंश से भिन्न थी जिसका प्रयोग लेखक और विद्वानो द्वारा साहित्य रचना मे किया जा रहा था। अधिकाश विद्वानो ने हिन्दी आदि भाषाओ की उत्पत्ति अपभ्रंश म मानी है किन्तु यह अपभ्रंश विद्वानो की साहित्य की भाषा थी जिसका मूल आधार उस युग की लोक भाषा रही है। असल म 'अपभ्रंश' नाम प्रचलित भाषा का नाम है जो नानाकाल म नाना स्थान मे नाना रूपो म बोली जाती थी और बोली जाती है।[2] मार्कण्डेय एव कुवलयमालाकार ने जिस अपभ्रंश भाषा का विवरण प्रस्तुत किया है वह लोक भाषा का विकसित रूप है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक युग म साहित्यारूढ भाषा के समानान्तर कोई न कोई देशी भाषा अवश्य रहा है और यही देश भाषा उस साहित्यिक भाषा को नया जीवन प्रदान कर सदैव विकसित करती रहती है।[3] मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के तीन उपभेद नागर उपनागर व्राचड के अतिरिक्त लगभग २७ विभिन्न स्थानीय बोलियों के नाम गिनाये है, उनमे अवन्त्य और मालव को भी विभिन्न रूपो मे स्वीकार किया है।[4] किन्तु इन प्रभेदो की भाषा के निखिल साहित्य के अभाव मे कोई महत्व नही है। परिनिष्ठित अपभ्रंश म आधुनिक देशी बोलियो के मिश्रण का आभास हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के रचना काल से ही मिलने लगता है। उनकी देशी नाममाला मे अनेक ऐसे शब्दो का सग्रह है, जो प्राकृत ही नही बल्कि अपभ्रंश साहित्य म भी अप्रयुक्त है। ऐसे शब्दो का प्रयोग बोल

1 "The fact make it clear that the people of Rajputana, Malwa and Gujrat during the period were homogeneous people divided into different varnas and linguistically were one in the time of Yuan Chwang and so were they till western Rajasthani or what the late Prof Divetia rightly called Gurjari Apabhransha (गौजरी अपभ्रंश) after 1300 A C came to be split in modern Gujrati, Malwi and Jaipuri "

—The Glory that was Gurjardesa, Part III pp 98

२ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका—पृष्ठ १७।

३ नामवरसिंह, हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग, पृष्ठ ८।

४ नागरो व्राचडश्चोपनागरश्चेति ते त्रय —प्रकृतसर्वस्व ४, ७ एव ४।

थाल की भाषा में होता रहा होगा यह बात सहज ही सोची जा सकती है। वज्रयानी सिद्धों एवं जैन लेखकों की रचनाओं में उपलब्ध शब्दों की एक विस्तृत सूची में आधुनिक मालवी गुजराती और राजस्थानी में प्रचलित शब्दों को देख कर यह कहा जा सकता है कि मालवी के बीज भी उसी क्षेत्र में विद्यमान थे जहाँ से गुजराती और राजस्थानी के अंकुर प्रस्फुटित हुए।[1]

मालवी, भाषा विज्ञान की दृष्टि से

आधुनिक भाषा शास्त्रियों ने स्थूल रूप से हिन्दी की विभिन्न बोलियों को क्षेत्रीय आधार पर पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी इन प्रमुख भागों में वर्गीकरण किया है और पुराने पंडितों की तरह भाषा के अनेक भेद उपभेद प्रस्तुत किये हैं। मालवी का भाषा विज्ञान की दृष्टि से सर्वप्रथम अध्ययन डाक्टर ग्रियर्सन ने सन् १६०७ ०८ में प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण भारत की विभिन्न भाषा और बोलियों का कार्य एक बृहद् आयोजन था अतः मालवी के

---

१ हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में आये हुए कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की सूची दी जा रही है जो हिन्दी तथा मालवी जैसी बोली में भी मिलते हैं।

अच्छरा	(अछरी)	दुआर	(द्वार)	कुमार	(कुम्हार)
देउल	(देवुल)	खोडी	(खोड) मालवी खोड	नवल्ली	(नवल)
गड्डो	(गडढा)	पराई	(अन्य)	छइल्ल	(छैल)
वप्पुडा	(बापडा डी मा०)	भीण	(नहीन)	रुक्ख	(रुख वृक्ष)
डाल	(शाखा)	रुमणा	(रोष युक्त)	हलद्दी	(हल्दी)

डोंगर [पहाडी] (डूंगर री मालवी) ढोल्ला [प्रियतम] हेट्ठ[नीचे] हेठ मालवी

* हेमचन्द्र की देशी नाममाला में आये हुए शब्द जो थोडे से ध्वनि-परिवर्तन के साथ आज भी हिन्दी की विभिन्न बोलियों एवं मालवी में मिलते हैं।

उक्खली	(ओखली)	गग्गरी	
उज्जड		गड्डी	(गाडी)
उड्डिदो	(ऊडदा मा०)	गुत्ति	(गति) बन्धम्
उंबी	(पक्व गोधूम)	छिणालो	(छिनाल)
ओड्डण	(ओढनो)	जोवारी	(ज्वार) धान्य
ओखण	(आसाना)	भाड	(लता गहनम्)
ओसरिया	(आसार अलिन्द)	बोक्कड	बकरा
कट्टारी	(कटारी)	भाभी	
कुलड		बोहारी	(झाडू बुवारी–मा०)
कोइला	(कोयला)	मोग्गरो	(मोगरा पुष्प)
खवा			
गवक्खो	(खान)	गडी	(राड)

* विभिन्न उपभेदों का गम्भीर एवं विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करना उनके लिए सम्भव भी नहीं था। डाक्टर ग्रियर्सन ने मालवी या राजस्थानी के पांच उपभेदों में रख कर उसके मुख्य भेद रांगडी और सोंधवाडी पर सम्मिलित विचार किया है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉक्टर सुनीति-कुमार चाटुर्ज्या ने मालवी और राजस्थानी के बीच सूक्ष्म भेदों को स्वीकार करते हुए उसे मध्य देश की भाषा का एक शाखा मानकर उसके स्थायीपन को स्वीकार किया है।[1] डाक्टर ग्रियर्सन के आधार पर श्री मोतीलाल मनरिया ने भी मालवी को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत पांच प्रादेशिक बोलियों में सम्मिलित किया है।[2] मनरिया जी ने मालवी की विशेषताओं के सम्बन्ध में जो उल्लेख किया है वह विचारणीय अवश्य है। यथा —

१ मालवी समस्त मालव प्रान्त की भाषा है यह मेवाड और मध्य-प्रान्त के कुछ भागों में भी बोली जाती है।

२ अपने सारे क्षेत्र में इसका प्राय एक ही रूप देखने आता है।

३ इसमें मारवाडी और ढूँढाडी दोनों की विशेषता पाई जाती है।

४ कहीं-कहीं पर मराठी का प्रभाव भी झलकता है।

५ यह एक बहुत कर्ण-मधुर एवं कोमल भाषा है।

६ मालवा के राजपूतों में इसका एक विशेष रूप प्रचलित है जो रांगडी कहलाता है, यह कुछ कर्कश है।

---

* अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त कुछ तद्भव शब्द जो मालवी में प्रचलित हैं —

कुंड		चुनई	
खाट		छिवई	[स्पर्श करना]
घरबार घर द्वार	[घरबार मा०]	झोण	[पतला]
खुरप्प	[खुरपी]	ढोर	[पशु]
घल्लई	[घालना]	पडीवा	[मा० पडवा]
चक्खई	[चखाना]	भीड	
चगेडा	[डलिया] मा० चगेड।	भोल	[भोली]
चडई	[चढाना]	रसोई	
		रंडी	[वेश्या]

उक्त तीनों सूचियों में दिये गये शब्द, प्रमाण एवं सदर्भ सहित, श्री नामवरसिंह कृत हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पुस्तक में उद्धृत किये गये हैं, देखें, पृष्ठ १५८ से १७२ तक।

१ भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृष्ठ १८३। (राजकमल प्रकाशन १९५४)

२ राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ५।

३ ", पृष्ठ १३।

मालवी के उपभेद

मालव प्रदेश की विस्तृत सीमा में भी मालवी के रूपों में यत्किंचित परिवर्तन प्राप्त होता है किन्तु यह भेद स्थूल रूप से अध्ययन करने की वस्तु नहीं है। ग्रियर्सनजी ने मालवी के ऊपरी स्वरूप को तो अवश्य पहिचाना है, किन्तु उसकी अंतरात्मा और उसके विस्तृत वर्गीकरण की विशेषताओं की ओर उनका ध्यान आकर्षित नहीं हो सका। डाक्टर ग्रियर्सन ने मालवी के दो उपभेदों का उल्लेख मात्र किया है। मालवी का सबसे अधिक व्यापक विस्तृत एवं अध्ययन पूर्ण विवेचन श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' ने प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने मालवी को बुन्देली तथा गुजराती की मध्यवर्ती राजस्थानी का एक रूप मान कर उसके दो भेद किये हैं मालवी और रागडी[1] अभी तक मालवी और गुजराती के निकटतम सम्बन्ध की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। वस्तुतः मालवी पर राजस्थानी गुजराती और मराठी का समान रूप से प्रभाव पड़ा है। द्विवेदीजी ने उज्जैन के निकटवर्ती मध्य भाग की मालवी को मुख्य भाषा माना है और रागडी के अनेक उपभेद प्रस्तुत किए हैं।

रागडी

१ रजवाडी राजपूतों की बोली इसमें मेवाडी और मारवाडी का मिश्रण है।
२ निमाडी
३ सौंधवाडी
४ पाटवी सी०पी० बरार जिले में एक छोटी सी जाति द्वारा बोली जाती है।
५ गायरी बेतूल (म० प्र०) के भीयर लोग बोलते हैं।
६ ढोलेवाडी होशंगाबाद के पश्चिम में बोली जाती है।
७ भोपाल की मालवी।
८ होशंगाबाद की मालवी।
९ कोटे की मालवी (डगमेरी) यह चम्बल के डाग की भाषा है।
१० मालवई (पंजाबी का एक भेद)।

समीर जी द्वारा प्रस्तुत मालवी भाषा का यह अध्ययन वास्तव में मालव प्रदेश की (भाषा की दृष्टि से) सीमा रेखा प्रस्तुत करने में आधार युक्त मार्ग दर्शन का काम करता। मालवी के स्थान सूचक उपभेदों के अतिरिक्त उन्होंने इस क्षेत्र विस्तार की स्थूल सीमा रेखा भी प्रस्तुत की है। विस्तृत रूप में मालवी का विस्तार निम्नलिखित है —

पूर्व मध्य प्रान्त के होशंगाबाद, बेतूल आदि जिले।
उत्तर ग्वालियर, टोंक तथा कोटा के कुछ भाग।
पश्चिम झालावाड।
दक्षिण भीली बोलियों में जाकर समाप्त।

---

१ 'मालवी के भेद और उनकी विशेषतायें' शीर्षक लेख हिन्दुस्तानी एकादमी प्रयाग, जनवरी १९३३, पृष्ठ ८१।

राजस्थानी और बुन्देली तो हिन्दी की उपभाषायें होने के कारण मालवी से सम्बधित हो है, किन्तु मराठी और गुजराती भाषा का प्रभाव मालवी पर व्यापक रूप से छाया हुआ है। मराठी भाषा के अनेक प्रचलित शब्द भी मालवी मे खप गये हैं। विशेषत मध्यम वर्गीय परिवार एव नगर के लोगों की भाषा मे ही इन शब्दों का प्रचार है। ग्रामीण क्षेत्र मे मराठी की अपेक्षा गुजराती का प्रभाव अधिक व्यापक है। मालवी और गुजराती एक ही स्रोत की दो भिन्न धारायें हैं। इसका विवेचन किया जा चुका है। मराठी का प्रभाव लगभग दो सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। व्यावहारिक बातचीत की मालवी मे प्रयुक्त मराठी के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं जिनसे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो सके, क्योंकि परम्परागत लोकगीतों में मराठी शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता।[१]

मालवा की पूर्वी सीमा पर बुन्देलखण्ड स्थित है अत भोपाल भेलसा के पश्चिम भाग की मालवी एव राजगढ, नरसिंहगढ आदि क्षेत्रों म बोली जाने वाली उमठवाडी पर बुन्देली का प्रभाव पडा है। बुन्देली की अपेक्षा मालवी पर गुजराती का प्रभाव अधिक व्यापक है। गुजराती भाषा अधिक कर्ण प्रिय है। कोमल एव मृदुल वर्णों के प्रयोग के कारण उसम मधुरता आ जाती है। मालवी की मान्यता और मिठास गुजराती का दन है। कहीं-कहीं तो उक्त दोनों भाषाओं की शब्दावलियों एव वाक्य विन्यास म इतनी समानता है कि दोनों म भेद ही उपस्थित नहीं हो पाता। गुजराती लोकगीतों की कुछ ऐसी पक्तियाँ उद्धृत की जा रही है जो मालवी का स्वरूप लिए हुए है।

*उगमणा उगेला भाण, आयमणा हरणा हल खडे ६
*जी रे माण्डव रूडी कावली, जी रे मेडीनु माण्डण ढोलिया ८

---

१ एकन्दर

उभा राहिला	[मा० उबो रे]	नारल	[मा० नारेल]
उन्दरी	[मा० ऊँदरो (चूहा)]	नथनी	[छोटी नथ]
कुत्रा	[कुत्ता]	वागडी	[मा० वगडी]
कलश		बारा	[१२]
कनजया	[जावीट]	भरतार	[पति]
कवाड		मन्दील	[जरी की रेशमी पगडी]
खात्री		माणूस [मनुष्य]	[मा०—मनग]
चौकशी		माहिती	[जानकारी]
गला	[बिक्री के पैसे]	रहिवास	[मा० रैवास]
दगड	[मा० दगडा]	रगीला	
धजा	[ध्वजा]	राडपण	[वैधव्य]
वडील		लाडकी	[अतिप्रिय]
सेतखाना	[पाखाना]	सई	[मा० सई नन्दी]
शालू	[मा० सालू]	शिरणी	[मा० सिरणी] मिठाई
		हात	[हाथ]

लाकगातो मे भाषा के स्वरूप की वास्तविक परख की जा सकती है। मालवी के लोकगीतो म भाषा का अ तर्निहित सौ दर्य भी व्यक्त हुआ है। रास और गर्बा गीतो का पुण्य भावना को उर्मिल करन वाली गुजराती भाषा की तरह मालवी शृङ्गार और प्रेम का अनुभूति को प्रकट करने के लिये उपयुक्त है। भाषा को मिठास प्रदान करने वाले शृङ्गार पूर्ण गीत मालव की नारियो की देन है। निम्नलिखित तीन गीतो मे मालवी की सम्पूर्ण सरसता और विविधता का परिचय प्राप्त हो सकेगा। ये गीत मालवा के भिन्न भिन्न स्थानो की प्रदेशगत विशेषता लिये हुए है —

१ मालवा ना प्यारा भोजन धन-धन मक्का की रावडी
धन-धन म्हारी मक्ड माता धन मक्का की रावडी
मक्का लईने पीसन बैठी घट्टी गू जे बापडी
डाधो टूटो चाकी टूटी टूटी ऊँकी माकडी
छनो वेचो हवेली वेची भैंस लीदी बाग्तडी
चुकलियो लईने दूवन वैठी सारी भरगी हाडडी
कोरी छाछ को ग्रादण मेल्यो नीचे दीदी लाकडी
खदबद्-खदबद् सीजन लागी वा मनका नी राबडी
ठंडी करके जीमण बैठी थाल परसे राज घणी
सासु-वऊ जीमण वेठी बरफी सरका टूकडा वटि गया [२]

---

१ सभी पक्तियाँ चूंदडी भाग १ से उद्धृत हैं, सलग्न अ क पृष्ठ-सख्या के सूचक हैं।

२ उज्जन बडनगर २।११।

२ या मटकी सोरमजी से भरिया, गगाजी मे भरिया।
भरत भरत लागी तडको, म्हारो हार टूट्यो नवसर को ॥
सासू लडतां म्हारा सूसरा लडत है, जेठ लडत पर घर को।
टूटी गयो हार बिखर गया मोती, बिनत बिनत लागो तडको ॥
म्हारो हार टूट्या
जेठानो जेठना , देरानी लडे पर घर को, म्हारो
हार का कारण सायब लडत है, म्हारा हार टूट्यो नवसर को [1]

३ अरे फेर मिलागा रे, मनडो हालरियो।
गारी को ढाला फेर मिलागा रे, मनडो हालरियो।
म्हारा भँवर जो इत्ता रसीला, दा दा धोतिया पेरे रे।
म्हारा भँवर जो इत्ता रसीला, दो-दो कदोरा पेरे रे ॥
पेरे चमरोलो बीटी, ने आरया मटकाता चाले रे। मनडो
म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला, दो-दो गोरचा राखे रे ॥
म्हारा भँवर जो इत्ता रसीला, तीन-तीन राखे रगीली रे
म्हे ता पीयर चाली रे, मनडा
ढलक ढलक कँई रावी भवर जा, काले पाछा आवा रे।
म्है तो म्हारा घर मे सूती, आडी दे गयो टाटी रे ॥
टाटी खोल बाहर नो जाना, म्हारी छाती फाटी रे।
मनडो हालरिया [2]

भाषा के माधुर्य के साथ ही लोक मानस की रसानुभूति एव भावा की मृदुल व्यजना लवी लोकगीतो की अपनी विशेषता है। मालवी भाषा और उसके लोकगीतो की व्यजना क्ति को प्रस्तुत करने के लिये निम्नलिखित उदाहरण ही पर्याप्त होगा —

मन्दर पे सुन्दर खडी, खडी सुखावे केस।
राजन्द फेरी दे गया, कर जोगी को भेस [3]

गाहस्थ्य जीवन की रसानुभूति के चित्रण की दृष्टि स मालवी लोकगीतो मे प्रचलित हो मे उक्त दोहा भाव सौन्दय के लिए प्रसिद्ध है। इस दोहे की मार्मिकता एव माधुर्य पर ध होकर भूतपूर्व 'सौरभ' सम्पादक प० रामनिवास शर्मा ने तो यह उद्घोषणा भी कर ली कि इस दोहे की समता का पद्य विश्व की किसी भाषा मे नही मिल सकेगा।[4]

---

[1] शाजापुर ३।१३५।
[2] मन्दसौर १।५८।
[3] मालवी दोहे (अप्रकाशित) ६३।
[4] 'गद्य की एक अपूर्व साहित्यिक वस्तु', शीर्षक लेख, वीणा, सितम्बर १९४१।

दोहे के भाव सौन्दर्य की व्याख्या कर देना आवश्यक है। इसमें भावों की व्यंजना शक्ति दृष्ट हो जाती है। प्रस्तुत दोहे में स्वकीया नायिका का चित्र अंकित किया गया है। नायिका मंदिर जैसे पवित्र एवं राजप्रासाद तुल्य भवन की छत पर खड़ी हुई अपने गुण गुंथा रही है। नायक अपनी पत्नी के रूप सौन्दर्य पर अधिक मुग्ध है परन्तु वह मर्यादा के बंधनों में जकड़ा हुआ है। वह अपनी पत्नी के रूप सौन्दर्य का रसपान के लिए अधिक उत्सुक है। उसकी प्रेम भावना में मादकता की उद्दाम आतुरता भी अधिक है किन्तु स्वकीया स्त्री के पालना शास्त्र वर्णित धर्म कर वह जोगी के भेष में दुबारा नायिका की दृष्टि बचा कर द्वार पर फेरी लगा रहा है। दाम्पत्य भावना के साथ स्त्री का रूप सुहाग उसके सौभाग्य का अनुराग का अनुपम साधना का द्योतक है। नायक को भेष बदलकर प्रियतम को भी अपनी स्वकीया के लिये फेरी लगाना पड़ा। यह प्रेमजन्य चंचल कामना और मृग तृष्णा जैसी सौन्दर्य पिपासा का परिचायक है। प्रियतम के हृदय में गृहस्थ धर्म की निष्ठा के साथ सौन्दर्य की अनन्त पिपासा भी प्रकट होती है।

उक्त दोहे में चित्रात्मक शैली के साथ ही 'सुन्दर' और 'राजन' शब्दों का चमत्कार पूर्ण प्रयोग भी बड़ा मार्मिक है। 'सुन्दर' शब्द नारी और उसके रूप लावण्य दोनों का ही अभिव्यापक है। 'राजन' शब्द प्रिय और पति दोनों का पर्यायवाची शब्द है। प्रिय और पति शब्द में व्याप्त भिन्न भिन्न अर्थ सत्ता 'राजन' शब्द में केन्द्रीभूत हो गई है। इसमें हृदय की सत्ता के समर्पण की भावना के साथ ही सतीत्व साधना भी अभिव्यञ्जित हुई है।

मालवी लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों का वर्ण्य विषय इतना अधिक व्यापक है कि उनका वर्गीकरण कठिन हो जाता है। ऋतु उत्सव त्यौहार जाति और प्रवृत्ति आदि के आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण किया जा सकता है। जाज सम्पसन ने गीतों का निम्नलिखित आठ भागों में वर्गीकरण किया है —

१ ऋतु-उत्सव के गीत	२ परम्परा, त्यौहार के गीत
३ खेल के गीत	४ आध्यात्मिक गीत
५ पालने के गीत (लोरियां)	६ धार्मिक गीत
७ मद्य पान के गीत	८ प्रणय भावना के गीत[1]

---

१ 1 Songs of Festive Seasons
2 Songs of traditional rejoicing
3 Game songs, 4 Spiritual songs,
5 Cradle songs, 6 Religious songs,
7 Drinking songs 8 Love songs
—Cambridge History of English Literature, Page 106

भारत मे ऋतुओं के उत्सव, त्योहार आदि के अतिरिक्त विभिन्न संस्कारो के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो की संख्या अत्यधिक है अत वर्गीकरण मे संस्कारो के गीतो को प्रथम स्थान देना आवश्यक है। कुछ भारतीय विद्वानो ने प्राप्त गीतो के आधार पर लोक गीतो का वर्गीकरण प्रस्तुत करने की चेष्टा अवश्य की है, और उसमे संस्कारो से सम्बंधित गीतो को ही प्रमुख स्थान दिया है।[1]

मालव के जन-जीवन मे प्रवाहित होने वाली गीतो की अजस्र धारा भी इतनी विशाल एव विविधता से व्याप्त है कि एक सुनिश्चित सीमा मे बांध कर उसका वर्गीकरण करना सम्भव नहीं है। स्वर्गीय सूर्यकरण पारीख ने राजस्थानी मे प्रचलित लोकगीतो की एक तालिका प्रस्तुत की है। मालवी एव राजस्थानी लोकगीतो मे वर्ण्य विषय की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य है। मालवी लोकगीतो का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से पारीख जी की सूची बहुत कुछ सहायक हो सकती है। उन्होने गीतो के क्षेत्र विस्तार को निम्नलिखित २६ भागो में बाटा है

१ देवी देवताओ और पितरो के गीत
२ ऋतुओं के गीत
३ तीर्थो के गीत
४ व्रत उपवास और त्योहारो के गीत
५ संस्कारो के गीत
६ विवाह के गीत
७ भाई बहिन के प्रेम के गीत
८ साली-सालेरया (सरहज)
९ पत्नी पति के प्रेम के गीत—(१) सयोग मे। (२) वियोग मे।
१० पनिहारियो के गीत
११ प्रेम के गीत
१२ चक्की पीसते समय के गीत
१३ बालिकाओ के गीत
१४ चरखे के गीत
१५ प्रभाती के गीत

---

१ (क) लोक गीतो का विस्तार जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी संस्कारो, विशेष घटनाओ एव ऋतु परिवर्तनों, समस्त रसो और समस्त जातियों मे प्राप्त होता है। इस दृष्टिकोण से लोकगीतों का वर्ण्य विषय निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित किया जा सकता।

(क) संस्कारो की दृष्टि से वर्गीकरण
(ख) ऋतु सम्बन्धी गीत
(ग) व्रत सम्बन्धी गीत
(घ) जाति-सम्बन्धी गीत
(ङ) विविध गीत।

—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अङ्क) पृष्ठ १४६

(ख) अब तक जो लोकगीत प्राप्त हुए हैं उन पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने से उन्हें पांच भागो मे बाटा जा सकता है।

१ संस्कारो की दृष्टि से।
२ रसानुभूति की प्रणाली से।
३ ऋतुओं एव व्रतों के क्रम मे।
४ विभिन्न जातियों के प्रकार से।
५ क्रिया गीत के आधार पर। —डाक्टर कृष्णदेव उपाध्याय वही पृष्ठ १४१

पुरुषों के गीत

मुक्तक शृङ्गार-भावना	भक्ति-भावना	शृङ्गार-प्रधान	प्रबन्ध (कथागीत) भक्ति-प्रधान (कथागीत)
छल्ले, फाग,	भजन,	सोरठ,	तेजा,
लावनी,	गरबे,	निहालदे,	भाल्या,
तुर्रा किलंगी	रामदवजा,	चम्पा,	चन्दनकुँवर,
	पचीडा,	माच,	होड,
	(निर्गुणी गीत)	(गीतिनाट्य)	ग्यारस आदि
	मसाण्या गीत,		
	ऐतिहासिक,		
	पुरुषों के गीत		

तृतीय अध्याय

मालवी लोकगीतों का विस्तृत विवेचन

(अ)

बालकों के गीत

१ शिशुओं के गीत
२ क्रीड़ा गीत
३ बालकों के गीत
४ बाल-गीतों का वर्गीकरण
५ गीतों की मूल प्रवृत्ति
६ गीतों की भाव-भूमि एवं कल्पना का आधार
७ विस्तृत विवेचन सल्ला [छल्ला और हिरणी
८ संजा
९ घुढल्या [घडल्या]
१० अन्य गीत।

बालकों के गीत

स्त्री और पुरुषों के गीतों की तरह बालकों के भी अपने गीत होते हैं, इन गीतों की प्रवृत्तियों में भी उतना ही अन्तर होता है जितना कि एक बालक और युवा पुरुष की रुचि, प्रवृत्ति और आयु में अन्तर होता है बालक-बालिकाओं में जग-जीवन समझने की क्षमता तो होती नहीं, परन्तु अनुकरण की प्रवृत्ति इनमें बड़ी प्रबल रहती है, वे अपने माता-पिता एवं अन्य स्त्री-पुरुषों को विभिन्न अवसरों पर गाते देखते हैं तो उनके मन में भी गीत गाने की लालसा उत्पन्न होती है, यह लालसा सामूहिक रूप में प्रकट होती है, और जहां कहीं भी दो-चार बालक या बालिकाएं एकत्रित हुए नहीं कि उनके खेल प्रारम्भ हो जाते हैं। इन खेलों में गीतों का समावेश भी होता है, उनके ये गीत बड़े लोगों की अनुकरण करने की प्रवृत्ति के सूचक अवश्य हैं किन्तु इस अनुकरण में बड़ी रोचकता है जो उन्हें जीवन के दुर्घष एवं विशाल क्षेत्र में अवतीर्ण होने के लिये सक्षम बनाती है।

तीन या चार वर्ष की आयु के बालक प्रायः किसी छोटे खेल में व्यस्त दिखाई देंगे। यह प्रवृत्ति इस आयु के सामान्य बच्चों में अवश्य ही देखने को मिलेगी कि वे किसी भी नवीन खेल का आयोजन कर अन्य बालकों को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं[1]। खेलने की प्रवृत्ति तो बालक-बालिकाओं के शैशव का धर्म है, इसी में उनके अनेक गीत भी फूट पड़ते हैं, इन गीतों के शब्द, वाक्य एवं बाल-भाव मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़े रोचक होते हैं वर्ग एक वर्ष का शिशु अपनी भाषा का प्रारम्भ केवल एक शब्द से ही करता है, एक शब्द ही मानो उसकी भावना को प्रकट करने के लिये एक वाक्य के समान है, आयु की वृद्धि के साथ ही बच्चों के वाक्य एवं उनका सीमित शब्द-कोष उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तीन से छः वर्ष की आयु के बीच का बालक ९०० से लगाकर २५०० शब्द प्रायः जान लेता है।[2] किन्तु यह स्थिति यूरोप आदि पश्चिमी जगत में मान्य हो सकती है, जहां का सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक वातावरण सामान्य बालकों के लिये भी अनुकूल एवं विकासमय बन जाता है। मालवा एवं भारत के अन्य प्रदेशों के ग्रामीण बालकों पर उनके घर एवं वातावरण का जो प्रभाव पड़ता है उसके अनुसार यूरोप के बालकों की वे समता तो नहीं कर सकते, किन्तु तीन और छः वर्ष के बीच की आयु के बालक

---

१ Child Psychology by Fowler D Brooks, pp 384, ff

२ Gregory, In Journal of Educational Research, Vol VII, pp 127, ff

की जो कल्पना उनके खेल और गीतो मे प्रकट होती है, वह अवश्य ही आकर्षक है। आयु की दृष्टि से खेल के इन गीतो को दो श्रेणियो मे रख सकते है।

१ तीन से छ वर्ष की आयु मे शिशुओ के गीत।
२ छ से सोलह वर्ष तक की आयु मे बाल्य और किशोरावस्था के गीत।

शिशुओ के कुछ छन्द खेल गीतात्मक होते हैं। इन गीतो की पक्तियो में तीन या चार से अधिक शब्दो का प्रयोग नही होता। यह शिशुओ के मानस-विकास की स्थिति का सूचक है, इन गीतो की कल्पना भी बडी विचित्र एव असम्बद्ध होती है। खेल से सम्बधित होने के कारण शिशु एव बालको के इन गीतो को क्रीडागीत की सज्ञा देना ही उपयुक्त होगा। क्रीडागीत शिशु एव बडी आयु के बालको मे समान रूप से गाये जाते हैं। *सम्पूर्ण मालवा म प्रचलित निम्नलिखित क्रीडा-गीत शिशुओ के खेल और मनोरजन* का प्रमुख साधन है।

अटली मटली, चव्वा चन्नन। आवे नार, जावे नार॥
अगला झूले, बगला झूले। सावन मास करेली फूले॥
फुल फुल की बावडी। राजा गयो दिल्ली॥
दिल्ली से लायो सात कटोरी। एक कटोरी फूटी, राजा की टाग टूटी[1]

शिशुओ द्वारा गेय इस प्रकार के क्रीडा-गीत ब्रज, बुन्देलखण्ड और अवध में भी प्रचलित हैं, उपरोक्त क्रीडा-गीत को ब्रज मे 'अाटे-बाटे' कहते है मालवा मे गीत की प्रथम पक्ति पर ही क्रीडा एव क्रीडा-गीत का नाम अटली-मटली प्रचलित है, आटे-बाटे मे मालवी गीत से मिलती जुलती कुछ पक्तिया प्राप्त होती हैं।[2] शिशुओ के इन गीतों म स्वर-साम्य एव लय का अधिक महत्व है, क्रीडा-विशेष मे सम्मिलित शिशुओ के कण्ठ माधुय से एक निश्चत गति मे स्वर प्रवाहित होते हैं वहा उच्चारित शब्द लयात्मक होकर गीत का स्वरूप धारण कर लेते हैं। इस गीत-माधुरी को प्रकट करने के लिय बच्चो को कोई शिक्षण प्राप्त नही होता वरन् अन्त प्रवृत्ति से ये गीत स्वय ही उमड पडते हैं। यह बात अवश्य है कि शिशुओ को पालने में लोरियो की मधुरता का गीत-रस पान करने को मिलता है और माता के ममता भरे सगीत से पोषित होने के कारण उनके सस्कार बन जाते हैं अत क्रीडा-गीतो के मूल मे लोरियो का प्रभाव और प्रत्यक्ष मे उसका अनुकरण स्पष्ट है। तुतलाती हुई, अस्फुट अथवा अर्ध-स्फुट वाणी से जब प्रथम बार इन गीतो का उच्चारण होता है तो वात्सल्य रस म निमग्न एक अनुपम भावभूमि का निर्माण होता है।

---

१ पाठातर अटकन मटकन
दही चटाका लेखक का गीत सग्रह, भाग १, गीत क्रमाक १।

२ अटकन बटकन दही चटकन
बाबा लाये सात कटोरी, एक कटोरी फूटी
मामा की बहू रूठी डा० सत्येन्द्र, ब्रज-लोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ६७।

शिशुओं के ये गीत वात्सल्य के गीत हैं। इनमे आश्चर्य, कौतूहल एव जिज्ञासा की भावोर्मियाँ बाल-मानस के शाश्वत एव अकृत्रिम सौदर्य को प्रकट करती हैं।

शिशु जब कुछ बडा होता है और ससार का वस्तुओ को समझने एव परखने का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने की स्थिति मे होता है तब बुद्धि की परीक्षा के लिये कुछ गीत-क्रीडाओ का आयोजन होता है। दैनिक जीवन स सम्बधित कुछ वस्तुओ को लेकर बालक आपस में ही ज्ञान की परख करते हैं।

सिंगी मे सिंगी भैंसा सिंगी ? हां-हूँ—
सिंगी में सिंगी गाय सिंगी ? हां-हूँ—
सिंगी मे सिंगी बैल सिंगी ? हां-हूँ—
सिंगी मे सिंगी गद्दा सिंगी?

सीग वाले पशुओ का नाम लेकर एक बालक प्रश्न करता है। अन्य सब बालक 'हां-हूँ' के सम्मिलित स्वर मे स्वीकार करते हैं कि भैंस, गाय, बैल आदि की सीग होते हैं। बीच बीच म दो चार सीग वाले पशुओ के नाम के साथ ऐसे पशुओ के नाम मे भी लिये जाते हैं जिनके सीग नहा होते। यदि भूल स किसी बालक के मुह से उस समय 'हां हू' की स्वीकारोक्ति निकल गई तो उसकी खूब 'घाल धप्प' की जाती है। हार मानने पर वह छूट जाता है। इसी तरह दाल आदि धान्य को लेकर उपरोक्त पद्धति की गीत क्रीडा है।

दाल मे दाल तूअर की दाल ? हां-हूँ—
दाल म दाल चने की दाल ? हां-हूँ—
दाल में दाल मूग की दाल ? हां-हूँ—
दाल मे दाल गेहूँ की दाल ?
दाल मे दाल चावल की दाल ?

शिशुओ के गीतो के अतिरिक्त बालको के अन्य गीतो म विविध प्रसग होते हुए भी क्रीडात्मक प्रवृत्ति ही अधिक है। प्रवृत्ति एव विषय की दृष्टि से इन गीतो का विस्तार के साथ निम्नलिखित वर्गीकरण किया जावेगा।

बालको के गीत

क्रीडा गीत	मनोरजन के लिए गेय	व्रत एव त्यौहारो से सम्बधित	अनुष्ठान एव अधविश्वास से सबधित
मक्कड माता अब या छबल्या शिक्षारम्भ के गीत	(सह्ला, हिरणी)	(सजा, घूडल्या, हीड)	ढूंडक माता
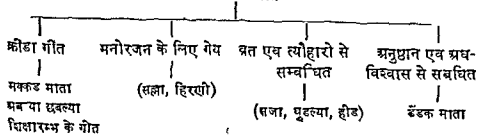
इन गाना में बालक और बालिकाओं के गीत सम्मिलित हैं। बालकों के गीतों की तुलना बालिकाओं के गातों की संख्या बहुत ही कम है। मनोरंजन की दृष्टि से बालकों की केवल एक ही गीत पद्धति है जिसे 'न्दना' कहते हैं। हरणी, डैंडा माता और मारड माता आदि गीत बालक और बालिकाओं द्वारा सम्मिलित रूप से गाए जाते हैं। बालिकाओं के गीतों मे सजा गुल्ला और प्रवला छबल्या आदि गीत प्रमुख हैं। मन की मौज और उमंग को प्रकट करने के साथ ही व्रत और त्योहारों से सम्बन्धित होने के कारण कुछ गीत आनुष्ठानिक महत्व भी रखते हैं। सजा के गीत इसी प्रकार की भावना से ओतप्रोत हैं। इनमें मनोरंजन के साथ ही धार्मिक भावना की परम्परा भी मिली हुई है।

बालक-बालिकाओं के गीत उनकी आयु ज्ञान और बौद्धिक स्तर को पूर्ण-रूपेण प्रतिबिम्बित करते हैं। वय-सन्धि के पूर्व किशोरावस्था में बालक बालिकाओं की मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र रहती है। अपनी अपरिपक्व बुद्धि से वे जीवन व जगत को परखने की चेष्टा करते हैं अतः उनके गीतों में बाल-सुलभ कल्पनाएँ बच्चों की उछल-कूद एवं बाल स्वभाव के अनुकूल किसी वस्तु को परखने का दृष्टिकोण रहता है। उनकी अस्फुट भाव-व्यंजना में बाल—चापल्य के साथ ही स्वच्छन्दता एवं निर्द्वन्द्वता की प्रवृत्ति भी प्रकट होती है। इन गीतों मे हम किसी गहन चिंतन की अपेक्षा नहीं कर सकते, किन्तु किसी भी वस्तु को परखने का उनका कल्पना-मिश्रित प्रयास बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है। मनोरंजन एवं विनोद-युक्त खेल ही खेल में वे कभी-कभी जीवन के ऐसे मार्मिक एवं कटु सत्य को पकड़ते है कि हमे कुछ क्षण उनकी असम्बद्ध एवं सार-हीन लगने वाली बातों पर सोचना पड़ता है। सजा के गीत का उदाहरण है

> चादे बैठी चिडकली, उडावो म्हारा दादाजी
> आगण बैठा पामणा जिमाव म्हारा काकाजी
> सजाबाई चाल्या सासरे, मनाव म्हारा दादाजी[1]

इस गीत मे तीन बातों का एक साथ उल्लेख हुआ है

१ मकान की छत पर चिडिया बैठी है, उसके उडाने का सकेत।

२ घर के आगन मे अतिथि बैठे है उनको सादर भोजन करवाने का आग्रह।

सजा बाई सुसराल जा रही है उसको रोकने का निवेदन। चिडिया पावणा एवं सजा बाई इन तीनों नामों की पृष्ठ-भूमि में कन्या की बिदाई का सम्पूर्ण दृश्य हमारे सामने आ जाता है। चिडिया एवं सुसराल को भेजी जाने वाली कन्या के प्रतीक सजा मे कितना साम्य है। चिडिया आकर हमारे मकान की छत पर बैठ गई उसे उडा देना चाहिये कन्या ने हमारे घर जन्म लिया है उसे सुसराल तो भेजना ही पडेगा। श्वसुर-गृह के लिये प्रस्थान करने वाली कन्या को मनाने का प्रयास भी कौन करेगा? वह रूठ कर तो जा नहीं सकती पर कुछ दिन मायके मे रहने का आग्रह भी नहीं करते। पावणा शब्द नवविवाहित कन्या के पति के लिये प्रयुक्त किया गया है।

---

[1] श्याम परमार, मालवी लोकगीत, पृष्ठ ६६।

बालक मनुष्यों की बाह्य चेष्टा एवं चाल-ढाल देखकर स्थिति को परखने की कोशिश करते हैं ऊपरी हाव-भाव को देखकर वे अपनी बुद्धि के अनुसार मनुष्य को समझते हैं —

म्हारो मामो आयो रे, नखराली मामी लायो रे,
नकटी ने पूछी बात, धमक से पडी ऊंके लात[1]।

मामा जब नखराली पत्नी को लेकर आया तो किसी नाक-कटी स्त्री ने उस मामा को छेड दिया होगा। मामा ने अपनी नई रूपसी के सम्मुख पौरुष का प्रदर्शन करने की दृष्टि से ही सही, उस बेचारी नकटी का दो-चार लातों के प्रहार से स्वागत किया होगा, 'म्हारो मामो आयो रे' पंक्ति मे बालक अपने मामा के आगमन से प्रेरित अत्यधिक प्रसन्नता को प्रकट करता है, किन्तु नखरेदार मामी के रूप-गर्व और उस पर न्यौछावर होने वाले मामा की तुनक-मिजाजी को समझने मे भी देर नहीं करता। हास्य-कौतुक की भावना के साथ एक सामान्य घटना-सत्य की पकड कितनी रोचक है।

बालक-बालिकाओं के गीतों मे कल्पना का आधार उनकी आंखों-देखी वस्तुओं पर निर्भर करता है। गीतों मे वर्णित जीवन से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं की सूची यद्यपि विस्तृत नहीं है, फिर भी जो कुछ उनके द्वारा देखा जाता है, सामान्य जीवन के वातावरण मे उपलब्ध वस्तुओं पर उनकी दृष्टि दौड जाती है। बालिकाओं के गीतों मे गार्हस्थ्य जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं का उल्लेख अधिक हुआ है। गीतों मे निर्दिष्ट उनके ज्ञान-भण्डार का विश्लेषण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है

१ पशु-पक्षी —हाथी-घोडा, गद्दा-गद्दी, (गधा-गधी) बैल, हिरणी, चिडकली, पपइय्या (पपीहा) मोर, (मयूर) मुरगडा (मुर्गा) आदि।

२ पुष्प-वृक्ष —पीला फूल, जामुन की डाल, केल (कदली वृक्ष) आंबा डाल, आमली (ईमली) खजूर, पीपली, तूमडा की वेल आदि।

३ वस्त्र-आभूषण —चूनड, ओढनी, घाघरा (लहगा), फूला की काचली (कचुकी) भगल्या टोपी, माणक मोती टीका माला (कण्ठहार) झम्मर, चुडलो (चूडियां) टूकनी (कर्णफूल) आदि।

४ खाद्य पदार्थ —खाजा रोटी, लाडू, खीर, लापसी, शाकर, गेहू और तरकारियां।

५ जातियों के नाम —बामण (ब्राह्मण), बाण्या (बनिया) नाई, माली, बागरी, बलाई (हरिजन जातियां) कानगुवाल आदि।

६ प्रकृति के दृश्य —चाद, सूरज, हिरणी (मृग नक्षत्र) चादनी रात आदि।

७ अन्य वस्तु —गाडी, रेल, पालकी, तलवार, रोकडा (रुपया) आदि।

बच्चों को पशु-पक्षियों के नामों की जितनी जानकारी है, प्रसगवश गीतों मे उनका उल्लेख हुआ है। वृक्ष, पुष्प एवं प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता की ओर भी बालकों का

---

१ छल्ले के गीत की कुछ पंक्तियां, १।६ छल्ला १४।

ध्यान अवश्य ही आकर्षित हुआ है किन्तु उसमें सो ंगानुभूति की अपेक्षा विषय की जानकारी और प्रकृति का समझने मे स्थूल दृष्टिकोण रहता है। कहा कहा पर विचित्र कल्पनाए की गई हैं। बालिकाओं को यह मालूम है कि चन्द्र का अस्त पश्चिम दिशा की ओर होता है। अतः उन्होंने पश्चिम दिशा मे स्थित गुजरात की तरफ चन्द्र के जाने का उल्लेख कर चन्द्र के अस्त होने का सूचना दी —'चांद गयो गुजरात, चन्द्र के अस्त होने पर हिरणी (मृग नक्षत्र) के उदित होने की जानकारी बालिकाओं के प्रकृति ज्ञान की सूचक है, किन्तु यहीं उनकी कल्पना सजग हो उठती है।

चाद गयो गुजरात, हिरणी उगेगा।
हिरणी का वडा बडा दान छोर्‌या डरपेगा

आसमान मे उदित होने वाली हिरणी के बडे बडे दाँत हैं जिनको देख कर लडकियाँ डर जावेंगी। भूत और डाकन के बडे बडे दाँतो की भयप्रद कहानियो मे इस डर की भाव भूमि के अंकुर है। इसके साथ ही गीत मे भय का वातावरण उत्पन्न करना भी गायिकाओं का ध्येय है। यदि रात्रि का अधिक देर मे घर जाती हैं तो वहाँ माँ की फटकार का भय बना हुआ है अतः कन्याएँ अपनी सजा सहेली को माता की मार फटकार का भय बताकर उसे शीघ्र ही घर पहुँच जाने का आग्रह करती है —

सजा तू हारा घर जा, हारी मा मारेगा कूटेगा ।
चाद गयो

और रात्रि का अधिक समय हो जाने की सूचना चाद गयो गुजरात की पक्ति से प्रकट कर एक दूसरे भय का कारण उपस्थित करती हैं कि चन्द्रास्त हो गया है और हिरणी के उदित होने के पहले ही घर पर चला जाना नहीं तो उसके बडे दाता को देख कर सब लडकिया डर जावेंगी।

बालकों की कल्पना के उभार के लिए कुछ प्रसग होता है घटनाएँ होती हैं, किन्तु कुछ कल्पनाएँ बे सिर पैर की होती है, जहा प्रसग श्रृंखला आदि का कोई व्यवस्थित क्रम नहीं रहता। असम्बद्ध कल्पनाएँ एक साथ पिरो दी जाती हैं। पाठशाला में विद्यारम्भ के लिए जब बालक जाता है तो अन्य बालक सरस्वती वन्दना के एक क्रीडा-गीत के द्वारा उसका स्वागत करके अपने मे सम्मिलित कर लेते हैं। गीत में सरस्वती माता का नाम भर आया है और बाद की पक्तियो मे अनेक कल्पनारम्य एवं कौतुकभरे दृश्यो का चित्रण मिलता है

सरसत सरसन तू जग वेणी, हमसे लटकावे ऐसी।
विद्या मागे ऊबी बाट, जो विद्या के घर लई जाय॥
माय बाय को हुओ सवाल, अबके नाखो छक्के नाखो।
कितो लाड़ू खायगी, एक गुणो कम साठ॥
नानो सो नायकडो, तुरक तुरक चाल।

नाना नानी सोटी, विद्या म्हारी मोटी ॥
सोटी लाग छम् छम्, विद्या आवे धम् धम् ।
नानो सो नायकड़ो, हत्ती पर से पड़ी गयो ॥

बालिकाओं की अपेक्षा बालकों के गीतों में बाह्य जगत का वर्णन रहता है। मालवी बालकों के इन क्रीड़ा-गीतों एवं ब्रज बुन्देलखण्ड के बालकों के टेसू के गीतों की भावनाओं का आधार एक ही है। यहाँ तर्क और कार्य-कारण के लिये कोई स्थान नहीं होता किन्तु भावनाओं के इन बिखरे अणुओं में प्रेरित एक अन्तर्निहित अप्रकट उद्देश्य अवश्य रहता है, जिसमें असद् प्रवृत्तियों के प्रति रोष एवं घृणा की भावना रहती है। यह संस्कार एवं वातावरण का परिणाम है।[1] बालिकाओं के गीतों की भी यही भावभूमि है। यदि हम इन गीतों के मनोवैज्ञानिक आधार पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बालकों की कल्पना को उत्तेजित होने में घर एवं ग्रामीण वातावरण का बहुत कुछ प्रभाव है। बालिकाएं अपने परिवार में मायके के होने वाले वैमनस्यमय कटु एवं ईर्षा से पूर्ण व्यवहार और झगड़े को प्रायः देखा करती हैं। इनका प्रभाव उनके गीतों पर भी अमिट रूप से छाया हुआ है। देवर के प्रति उग्र एवं अनिष्ट पूर्ण भावनाओं के अंकुर बाल्यावस्था में ही प्रकट होने लगते हैं। इस भावना की अभिव्यक्ति में कल्पना का योग देखिये।

१. 'मेरे घर के पीछे केल का वृक्ष है मेरा भाई उस पर चढ़ने लगा। अरे भाई जरा अच्छी सी मजबूत डाली पर चढ़ना। मेरा देवरजी उस केल के वृक्ष पर चढ़ने लगा। देवर जी तुम टूटी सी डाल पर चढ़ना।' प्रच्छन्न मनोभाव स्पष्ट है कि टूटी डालो पर चढ़ने से देवर नीचे भूमि पर गिरेगा और उसकी टांग टूट जावेगी।

२. 'मेरा भाई केल पर से उतर रहा है। भाई तुम्हारे लिए भूमि पर फूल बिछे हैं मेरा देवर भी केल की डाल से उतरने लगा। देवर जी तुम्हारे लिए फूल नहीं, कांटे और भाटे हैं।'

३. 'मेरा भाई भोजन करने के लिए बैठा है। हे भाई मैं तुम्हें ताजा भोजन कराऊँगी। मेरा देवर भी जीमने के लिए बैठा है, उसे तो बासी रोटियों के सूखे टुकड़े ही खिलाऊँगी।'

---

[1] इमली की जड़ से निकली पतंग, नौ सौ मोती झलकें अंग।
एक अंग की लई कमान, बेरी मार करो कल्याण।
मेरे बेरी हिन्द के, सींग लागे बिन के।
डाढ़ी लागी मोग की, लाज नहीं लोग की।
दिल्ली या के काले चोर।
काले हैं कल्यानसाय, जुझवे को बादसाह, ये नगाड़े रामसाय।
—कीरतपुरा (भिण्ड) में प्राप्त टेसू का एक गीत।

मेरे भाई के यहा पुत्र का जन्म हुआ है। मै अपने भतीजे के लिए झगल्या टोपी ले जाऊँगी। देवर के यहा लडकी हुई है, लाओ उसे पत्थर की शिला पर दचक दे।'[1]

एक आदर्श भारतीय परिवार मे नारी के लिये तो भाई और देवर समान हे। स्वय के भाई के प्रति जितना स्नेह वाछनीय होता है उससे भी कही अधिक स्नेह अपने पति के भाई, देवर पर भी होना वाछनीय है। किन्तु मालवी कन्याए देवर के प्रति अच्छी भावनाए नही रखती। यह सजा के गीतो मे स्पष्ट हो जाता है। भाई के प्रति अधिक पक्षपात ममत्व और मगलमय कामना जितनी तीव्र है। देवर के प्रति अहित की भावना उतनी ही उद्दाम है जो पारिवारिक जीवन मे उत्पन्न कटुता और राग द्वेष की सही स्थिति को सचाई के साथ प्रकट करती है।

सल्ला और हिरणी

सल्ला अथवा छल्ला अविवाहित लडको और अविवाहित पुरुषो के द्वारा गाया जाता है। छल्ला शृ गारी भावना के गीतो की प्रवृत्तियो को लेकर चलता है। छल्ला की गीत पद्धति पर विस्तृत विवेचन मालवी दोहो के अतर्गत किया गया है। यहा केवल बालको द्वारा गेय छल्ला पर विचार करना ही वाछनीय है।

अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक सजग होने के कारण बालको ने बडे लोगो को छल्ला गाते देख कर स्वय भी गाना प्रारम्भ किया किन्तु बालको और तरुणो के छल्लो मे उतना ही अन्तर है जितना कि शैशव और यौवन मे बालको के गीतो मे छुटपन एव असम्बद्ध अकल्पनीय बातें कौतुक उत्पन्न करती हैं। सल्ला सायजावादा लाडी अथवा 'छल्लो बोल्यो रे' गीत की आधार भूत पक्तिया है, जिनको टेक कहते हे और अनेक विचित्र कल्पनाओ को अस्फुट शब्दो मे गू थकर गीत रूप मे प्रकट किया जाता है।

राम खोद्यो कुओ रे, लछमन बादी पाळ।
सीता आइने पानी भरे रे, हनुमान को घमसान छल्लो बोल्यो रे।

राम कुआ खोदते है। लक्ष्मण पाल बाधते हैं और सीता आकर पानी भरती है पर अचानक ही हनुमानजी आकर घमसान युद्ध करने लग जाते हैं।

आम्बा चलतो लादो रे, डाळ पडी गुजरात।
केरया लागी दुआरका, खई ग्या बदरीनाथ छल्लो बोल्यो रे।

असम्बद्ध कल्पनाओ के साथ-साथ प्रत्यक्ष जीवन की अनुभूतियो की बाल सुलभ अभिव्यजना भी बडी रोचक होती है। इसमें हास्य और कौतुक का पुट रहता है —

---

[1] श्याम परमार, मालवी लोकगीत, पृष्ठ ६४–६५।

डूंगरी पे डूंगरी रे, मियां पकावे दान।
मियां की जल गई डाढी रे, बीबी नोचे बाल   छल्लो बोल्या रे।

डूंगरी पे डूंगरी रे, झाड़ घडियो जाय।
बामण-बाणया मूं जो रे, पेट लटकता जाय   छल्लो बोल्या रे।

एमद्या मेंमद्या भाई रे, गेल्ये चल्या जाय।
गेले मिल ग्यो खोपडो, मरोड़ता जाय   छल्लो बोल्यो रे।

नेतोडे बाया तूम्बा रे, पूछ उज्जैन आई बेल।
घोडा-छकड़ा रई गया रे, दौड़ी गई रेल   छल्लो बोल्यो रे।

छल्ला की तरह हिरणी के गीत भी बड़े मनोरंजक होते हैं। छल्ला तो केवल लड़के ही गाते हैं। किन्तु हिरणी लड़के और लड़कियां दोनों मिलकर गाते हैं। ये गीत विशेषतः बागरी बन्दई और नाथा जाति की लड़कियों के द्वारा भी गाये जाते हैं। इन गीतों को दिवाली के अवसर पर गाया जाता है। बालकों के अन्य गीतों की तरह हिरणी के गीत भी बेसिर-पैर की बातों से भरे पड़े हैं।

हिरणी हिरणी दुरराण दुररे, थारे म्हारा देस
साटा गऊ की घुगरी ने, राम तळी का तेल।
तोडी थोडी कई गावे, गावे बावन वीर
बावन वीर अड गया रे नाक में घाले तीर।
तीरा वीर ने फेरया रे, अड पड्या आम्बा डार
आम्बा बाडी की डोकरी रे काते ताणा सूत।
सूता सूत को भग लियो रे भग लियो भूत   ११६

म्हारा घर पाछे बड़ो तूमड़ो तोड़ बगारी भाजो जी।
अण्डो तोडयो बण्डो ताडयो, फिर भी नइ सीजो भाजो जी
आखा गाम का छाणा जोरया, फिर भी नइ सीजी भाजी जी
छोटा जेठ की टाग तोडी, बड़ा बाप का मूंछ्या बलरो।
खदबद सीजी भाजी जी   ११४

मनोविनोद के लिये प्रसंग-विधान कितना सुन्दर है। लड़के तूमड़े की तरकारी को खाने के लिये कितने परिश्रम करते हैं। गांव के सभी लोगों को घुमा कर भाजी पकाने की चेष्टा में असफल होने पर बड़े जेठ की टांग और बड़े बाप की मूंछ के ईंधन से तरकारी पकाने में बालकों का बड़ा आनन्द आता है। किसी की टांग तोड़ने और किसी की मूंछें [illegible] बालकों का [illegible] हीं रहता है।

टेउक माता

जब वर्षा ऋतु का आगमन हो जाता है तब गांव के सम्पूर्ण जीवन में एक परिवर्तन [illegible] हो जाती है। वृष्टि के देवता इन्द्र को मनाने का प्रयत्न किया जाता है। बड़े [illegible] के पास [illegible] के लिये [illegible] पर बैठा है।

टेडक माता, टेडक दे, पानी की बौछार दे।
म्हारा बीरा की म्राल सूखे, पाल सूखे।
गहो भूके, गही भूके भो भो भटट ॥३

गाव के लड़के–लड़कियां किसी बालक या बालिका के मस्तक पर टीन के छोटे पतरे या मिट्टी के खपरैल को धरकर मिट्टी पे लाद मे नीम की टगाल (टहनी) गाडकर प्रत्येक द्वार पर उक्त गीत गाते हुए वर्षा का म्राह्वान करते हैं। मेढको का टर्राना वर्षा के म्रागमन का सूचक है। वर्षा काल में ही मेढकों के प्रबल साम्राज्य में वसंत की गायिका कोकिल का पचम स्वर पराजित होकर न जाने कहा चला जाता है। म्रत बालक मेढकों की माता, 'टेडक माता' से याचना करते हैं कि वह म्रपने प्रभावशाली पुत्रों की सृष्टि कर उन्हें इस बात के लिये प्रेरित करे कि वे पानी की बौछार के लिये टर्राना शुरू करदें।

भोले बच्चे को यह क्या मालूम कि वर्षा का देवता इन्द्र है। वे तो डेडक माता को सर्वस्व मानकर उसमें ही याचना कर बैठते हैं। म्रनावृष्टि के सकट को बालक भी म्रच्छी तरह समझते हैं। उनके भाई का खेत सूखा जा रहा है सरोवर की पाल भी सूखी जा रही है, ताल–तलैया सूख जाने पर तृण भी नहीं उग पाता म्रौर बेचारा 'माधव–नन्द' म्रपनी गर्भिणी के साथ भूख–प्यास में तड़प कर भो भो की भो करता फिरता है। बालकों का यह खेल उनकी म्रनुभूति के साथ ही प्रकृति के रहस्यों को म्रनजाने में कितना सम्यक एव यथार्थ चित्र म्रकित करता है।

मालवा बालकों की इस म्रनुष्ठानमयी क्रीडा में भिन्न भिन्न देशों एव म्रादिम जातियों की परम्परा के स्वरूप को प्रचलित होते देख म्राश्चर्य होता है। म्रनावृष्टि के निवारण के लिए जो जादू-टोने म्रौर म्रध विश्वास से युक्त प्रथाएँ विद्यमान हैं, उनमें बालकों के द्वारा चल समारोह का म्रायोजन कर वर्षा के देवता का म्राह्वान किया जाता है। थिसली म्रौर मेसडुनिया के यूनानी लोगों में इसी प्रकार की प्रथा प्रचलित है, जहाँ बालक बालिकाम्रों का चल-समारोह ग्राम के समीप किसी कुए या जलाशय की म्रोर ले जाया जाता है। समारोह का नेतृत्व एक कुमारी कन्या करती है जिसे म्रन्य लडकियाँ जल के कूडों से म्रभिसिंचित करती चलती हैं। मार्ग में स्थान स्थान पर रुक कर वर्षा का म्राह्वान गीत गाती हैं। मायवरिया की तप्त भूमि के किसान बालकों के डोडोला एव मालवी बालकों का टेडक माता एक जैसे म्रायोजन हैं। भाषा भिन्न हो सकती है किन्तु भावना एवं उसके प्रकट करने की विविध प्रथाम्रों में बहुत कुछ साम्य है। डोडोला लडकियों के द्वारा म्रायोजित होता है। इसमें लडके सम्मिलित नहीं होते। एक किसान कन्या के सम्पूर्ण शरीर को घास एव फूल-पत्तों से ढक दिया जाता है। इस श्रृङ्गार सज्जित कन्या को भी डोडोला कहते हैं। गाँव के प्रत्येक द्वार पर डोडोला के साथ लडकियों का समूह जाकर उपस्थित होता है। डोडोला नृत्य करती रहती हैं म्रौर म्रन्य लडकियाँ वर्षा का गीत गाती हैं। इस गीत को भी डोडोला कहते हैं। 'डोडोला' गीत के गृहस्थ के द्वार पर उस समय तक नृत्य करते हैं जब तक गृहस्वामिनी म्राकर डोडोला के मस्तक पर एक घड़ा पानी का बौछार न

कर दे।[1] जल म रहने वाले मेढका का नपा का अधि दवता मानने की अध धारणा पर अयत्न विचार किया गया है।[2]

सजा

मालव मे प्रचलित बालिकाग्रा के गीता मे संजा के गीत सबसे अधिक आकर्षक हैं। भाद्रपद मास की पूर्णिमा से लेकर पूरे सोलह दिना तक श्राद्ध-पक्ष मे मालवे की अविवाहित कन्याओ के द्वारा सजा का व्रत रखा जाता है। इस व्रत मे आनुष्ठानिक प्रवृत्ति के साथ ही गाए जाने वाले गीता म बालिकाग्रा क सरल, स्वच्छन्द स्वभाव की अभिव्यक्ति वडी मनारम होती है।

सजा क लिए साजी, साभी सजाबई शब्द का प्रयाग किया जाता है। साभ, सध्या की बेला के लिए मालवा मे सजा शब्द का प्रयोग किया जाता है। रात्रि क आगमन के पूर्व साध्य वेला प्रकृति के पट पर मनोहारी दृश्या का प्रस्तुत करती हैं। ऐसे सुहावने अवसर पर उपासना, सध्या प्राथना और अनुष्ठान के कार्य करना शुभ एव मंगलमय मान गए हैं। गृह ग्रार देव मन्दिरा मे दीप सजोने के साथ ही मालवी स्त्रिया सजा का स्मरण करती ह 'मन गेला सजा सुमरण करले'

बालिकाओ के द्वारा दिवस क अवमान सध्या के समय म की जाने वाली उपासना क लिए भी 'सजा' शब्द रूढ बन कर प्रचलित हा गया है। इस अनुष्ठान के पीछे एक विशेष भावना कार्य करती है। बालिका का भविष्य म एक आदर्श भारतीय नारी बन कर किसी सद्गृह की लक्ष्मी बनना हाता है। अत सजा के व्रत का बालिकाओ का कौमार्य व्रत अथवा पतित्व साधना का एक स्वरूप मान सकते हैं। कन्याओ के लिए मन के अनुकूल पति प्राप्ति का वर देने वाली अधिष्ठात्री देवी तो पार्वती मानी गई है। सीता का मनोनुकूल वर की प्राप्ति के लिए पार्वती की वदना करनी पडी थी। यह सजा का व्रत पावती की उस तप साधना का सूचक है जो उन्हाने पिनाकपाणि जैसे दव महादव को पति रूप म प्राप्त करने के लिए अनुष्ठान के रूप मे की था। यह व्रत कुँआरी कन्याओ के लिए गौरी पूजन का एक स्वरूप मात्र है।

वर-कामना के इस व्रत की एक और विशेषता है जा शैक्षणिक महत्व रखती है। बालिकाएँ इस व्रत के द्वारा चित्रकला का शिक्षण भो प्राप्त करती है। सम्पूर्ण श्राद्ध पक्ष म दीवार के कुछ भाग पर गावर से लीप कर गोवर का विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाई जाती है और उन पर गुल-तवडी, गुलाब, कनेर आदि पुष्पा की पखुडिया चिपकाई जाती हैं। सजा के कलवर का निर्माण गावर से होता है। और उसके शरीर का सजाने के लिए गुल-तवडी का पुष्प ही परम्परागत मान्यता के अनुसार उपयुक्त है।

---

१ Frazer, The Golden Bough', pp 69–70

२ देखें पाँचवाँ अध्याय, (अ)।

सजा तो मागे वई, ह्र्यो ह्र्यो गोवर, पागे लाऊँ वई हरयो ह्र्या गोवर?
म्हारा बीराजी माली घरे जाय, लेवो सजा ह्र्यो ह्र्यो गोवर [1]

संजा बनाने वाली भोली कन्याओं के सामने एक समस्या आ जाती है। संजा का निर्माण करने के लिए सामग्री कहाँ से प्राप्त करें। सजा तो मानो गोवर माग रही है अर्थात् सजा की आकृति को बनाने के लिए गोबर की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति कन्या का भाई तत्काल कर देता है। वह जाने के यहाँ जाकर गोबर ले आता है और अपनी बहिन के व्रत में सहयोग देता है किन्तु पूजा के उपादान तो और चाहिए —

सजा तो मागे वई फूल की कांचली, कों से नाऊँ वई फूल की कांचली?
म्हारा बीरा जो माली घर जाय, ले वो सजा फूल वो काचली [2]

इस प्रकार फूलों की कचुकी से सजा का शृगार किया जाता है। पचरंगा गुल-तेवडी ही वास्तव में सजा के सौंदर्य को निखारनी है। इन पुष्पों के अभाव में राखोडी (राख) के रग की गुल-तेवडी अथवा गुलाब और कनेर के लाल फूलों से ही काम चलाया जाता है। प्रति दिन एक नवीन आकृति बनाई जाती है और सध्या के समय दीपक से आरती कर सजा के गीतों को गाया जाता है। सजा की उपासना का प्रत्येक कार्य गीत के साथ ही सधता है। आरती के लिये संजाये गये दीप की प्रथम लौ के साथ ही गीत प्रारम्भ हो जाता है।

पेली आरती पेली आरती, रई रमजोत!
भई बाप की अमृत जोड, कका बवा की अलियाँ।
मैं फल बिखेरूँ कलिया, सिंगासन मेलूँ आखा॥
तम लो सजा बाई वासा, सजा का मूँडा आगे।
डाबर भर्यो कूडो, तम पेरो सजा बाई।
दाता को चूडो, व्हारा काका बाबा मोल घडावे।
बीरो ले घर आवे, सोना री टीकी भज म्हारी बेया।
धरती को धोळो चूडो दातेरो [3]

प्रथम आरती की ज्योति के साथ अक्षत और पुष्पों के साथ सजा का आह्वान किया जाता है। अक्षतों के द्वारा वैदिक मत्रों के उच्चारण से विभिन्न देवी-देवताओं के आह्वान और स्थापन का दृश्य मालवी-कन्याओं के मस्तिष्क में अवश्य विद्यमान है। बड़ों की नकल करने में उनकी बुद्धि बड़ी सजग है। यदि बामण महाराज देवी देवताओं को अक्षत एव मत्रों के द्वारा बुलाते है तो ये बालिकाएं गीतों के द्वारा सजा का आह्वान और प्रतिष्ठापन क्यो न करे।

---

१ श्याम परमार, मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ६१। २ वही, पृष्ठ ६२।
१।१।३ सजा-बाई शब्द के स्थान पर कन्याएँ स्वय के नाम भी जोड देती हैं।

कुछ गीतो में सजा को अपनी सहेली मानकर लडकियां सजा की माता से निवेदन करती हैं। कि वह सजा को शीघ्र ही भेजें ताकि वे आरती करें।

> हर्‌यो सो गोबर पीलो सी माला, करो सजा की आरती।
> तमारा भई भतीजा जोग, करो सजा की आरती।
> पाना फूलाँ भरी रे चगेर, सुहाग भर्‌यो बाटको।
> सजा बई की मा सजा ने भेजो, करो सजा की आरती [1]

'सुहाग भरिया बाटका' में सौभाग्य की कामना स्पष्ट हो जाती है। सजा के व्रत और गीतो में वर-वाछा, चित्र-कला एव गीत का मणि-काचन सयोग हो जाता है।

सजा-पूजन और गीतो के गाये जाने का यह क्रम पूरे सोलह दिनो तक चलता है। प्रत्येक तिथि की आकृतियां बदल दी जाती हैं। भाद्रपद की पूर्णिमा के 'पूनम पाटले' से लेकर सर्वपित्री अमावस्या के दिन 'किले-कोट' मे आकर इस व्रत का समारोप होता है। मालवा की कन्याए विवाह होने तक प्रति वर्ष इस व्रत को करती है और विवाह हो जाने के प्रथम वर्ष मे सजा का व्रत विशेष समारोह के साथ 'उजम' दिया जाता है। अर्थात् कौमार्य व्रत की समाप्ति की जा कर गृहस्थ धर्म के नवीन व्रत का श्री गणेश किया जाता है।

सजा के व्रत को यदि एक रूपक समझा जाय तो इसकी व्यवहारिकता व उपादेयता वास्तव में एक बडा अर्थ रखती है। यह व्रत सोलह दिनो के लिये होता है। एक एक दिन मानो कन्याओ के जीवन का एक एक वर्ष है। पूर्णिमा के दिन व्रत का प्रारम्भ होता है और अमावास्या के दिन इसकी समाप्ति। यह पूर्णिमा किसी सद-गृहस्थ के यहा कन्या रत्न की प्राप्ति की प्रसन्नता की सूचक है किन्तु सोलह वर्ष पूरे हो जाने पर कन्या को विवाहित कर घर से विदा करना ही पडता है। सजा व्रत का सोलहवा दिन बडा महत्व रखता है। और यह दिन अमावास्या का है, जब पितृ गृह की चन्द्र-कला अपने माता पिता, भाई-बहिन सहेली और परिवार के अन्य लोगो को वियोग के गहन अन्धकार मे छोडकर जीवन की नई दिशा के लिये विदा होती है।

सजा कुवारी कन्या का प्रतीक है। प्रत्येक कन्या को विवाहित होकर अपने पितृ-गृह को छोडना ही पडता है और इस करुण एवं हृदय द्रावक किन्तु न टलने वाली स्थिति से बालिकाए पहिले ही सजा के व्रत और गीतो के द्वारा परिचित हो जाती हैं। प्रति वर्ष सजा को ससुराल के लिये विदाई देकर पिता के घर को छोडने की काल्पनिक तैयारी का गीतों के द्वारा मानो वे अभ्यास करती हैं। भावी जीवन की तैयारी का ऐसा व्यवस्थित विधान एव शिक्षण भारतीय लोक साहित्य में मालवा और राजस्थान को छोडकर अन्यत्र मिलना कठिन है।

सजा के इन गीतो के साथ उत्तर प्रदेश एव बुन्देलखण्ड में प्रचलित झेंझी के गीतो की याद आ जाती है।[2] कन्याओ की रुचि, प्रवृत्ति और भावनाओं की दृष्टि से झेंझी

---

१ श्याम परमार, मालवी लोकगीत पृष्ठ ६०।

२ झेंझी के गीत, धर्म युग (साप्ताहिक) २५ अक्टूबर ५३ पृ० ७।

श्रौर सजा के गीता मे बहुत कुछ साम्य है। जहा भाई स रेशमी दुपट्टे की माग की जाता है। आभूषणा के प्रति जो माह है, वह भी किसी प्रकार कम नही है। समुराल के प्रति क याश्रा के मन म एक विचित्र एव नकामी भावना रहती है। फूल जसी कोमल कन्या को पियर का फूल ही अधिक प्रिय है कि तु सजा के गीतो मे जिस करुण रस की सृष्टि होती है उसका अनुभव आज स अनेक युग पहिले शकुतला की विदाई मे महा कवि कालिदास न स्वय कर लिया था। परिवार मे बटा की क्या स्थिति ? पराया धन जा ठहरी! विवाह के उपरान्त एक कन्या श्रौर अतिथि मे काई अन्तर नही रह जाता —

आज सजा वई म्हारे पावणा, दो दिन पावणा ने तीसरा दन सूना।
म्हारी सजा बई ने लेवा आया पावणा, भोजन जिमाऊँ म्हारी सजा न।
बारा मइना म पाछी आवेगा पालकी मे बैठीने सजा जावेगा।
आज म्हारी सजा बई पावणा - [1]

बेटी पितृ गह को सूना करके चली जाती है। माता पिता श्रौर परिवार के अय व्यक्तिया के हृदय के एक निराशा श्रौर सूनपन का वातावरण छा जाता है बालिकाश्रा की सजा, उनके गीत करुण एव वियाग श्रृंगार कि अनुभूति के शाश्वत चित्र है।

घडल्या

आश्विन मास की नव रात्रि मे कु आरी कन्या द्वारा देवी का पूजन करने की एक विशेष प्रथा है। इसको गुडल्या घुडल्या या घडल्या कहते हैं। इन तीना शब्दा का अर्थ होता है घट [घडा]। मगल घट या कलश की पूजा हमारी भारतीय सस्कृति मे एक विशिष्ट प्रयाजन रखती है। कमल के पुष्प एव आम्र-पल्लवा से लहराता हुआ पूर्ण घट जीवन के जल का धारण करने वाले मानव शरीर का प्रतीक रूपक है। जीवन रूपी जल इस घट की शाभा है। जब तक शरीर घट म प्राण-जल भरा रहता है तभी तक यह घट मागलिक एव पूज्य समझा जाता है। वस्तुत मानव शरीर रूपी घट मे अधिक मगल मय इस विश्व में म श्रौर कुछ नही है।[2]

मंगल घट की उपासना का यह तो शास्त्रीय विवेचन हुआ। प्रत्येक धार्मिक पूजा श्रौर अनुष्ठाना मे घट पूजन के वास्तविक प्रयाजन को न समझते हुए परम्परा का अनुकरण कर यह पद्धति आज भी प्रचलित है। नव रात्रि के प्रारम्भिक दिन अर्थात् आश्विन एव चत्र शुक्ला प्रतिपदा का घट स्थापना दिवस भी कहते हैं। इन दिना घट को प्रतीक मानकर पूजन किया जाता है। मानवी एव राजस्थानी कन्या भी घट-पूजन के महत्व का न समझ कर रूढ़ि का अनुकरण करते हुए उस परम्परा का आज भी अपनाये हुए हैं। घडल्या घट पूजा का परिवर्तित रूप है। सध्या के समय कन्याए किसी देव-मन्दिर या निर्धारित स्थान पर एकत्रित हाकर ग्राम अथवा नगर के माहल्ले में प्रत्येक घर पर घुडल्या के गीत गाती हुई जाती हैं। घुडल्या मिट्टी का एक छाटा सच्छिद्र घट कर बनाया जाता है। उस के अन्दर मृत्तिका-पात्र में एक दीपक सजा कर रख लिया जाता है। घट के रन्ध्रों से दीपक के प्रकाश की किरणें चारो ओर

---

१ मालवी लोक-गीत, पृष्ठ ६८।

२ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, कला श्रौर सस्कृति, पृष्ठ २००।

फलने लगती हैं। एक कन्या घुडल्या का अपने मस्तक पर धारण करती हैं और सब कन्याओं के साथ यह चल-समारोह प्रारम्भ हो जाता है।

घुडल्या के द्वारा आत्म-दीप के प्रकाश का सर्वत्र वितरित करने की भावना एवं भारतीय आर्यों की 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की उदात्त प्रेरणा में कितनी समानता है! अनेक युगों के अन्धकार को चीरती हुई प्रकाश-दान की यह परम्परा आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है। आश्चर्य तो हम उस समय होता है जब हम इस प्रथा को मध्य भारत के आदिवासी भील एवं भीलाना की स्त्रियों में प्रचलित देखते हैं। भीली महिलाएँ इस प्रकार के घट को 'डहो' कहती हैं।

मालवी एवं राजस्थानी कन्याओं का घुडल्या भीलो स्त्रियों का डहो, ब्रज और बुन्देलखण्ड की कन्याओं की झेंझी, इन तीनों की परम्परा में एक ही प्रेरणा है। घुडल्या की पूजा में भावनाएं चाहे कुछ भी हो किन्तु इसके साथ मालवा लडकियां जो गीत गाती हैं उनके भाव एकदम विचित्र हैं। वहाँ पूज्य भावना नहीं वरन् बाल-जीवन का हास्य एवं कौतुक है। घुडल्या का मानवीकरण कर लिया है।

गुडल्यो म्हारो लाडलो, सेरी भाग्यो जाय रे भई।
सेरी भग्यो काटो, नावी घरे जाय रे भई।
नावी दीदी नेरनो, माली घरे जाय रे भई।
माली दीदा फलडा देव चढावा जाय रे भई।
देव ने दीदा लाडू, मगरे उठो खाय रे भई।
मगरे पडी लात की, सात गुलल्या खाय रे भई ॥१।८॥

घुडल्या मानो कन्याओं की सम आयु वाले भाई के समान उछल-कूद करने वाला एक लडका है। यहाँ एक लघु कथा के क्रम में लाडले घुडल्या की सब करतूतों का उल्लेख हुआ है। घुडल्या भाग कर मोहल्ले का चक्कर लगाता है। मार्ग में उसके पैर में काटा चुभता है। काटा निकलवाने के लिये नाई के घर जाता है। नाई के यहां नेरनी मिल जाती है और वह पैर का काटा निकाल कर मालीके यहाँ जाता है। माली फूल देता है। फूल लेकर वह देवता को अर्पित करता है। देव प्रसन्न होकर उसे मोदक देते हैं। मुंडेर पर बैठकर वह मोदक खाने लगता है। किन्तु अचानक किसी के पैरों की ठोकर से वह सात चक्कर खाता हुआ गिर पडता है।

देव-पूजा और प्रसाद के रूप में मोदक प्राप्त होने का ज्ञान बालिकाओं को अवश्य है किन्तु देव-कृपा के उल्लेख के साथ ही वानर का किसी की लात खा कर मुंह के बल गिर पडना बालिकाओं की कल्पना का आनन्द है।

अन्य गीत

बालिकाओं द्वारा गेय अन्य गीतों में 'भवल्या छवल्या' (१।५) 'बाज खजूर भली थी (१।६) एवं 'गाडा तले जीरो बोयो' (१।१०) आदि गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। ये तीनों गीत एक लोक कथा को लेकर चलते हैं जिसमें गायक की महिमा भाई का सत्कार एवं उसके द्वारा प्रदान की गई चूंदडी और अन्य आभूषणों का उल्लेख है।

स्त्रियो के गीत

[जन्म संस्कार के गीत]

- ❀ जन्म के सस्कार
- ❀ सस्कारो की शास्त्रीय परम्परा
- ❀ जन्म सम्बन्धी लोकाचार
- ❀ अगरणी (साघ पुरावा)
- ❀ जन्म के गीतो का वर्गीकरण अगरणी, कुल देवताओ के गीत, धनबउ सौत आदि
- ❀ गीतो की भाव भूमि
- ❀ जन्म के उपरान्त के सस्कार एव गीत
- ❀ बधावा
- ❀ पगल्या
- ❀ जच्चा के गीत
- ❀ सूरज पूजा के गीत
- ❀ हालरा, लोरिया।

जन्म के सस्कार

प्राचीनकाल से प्रचलित भारतीय सस्कारा की परम्परा अबाध है। समाज के श्रेयस एव कल्याण को ध्यान मे रखकर प्राचीन युग के मनीषि एव समाज-शास्त्रियो ने धर्मशास्त्र में व्यक्ति के लिये जिन आचरणीय तत्वा का विधि निषेध किया है, उनकी अविच्छिन्न धारा आज भी जन-जीवन क लिय अटल श्रद्धा एव सुदृढ विश्वास की वस्तु बनी हुई है। शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित सस्कारा क रूप मे परिवतन हो सकता है, किन्तु उससे निसृत लौकिक आचारा की रूढि एव भावनाओ म किसी भी प्रकार का हेर-फेर नहीं हुआ है। भारतीय सस्कारो म पवित्रता की भावना सर्वोपरि है। सृष्टि के जनन-तत्व की प्रक्रिया को भी पूत विचारो स सज्जित कर दिव्य स्वरूप प्रदान किया गया है। प्रत्येक मनुष्य के शरीर की उत्पत्ति माता क रज एव पिता के वीर्य से होती है। इस प्रकार रज-वीर्य से उत्पन्न शरीर स्वाभाविक रीति स अपवित्र हान के कारण श्रौत एव स्मात

कर्म करने के लिये योग्य नहीं होता है। शास्त्रों में मानवी शरीर का संस्कारों के द्वारा पवित्र करने के आचार निर्धारित किये हैं।[1]

इन संस्कारों का प्रारम्भ गर्भाधान से होता है। शास्त्रों में तो षोडस संस्कारों का विधान है किन्तु लौकिक भावना के अनुसार इन संस्कारों में मानव जीवन की घटनाओं से संबंधित प्रमुख संस्कार केवल तीन हो हैं। जन्म (जन्म) परण [विवाह] एवं मरण (मृत्यु)। यह एक उल्लेखनीय बात है कि भारत में मानव जन्म के मूल कारण को भी संस्कारित किया जाता है। गर्भाधान भी एक संस्कार माना गया है। यूरोप के शरीर-विज्ञान शास्त्री एवं विज्ञानवेत्ता भले ही इसे एक जैविकीय (Biological) आवश्यकता कहकर टाल दें, किन्तु प्रकृति के नियमों से प्रेरित होते हुए भी प्रजनन की क्रिया में समृद्धि एवं वंश परम्परा को अविच्छिन्न रखने का एक अनुष्ठान रहता है। संसार में कर्मशील सन्तान उत्पन्न कर पितरों के ऋण से उऋण होने का यह एक आवश्यक धर्म माना गया है।[2] जन्म सम्बन्धी इन चार संस्कारों का शास्त्र में विधान है --

१ गर्भाधान—स्थिति का कारण जिसके कारण मानव का जन्म होता है।
२ पुंसवन—पुंसोकरण का प्रयोग।
३ सीमन्तोन्नयन—
४ जात कर्म—नालच्छेदन आदि।

इनमें द्वितीय एवं तृतीय संस्कार गर्भाधान की दृष्टि से वांछनीय है जन्म के उपरान्त के अन्य संस्कारों में निम्न लिखित चार संस्कार भी आवश्यक माने गये है —

१ नामकरण   २ निष्क्रमण
३ अन्नप्राशन   ४ चूडाकर्म (मुण्डन)

जीवन के लिये वांछनीय षोडस संस्कारों में से उक्त आठ संस्कार जन्म से सम्बन्धित हैं। जन्म के संस्कारों का इतना महत्व क्यों प्रदान किया गया? यह प्रश्न भी विचारणीय है। वैसे प्रजननेच्छा मानव एवं पशु में समान रूप से पाई जाती है। किन्तु मनुष्य विधाता के द्वारा रचित सृष्टि के प्रयोजन एवं रहस्य को जानता है पशु नहीं।[3] स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करने का साधन है। स्मृतिकारों ने इस प्रसंग में नारी को अधिक महत्व दिया है। वे पूजा के योग्य मानी गयी हैं। क्योंकि उनके द्वारा गृहस्थी एवं वंश को प्रदीप्त करने वाला दीप प्राप्त होता है। वे घर की शोभा है।[4]

---

१ (१) एवमेन शमयति बीज गर्भसमुद्भवम्। याज्ञवल्क्य स्मृति, आचार अ० १३ श्लोक।
(२) गार्भै होमैर्जातकर्म चौड मौंजीनिबन्धन।
बजिर गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ —मनुस्मृति, २।२७।
(३) काय शरीर संस्कार पावन प्रेत्य चेह च। " २।२६।
२ प्रजनन वै प्रतिष्ठा —दामसूत्र।
३ (१) प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टा स तानार्थ च मानवा। —मनु २।६६।
(२) क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूत स्मृत पुमान। —मनु ९।३३।
४ प्रजनार्थ महाभाग पूजार्हा गृह प्रदीप्तय। —मनु ९।२६।

जन्म-सम्बन्धी संस्कार-परम्परा अब लोकाचार के रूप में प्रचलित है। स्मृतिकारों के द्वारा निर्दिष्ट इसका पौरोहित्य-सम्बन्धी स्वरूप प्रायः मिटता जा रहा है। मालवा में बालक के जन्म से सम्बन्धित लौकिक आचारों का निर्वाह रूढि परम्परा के अनुसार किया जाता है। इन आचारों में मंगल कामना के साथ नारी का उल्लास भावना का चिरन्तन स्रोत भी उमड़ता है और वह गीतों के रूप में प्रकट होता है। जन्म सम्बन्धी सभी लोकाचार एवं गीतों को दो भागों में रख सकते हैं।

१ गर्भाधान एवं जन्म से पूर्व के संस्कार एवं गीत
२ जन्म के उपरान्त के संस्कार और गीत।

गर्भाधान का संस्कार तो आनुष्ठानिक दृष्टि से विवाह के अन्तर्गत आ जाता है। क्योंकि अग्नि परिणयन एवं कन्या-दान के पूर्व ही धर्म-भावना से परिपूर्ण होकर उक्त कर्म के लिये संस्कार करना पड़ता है। पुंसवन' संस्कार की परम्परा मालवा में आज भी 'अगरणी' 'खोल भरई', या साध पुरावा के नाम से प्रचलित है। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार पुंसवन संस्कार गर्भ में बालक के हिलने-चलने के पूर्व ही कर लेना चाहिये।[1] किन्तु लौकिक-परम्परा में अगरणी का आयोजन गर्भाधान के सातवें महिने में किया जाता है। अगरणी के दिन गर्भवती महिला को हल्दी-केसर आदि की पाठी लगाकर मांगलिक स्नान कराया जाता है एवं शुभ मुहूर्त में बाजोट पर बैठा कर किसी सौभाग्यवती महिला द्वारा अथवा गर्भवती के पति के द्वारा गोद भरी जाती है। साड़ी के आंचल में कुंकुम अक्षत, नारियल एवं खारक-सुपारी आदि मांगलिक वस्तुओं को रखा जाता है। यह खोल भरई' की प्रथा गर्भवती की साध पुत्र-कामना पूर्ण होने का प्रतीक है। खोल भरने के पश्चात भरी खोल सहित गर्भवती महिला को ग्राम या नगर में गाजे बाजे के एवं दल-समारोह के साथ घुमाया जाता है। आयोजन में सम्मिलित स्त्रियां अन्य मांगलिक गीतों के साथ धनबउ' के गीत भी गाती हैं। भावना एवं लौकिक आधार परम्परा की दृष्टि से मालवा राजस्थान ब्रज[2] एवं बुन्देलखण्ड आदि जनपदों के इन गीतों में बहुत कुछ साम्य है। ये गीत स्त्रियों के लिये तो कर्मकाण्डी पंडितों के वैदिक मंत्रों जैसा महत्व रखते हैं। आचार एवं 'मघुन' की दृष्टि से इन गीतों का गाया जाना अनिवार्य समझा जाता है। जन्म के पूर्व अगरणी के गीतों में धनबउ का गीत अधिक महत्वपूर्ण है। धनबउ का अर्थ है कुलवधू धन्यवाद की पात्र है। मातृत्व की साधना के श्री गणेश के कारण उसमें अन्य संतानवती महिलाओं के आशीर्वचन भी प्राप्त हो जाते हैं। वह स्वयं भी मानो धन्य हो जाती है। नारी के गर्व और गौरव का यह एक अनुपम अवसर समझा जाता है। अगरणी के गीतों की भावना एवं लौकिक आचारों की दृष्टि से चार श्रेणी में विभक्त किया गया है —

———— ————

अगरणी

कुल देवता के गीत (सती, पूर्वज, देवी आदि)	बडी के गीत — मृत मोत	धनवउ	अन्य देवी देवताओ के गीत (शीतला, भैर आदि)
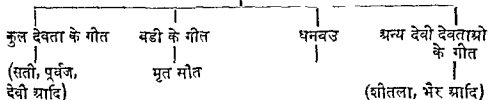
अगरणी के इन गीतो म नारी की एकान्त लालसा एव दोहद का सुदर चित्रण हुआ है ! 'दो जीवां' गर्भवती स्त्री की लालसाओ को पूरा करना धर्म का कार्य माना जाता है। इस भावना के पीछे भी एक मा यता है। यदि गर्भवती स्त्री की किसी इच्छा को *अपूर्ण रखा गया अथवा अतप्त स्थिति मे छोड दिया गया तो* उसका प्रभाव जन्म लेने वाले बालक पर पडता है। जिस बालक के मु ह स लार टपकती है उसके सम्ब ध में यह अन्ध-विश्वास है कि गर्भ की स्थिति म बालक की माता का मिठाई आदि खाने की लालसा बनी रही अत गर्भवती महिला की इच्छाओ का पूर्ण करना पुण्य का काम माना गया है।

अगरणी के गीतो मे भी इसी प्रकार खान-पीने वस्त्र-आभूषण धारण करने की कामना को प्रकट किया गया है।[१] टीका, रत्नजटिल आभूषण आदि के उल्लेख के साथ सन्तान-कामना प्रकट हुई है। पुत्र प्राप्ति के लिए नारी का यह अनुष्ठान अपने आप में एक महान तपस्या का व्रत लिये हुए है। वह देवी-देवताओ की मानता करती है, उपासना करती है, *और पूजन क लिये प्रतिज्ञा करती है, तब कही उसे पुत्र का मु ह देखने को* मिलता है। 'मान-पुन' मे प्राप्त बालक को अपना सवस्व मानकर देवताओसे उसके दीर्घायु होने की कामना भी करती है। यहाँ नारी की सन्तान-कामना की पृष्ठ-भूमि एव मनो-वैज्ञानिक स्थिति के विश्लेषण म प्रमुखत तीन बातें दृष्टिगत होती है।

१ वशहीन होना पाप समझा जाता है। वश की परम्परा को बढाने के लिय,पितरा का तर्पण करने के लिये, पुत्र का होना आवश्यक है।[२] इस अभाव के लिये नारी ही नहा अपितु पुरुष भी स्वय को मृत्यु के उपरान्त गति तक पहुँच ने के लिये बेचैन रहता है। दुष्यन्त जैसे वैभवशाली सम्राट ने भी 'अनपत्यता' को कष्टदायी एव अभिशापमय समझा था[३] पुत्र- प्राप्ति क लिये यह धार्मिक भावना आज भी उसी रूप में विद्यमान है।

२ नारी के जीवन की सार्थकता मातृत्व मे समझी जाती है। बन्ध्या होना मानो उसके लिये नारकीय अभिशाप है। सन्तानहीन स्त्री की अप्रतिष्ठा होती है। समाज की

---

१ १।२६, १।२७।

२ अस्मात्परं बत यथाश्रुति सम्भृतानि को न कुले निवपनानि करिष्यतीति।
—अभिज्ञान शाकुन्तल, अङ्क ६ श्लोक २५।

३ कष्ट भो खलु अनपत्यता, अभिज्ञान शाकुन्तल, अङ्क छठा।

स्त्रियां उसका मजाक उड़ाती है। उसका अस्तित्व ही निरर्थक समझा जाता है और वह अगौरव का विषय बन जाती है।

३ वृद्धावस्था में सेवा-सुश्रूषा करने वाला कोई तो चाहिये ही। यहाँ पुत्र का होना आवश्यक है। संतानहीन व्यक्ति इस अवस्था में प्रायः दुर्दशाग्रस्त एवं दयनीय स्थिति में हो जाते हैं।

वन्ध्यत्व के अभिशाप से मुक्त होने की भावना जन्म के गीतों में बड़े करुण ढंग से प्रकट हुई है। कुल-देवता एवं अन्य देवी-देवताओं के गीतों में संतान कामना का मार्मिक स्वरूप मिलता है। इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण मालवा में प्रचलित शीतला का एक गीत उल्लेखनीय है।

गाडी भरी चगेरडी ओ वउ तम कठे चाल्या आज।
आज माई म्हारो आसन बैठ्या, माई एक बालूडो दे।
लोपन भरी चगेडो ओ वउ तम कठे चाल्या आज।
आज माई म्हारो आसन बैठ्या यो म्हने लोपणो जोग।
पूजा भरी चगेरडी ओ वउ तम कठे चाल्या आज।
आज माई म्हारी आसन बैठ्या यो माई पूजन जोग।

कुलवधू पूजा आदि का उपकरण लेकर शीतला माई की पूजन के लिये प्रस्थान करती है। पूजा करने का प्रयोजन भी निष्कपटता के साथ प्रकट कर दिया जाता है।

एक बालूडा के कारणे म्हारे सुसरा जी बोले बोल।
एक बालूडा के कारणे म्हारे सासुजी बोले बोल।
एक बालूडा के कारणे म्हारे जठानी बोले बोल।
माई म्हारे एक बालूडो दे।
एक बालूडा के कारणे म्हारे जठजी बोले बोल।
एक बालूडा के कारणे म्हारे देवरजी बोले बोल।
एक बालूडा के कारणे म्हारे सायब जी लावे नाडी सौत।
माई म्हारे एक बालूडा दे।

नारी केवल एक पुत्र की कामना करती है। एक पुत्र न होने के कारण उसे कितने लांछन सहने पड़ते हैं। सास ससुर जेठ जेठानी एवं देवर आदि परिवार के सभी व्यक्ति उसे कोसते हैं। बाँझ होने का दोषारोपण करते हैं। नारी इन लोगों के कटु एवं मर्मभेदी व्यंग्य बाणों को सहने की क्षमता भी धारण कर सकती है किन्तु उसकी स्थिति उस समय अधिक दयनीय हो जाती है जब उसका पति भी संतान न होने का सब दोष उस अभागिन के सिर मढ़कर उसके बाप की सार्वजनिक घोषणा कर दूसरा विवाह करने की ठान लेता है। बेचारी हतभाग्य नारी अपने हृदय की वेदना किससे कहे? वह शीतला माँ के सम्मुख ही अपने मन की कसक का कारण स्पष्ट रख देती है। कल्पना के मनोरम साम्राज्य में उसकी पुत्र-कामना साकार हो उठती है।

सीतला ने दियो अम्मर पालणो।
बडी माता ने अम्मर फल, माई म्हारे एक बालूडो दे।
कठे बंदाऊ माता पालणो, कठे बदाऊ रेशम डोर?
ओरा बंदाऊ ए माता पालणो, पटसारा बंदाऊ रेशम डोर।
हिरती फिरती माता हुलरावती, म्हारो हियो हिलोरा लेय।
माई म्हारे एक बालूडो दे, काम करता चित्त पालणे ओ माता।
किनने राखूं रखवार माई म्हारे एक बालूडो दे ॥१६६

सीतला' पालना देती है। 'बडी माता' अमर पुत्र भी प्रदान करती है। रेशम की डोर से बंधे पालने मे माता शिशु को चलते फिरते ही हुलराती है। भुलाती है और ऐसा अनुभव होता है मानो उसका हृदय-समुद्र उमंगो मे तरंगित हो रहा है।

पितरा (पूर्वज) के गीतो मे भी सन्तान कामना का भाव स्थान स्थान पर मिलता है। कुल-देवी, सती पूर्वज एवं भैरूजी आदि देवी-देवताओ को सन्तान-प्रदाता माना गया है। सन्तति की उत्पत्ति का कारण देवता और पूर्वजो की कृपा है। यह भी एक रोचक प्रसंग है। जिसका सम्बन्ध नृतत्व विज्ञान से है। स्वस्थ स्त्री पुरुष के संयोग का परिणाम सन्तान की उत्पत्ति है किन्तु जीवन के इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार न करते हुए शारीरिक अक्षमता को भाग्य पूर्व-जन्मो के कर्मों का फल और देवी-देवताओ की अकृपा मान लिया जाता है। देवी-देवता पूर्वज और साधु-सन्तो के आशीर्वाद से ही पुत्र उत्पन्न होता है, अतः इन देवी-देवताओ की पूजा आह्वान एवं सत्कार का भव्य-आयोजन किया जाता है। पूर्वजो की कृपा केवल मनुष्य के संवर्धन तक ही सीमित नही रहती वरन् पशुओ की सन्तति के वर्धन का भी कारण है।

पूर्वज आया हो, पूर्वज म्हारे भलाई पधार्या
पूर्वज आया म्हारी अलिया गलिया ओ, पूर्वज आया म्हारी राम रसोई
काचा दूध उकलाया हो पूर्वज म्हारे
पूर्वज आया म्हारी घोडया के ओरे,
घोडया ने लाखेनी जाया ओ। पूर्वज म्हारे
पूर्वज आया म्हारी भैस्या के बाडे,
भैस्या भूरी पाडी जाई ओ। पूर्वज म्हारे
पूर्वज आया म्हारे गाया के बाडे,
गाया धोरा धोरी जाया ओ। पूर्वज म्हारे
पूर्वज आया म्हारी बउवा के द्वारे,
बउवा ने बेटा जाया हो। पूर्वज म्हारे
बउवा ने बस बढाया हो। पूर्वज म्हारे
पूर्वज आया म्हारी धियडल्या के द्वारे।
धियडी ने घरम दोयता जाया ओ। पूर्वज म्हारे ॥२६

पूर्वज निम्नलिखित स्थानों पर पधारते है —

१ घोड़ी के ठाण पर, २ भैंस के बाड़े म, ३ गाय के आर म,
४ बधू के द्वार पर, ५ पुत्रो के द्वार पर।

और उनकी कृपा के परिणाम स्वरूप परिवार में पशु एवं मानव की वृद्धि म क्रम उल्लेख है —

१ घोड़ी ने ताजेनी (बछेरो) उत्पन्न की।
२ गाय ने बछड़ा बछड़ी उत्पन्न किये।
३ भैंस ने भूरी पाडी उत्पन्न की।
४ वधू ने वश बढ़ाने के लिए पुत्र का जन्म दिया।
५ पुत्री ने धरम दायता (नाती) को जन्म दिया।

सन्तान-कामना में भी स्वार्थ की मनोवृत्ति को स्पष्टतः देखा जा सकता है। किन्तु पुत्री एवं वधू के पुत्र ही उत्पन्न हो, कन्या नहीं। जन्म के सम्पूर्ण गीतों में कन्या के जन्म के लिये कहीं भी आकांक्षा प्रकट नहीं की गई है। इस मनोवृत्ति के मूल म दो स्वार्थ है -

१ बेटी पराया धन है। २ आर्थिक संकट का कारण है। दहेज आदि कुप्रथाओं के कारण कन्या का जन्म अवाछनीय माना जाता है।
२ पुत्र तो बहू लाता है। बहू से घर की शोभा बढ़ती है, वश बढ़ता है।

स्वार्थ और जीवन की उपादेयता में परे होकर मानव कभी किसी अवाछनीय वस्तु की कामना नहीं करता। बहू और पुत्री को तो पुत्र ही उत्पन्न करें किन्तु पाडी, भैंस और गायों से इसके ठीक विपरीत हो कामना की प्रकट की गई है, भैंस और गायों की बछड़ियाँ भविष्य में दूध प्रदान करने का साधन बन सकती हैं। पाड़ी पर बैठा जा सकता है। बैल व जाकी कृषि के काम में या सकता है। किन्तु 'पाडा' नी का वाहन यह भैंसा, ससुर जैसे नहीं चाहिये।

पूर्वज के गीतों के अतिरिक्त अन्य जन्म के गीतों में भी पुत्र-प्राप्ति की आकांक्षा बड़ी विकलता के साथ प्रकट की गई है —

बिछावन आगन है पर खेलने वाला चाहिये।
दूध का कटोरा भरा है पर इसे पीने वाला चाहिये।
माई जाये बीर (भाई) बहुत है भुआ संबोधन से पुकारने वाला भतीजा चाहिए।
(इसमें बहिन के द्वारा भाई के लिये पुत्र की कामना प्रकट की गई है)
सासू के जाये देवर तो बहुत है, काकी कहने वाला चाहिये।
(देवरानी के लिए पुत्र की कामना)
सासू की जाई नन्द तो बहुत है मामी कहने वाला भाणजा चाहिये।
(नन्द के लिए पुत्र कामना)
बाहर पर जाने वाला (पति) तो बहुत सुन्दर है पर पालने में सोने वाला चाहिए।

पगडी बाधने वाले तो बहुत हैं, छोटी टोपी पहनने वाला चाहिये।
वस्त्र आभूषणो की कमी नही है, परन्तु इनको पहनने वाला चाहिए।[1]

देवी–देवताओं के इन गीतो को बालक के जन्म के पहिले एव अनिष्ट निवारण के लिय जन्म के पश्चात् रतजगे के अनुष्ठान में गाया जाता है। ये गीत मगल कामना की दृष्टि मे गाये जाते हैं, किन्तु इनका आनुष्ठानिक महत्व भी रहता है। जन्म और विवाह के अवसर पर इस प्रकार के गीतो का बाहुल्य रहता है। बालक के जन्म के पूर्व से लेकर जन्मोपरान्त लौकिक आचारो के अनुष्ठान का एक लम्बा क्रम प्रारम्भ होता है और प्राय सभी आचारो के साथ गीत का अबाध प्रवाह तो चलता ही रहता है।

जन्मोपरान्त के गीतो का विवेचन करने के पूर्व देवताओ के गीतो में सौत के गीतो का उल्लेख कर देना आवश्यक है। यदि गर्भवती स्त्री का कोई मरी हुई सौत हुई तो 'जीजा' या 'बडी' के गीत भी जन्म–सम्बन्धी रतजगे में गाये जाते हैं। सुहागिन स्त्री को अपनी मत–सौत के प्रति सम्मान की भावना रखना पडती है और उसकी स्मृति को सजग रखने के लिये गले में ' पगल्या' या इसी तरह का कोई स्मृति–चिह्न सदा धारण करना पडता है।

मत सौत के सम्बन्ध मे यह एक अन्ध विश्वास प्रचलित है कि वह मत (स्त्री) अपनी अपूर्ण कामना को लेकर गई है और सुहाग-सम्बन्धी उसकी कोई इच्छा यदि पूर्ण नही हुई तो नव–दम्पति मतात्मा की तृप्ति करने के लिये मेहन्दी, चूडियाँ बिछिया एवं अन्य सुहाग–सूचक वस्त्राभूषण सुहागिन महिलाओं को प्रदान करते हैं, और साथ ही जोडे [स्त्री पुरुष के युग्म] को भोजन भी कराया जाता है। इस लोकाचार को जोडे जिमाना या ' सुवासिनी ' जिमाना कहते हैं। इससे मत सौत की आत्मा तृप्त होकर जीवित पति–पत्नी और परिवार के अन्य लोगों को कष्ट नही देती। मत सौत को सुहागिन के शरीर में आते हुए भी देखा है। जीवित पत्नी की कमजोर मन स्थिति एवं अन्ध–विश्वासो की अडिग धारणा और अनिष्ट के भय की चरमावस्था के कारण सुसस्कृत एव उच्च परिवार की महिलाओं को भी मृत सौत के द्वारा त्रस्त होते देखा गया है। अत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह औपचारिक पूजा–पद्धति गर्भवती स्त्री के लिये लाभदायक ही सिद्ध होती है बालक को जन्म देते समय सौत सम्बन्धी किसी भी प्रकार का भय या अमगल की भावना गर्भवती के मन में न होजाय इस लिये सौत सम्बन्धी गीतो का गाया जाना सार्थकता लिये हुए है। इन गीतो से सौत को अच्छे–अच्छे आभूषण प्रदान किये जाते हैं, इनमें सुहाग–मय आभूषण भम्मर, टीका एव झबिया (पायल) आदि प्रमुख हैं।

जीजा भम्मर घडावा तमारे हो, कई टीको घडावा म्हारा जीजा बई।
म्हारा या म्हारी बेया बई, गेरी गेरी झबिया बाजे
बैठूँ तो झबिया बाजे, उठू तो झबिया बाजे

---

[1] मूल गीत, तृतीय अध्याय के रतजगा के गीतों में दिया गया है।

सायब को बंगलो गाजे म्हारी जीजा बई
म्हारा या म्हारी बेया गई, गेरी गेरी भजिया गाजे [१]

गीत में लिये जीजा–बई, बैया–बाई आदि शब्द सम्मान के सूचक हैं। उनको बहिन के समान ही आदर दिया जाता है। आभूषण के बटवारे पर भी मातृगार या ईर्ष्या करने की कोई बात भी नहीं उठ सकती। अतः गीत में भय का भाव जा है, उस बड़ा और स्वयं को छोटा मानना ही पड़ता है —

माथा केरा मम्मर जीजा बाई, माथा करो टीका बेया बई
उनको बाटो हाय, तम बड़ा हम छोटा जीजा बई
तमारी होड़ नी होय [२]

जन्म के उपरान्त के गीत

मालवा में जन्म-सम्बन्धी गीतों की एक विस्तृत सूची है। जन्मोपरान्त के गीतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार होगा।

१– बधावणा या बधावे २– पगल्या
३– जच्चा के गीत ४– छटी के गीत
५– घूघरी एवं सूर्य–पूजा ६– हालरा–लोरिया

बालक के जन्म के उपरान्त बधावे के गीत प्रारम्भ होते हैं। बालक जन्म के शुभवसर पर बहिन एवं परिवार की अन्य महिलाओं के द्वारा बधाई के गीत गाये जाते हैं। बधाई के गीत जन्मोत्सव जैसे मांगलिक अवसर के अभिनन्दन के साथ ही हृदय की उत्फुल्ल—भावना के परिचायक भी हैं। जन्म का उत्सव मनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। राम–जन्म के पावन अवसर पर गंधर्वों द्वारा गीत गाये जाने का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में मिलता है। कृष्ण जन्म पर व्रज की महिलाओं ने भी गीत गाये थे। तब से लेकर आज तक सभ्य और असभ्य सभी प्रकार की जातियों की महिलाएं बालक के जन्म पर आनन्द मनोल्लास और हर्ष की भावनाएं प्रकट करती चली आ रही हैं। प्रत्येक प्रसूता भारतीय नारी कौशल्या और यशोदा बनकर राम—कृष्ण जैसे सुपुत्रों को अपनी गोद में खिलाना चाहती है। किसी सद्–गृहस्थ के यहाँ पुत्र का जन्म जिस दिन होता है वह बचन का दिन माना जाता है। लोक–गीतों का नारी–हृदय स्वयं को वैभव के लोक में रमा देता है। व्यक्ति निर्धन हो सकता है किन्तु उसके यहाँ पुत्र–जन्म के अवसर पर केशर से आंगन लीपा जाता है और गज–मोतियों से चौक बनाया जाता है।

---

१ मालवी लोक गीत, पृष्ठ ९४।
२ वही पृष्ठ ९५।

कचन दिन उगियाजी, वई घोलू केसर लीपू आगणाजी
गज–मोनियन चाक पुराव, कचन दिन उगियाजी
बैठायो कोसल्या बउ चौक मेजी, तमारी गोदी मे रामचन्दर असा पूत
कचन दिन उगियाजी ।

व्रज, मिथिला, भोजपुर, बुन्देलखण्ड एव छत्तीसगढ आदि जनपदों में इस अवसर पर 'सोहर' गाये जाते हैं। किन्तु मालवा में जन्मे बालक का अभिनन्दन बधावा से होता है। इस अवसर पर आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार जाति एव इष्ट–मित्रो में बतासे–पेडे मिष्ठान्न के प्रतिक के रूप मे वितरित किये जाते हैं। बहिन के लिये तो यह अवसर बडा कौतूहलमय होता है। भाई के यहाँ बालक होने की प्रसन्नता का उभार इस गीत में प्रकट हुआ है।

म्हारा वीरा घर काई हुओ, छोरो हुओ के छोरी हुई   म्हारा वीरा
म्हारा वीरा घरे छोरो हुओ, उजलो हुवो के कालो हुओ   म्हारा वीरा
उन्दरो हुआ के उन्दरी हुई, म्हारा वीरा घरे वई बट्या
म्हारा वीरा घरे छोरो हुओ

बहिन की प्रसन्नता इस चरमता पर पहुँचती है कि भाई के यहाँ पुत्र होने पर एव पक्षी के द्वारा बधाई का सन्देश भेजती है। बधाई की सूचना भाई तक ही सीमित नही रहती वरन् बहिन के हृदय मे इतना हर्ष है कि सम्पूर्ण नगर का बधाई दे आने के लिये कह उठती है।

उड उड म्हारा लाल परेवा, नगर बधावो दीजे
गाव नो जाणू गाम णी जाणू, किना घरे दू बधावो जी[1]

इन बधाओ मे कही कही पर पारिवारिक राग–द्वेष एव वधू के मायके वालो पर व्यग कटाक्ष आदि का भावना बडी तीव्र रहती है। बधावे के गीत मुक्तक एव कथात्मक दोनों शैली म प्रकट हुए हैं। बधावे के कथात्मक गीतो का आकार सामान्यत कुछ विस्तृत ही होता है। भाई के यहाँ लडका हुआ है। बहिन बडी आशा आकाक्षाओ को लेकर पुत्र–जन्म के अवसर पर अपने भाई–भावज को बधाई देन के लिये आती है। बधावे का एक कथागीत इसी घटना को लेकर प्रारम्भ होता है।

दूर देसा से वई जी आया
लाया हो भतीजा री झूल
वो साजन री जाई
वीरा घरे हुआ रे बधावणा
उठोनी वो भावज
करोणी बिछावना

दूर देसाँ से ननदल आई
वो साजन री जाई
वीरा घरे हुआ रे बधावणा
थारा बीरा जी वई
छादरी नी लाया
कासे करू बिछावना

[1] मालवी लोक-गीत, पृष्ठ १४।

वो साजन री जाई
वीरा घरे
उठोणी वो भावज पाणोड़ा पावो
दूर देसां से नणदल भाई
वो साजन री जाई
वीरा घरे
म्हारा वीराजी वई
कुवो नी खुदायो
कायसे पानी भर लाऊँ
ओ सासूरी जाई
वीरा घरे
उठोनी वो भावज
रसोई बनाओ (निपाव)
दूर देसां से ननदल आई
वो साजन री जाई
वीरा घरे
तमारा वीरा बई जी
गउँडा नी वोया
कायसे बनाऊँ रसोई
वो सासूरी जाई
वीरा घरे
उठोनी वो भावज
रस्तो बताओ
जां से आया वैंई जावा
वो साजन री जाई
ओ साजन री जाई।
बीरा घरे
सूरज सामने बई पोळ तमारी।
आगण केल झूके ।
ओ साजन री जाई ।
बीरा घरे
आडा फिरिके बई का।
बीरा जी बोल्या।
चूनड ओडी ने बई।
घरे जावो

ओ माडी री जाई।
बीरा घरे
या पूछ वीरा।
थारी साली ने ओड़ार
तमारो तो धरम बढ़ाव।
रे माडी रा जाया
वीरा घरे
आगे जाता बईजी का जेठजी पूछे।
पियर गया था।
कँई कँई लाया?
वो साजन री जाई।
वीरा घरे
पाछे पाछे म्हारा हाथीड़ा आवे।
घोड़ा रो अन्त न पार।
वो सासू रा जाया।
बीरा घरे
आगे जाता बईजी का देवरजी बोल्या
पियर गया था भाभी।
कँई कँई लाया?
वो साजन री जाई।
वीरा घरे
पाछे पाछे म्हारे मोहरा आव।
रुपिया रो अन्त न पार।
ओ सासूरा जाया।
वीरा घरे
आगे जाता बई जी रा जेठानी पूछे
पियर गया था कँई कँई लाया?
हीरा बी लाया ने
मोती बी लाया
गेणा रो अन्त न पार
वो साजन री जाई
वीरा घरे
आगे जाता
बई जी रा नणदल पूछे
पीयर गया था भावज

कँई कँई लाया?	कँई कँई लाया ?
ओ साजन री जाई	वो सासूरी जाई।
वीरा घरे	वीरा घरे
सालू बी लाया बई जी	बलती वे हो म्हारा साजन।
डडिया भर लाया	कई तम वोलो
बुगचा को अन्त न पार	या को दालण यँईज कग्या।
सोटा खेलन्ताबाई जी रा	हो सासुरा जाया।
तोडाचन्द पूछे।	वीरा घरे
पियर गया था गोरी	— १।३६

ननद के प्रति भावज की निर्दयतापूर्ण कठोरता का यह गीत एक ज्वलन्त चित्र है। मातृदोत्सव के समय बेचारी बहिन तो बधाई देन आई हैं किन्तु भाई के यहाँ भावज के द्वारा उसका घोर अपमान किया जाता है। बहिन स्वय ही बठने के लिये बिछावन मागती है, पीने के लिये पानी मागती हैं, भाजन के लिये रसाई बनाने को कहती है किन्तु लोक गीता की भावज इतनी ईर्ष्यामयी है कि स्वागत सत्कार करने की अपेक्षा व्यग्य भरे उत्तर देती है।

卐 तुम्हारा भाई बिछाने के लिये छादडो नही लाया,

卐 पानी के लिये तुम्हारे भाइ न कुआ नहीं खुदवाया,

卐 भोजन के लिये तुम्हार भाई ने गेहू की खेती नहीं की।

भावज मानो स्वय तो निरपराध है और सम्पूर्ण दोष है भाई का जिसन बहिन के आतिथ्य की यथोचित व्यवस्था नही की। बहिन इस अपमान से तिलमिला कर अपन घर के रास्ते की ओर चल पडती है। मार्ग मे भाई मिल जाता है और रोक कर बहिन को चूनडी ओढ़ाना चाहता है किन्तु बहिन का रोष यथार्थ स्थिति को प्रकट करने के लिये उबल पडता हैं।

"जोरू के गुलाम यह चूनड़ अपनी सालिया को ओढाना" इसमे ही तरा धम बढेगा बहिन क हृदय को जलाने के लिये उसके ससुराल के लोग भी पूछ बठत है कि वह अपन मायके स उपहार मे कितनी वस्तु लाई। इन लोगा का अपने भाई का वैभव बताने के लिये बहिन झूठ ही कह देती है कि हाथी, घोडा वस्त्र, आभूषण, हीरा, माती आदि सभी वस्तुए लाई हैं। किन्तु उसका पति भी इस व्यंग्य विनोद मे योग देकर पूछ बैठता है 'तुम अपने मायके से क्या लाई, ? तब बहिन के अपमान पीडित हृदय की वेदना अधिक मार्मिक हो उठती है।

बधावे के इन गीतो का लोकाचार की दृष्टि से ही अधिक महत्व है। जन्म, विवाह एवं अन्य मागलिक अवसरो पर बधावे गाये जाने की प्रथा सम्पूर्ण मानवा म प्रचलित है।

पगल्या

प्रथम पुत्र के जन्म का समाचार अपने परिजना के यहा भाई के द्वारा पहुँचाया जाना है। इस सन्देश के साथ 'पगल्या, पद चिह्न भेजन की पद्धति पूरे प्रदेश मे प्रचलित है। इस प्रथा मे नवागन्तुक प्राणी के स्वागत की भावना के साथ एक अन्ध विश्वास सम्बन्धी

मान्यता भी दिया हुई है। किसी परिवार में नवीन व्यक्ति के चरण पड़ना एक महत्वपूर्ण घटना है। परिवार की सुख, समृद्धि विकास और वैभव का भविष्य पुत्र के जन्म की घड़ी पर आधारित माना जाता है। Co-incidence ही इस अंध-विश्वास का आधार हो सकता है। किसी बालक के जन्म के पर उसके चरण किसी गृह-गृहस्थ के यहाँ पड़ने पर उस परिवार को धार्मिक या अन्य प्रकार के भौतिक लाभ हुए होंगे तो वह बालक बड़ा भाग्यवान मान लिया गया। उसके चरण शुभ एवं मंगलमय हो गये। यदि उस बालक के जन्म पर किसी परिवार को अप्रत्याशित आपत्ति का सामना करना पड़ा तो वह पाप भी बालक का है कि ऐसी कुघड़ी में उसके चरण पड़े कि सब चौपट हो गया। अतः बालक के जन्म पर 'पगल्या' भेजना और उसके बधावे से यही मनोवृत्ति प्रकट होती है कि इसके पद चिह्न हमारे लिये शुभ एवं मंगलदायी हो। पगल्या के जो चिह्न अंकित किये जाते हैं, उसमें सथिया [स्वस्ति] का अंकन इस मंगल-कामना को स्पष्ट कर देता है। पगल्या में पांच या सात आकृतियाँ अंकित करने की प्रथा है। विषम संख्या को प्रायः शुभ माना गया है। पगल्या की आकृति इस प्रकार है।

१	पद चिह्न	बालक के दो पद चिह्न (पगल्या)
२	वृक्ष	वंश वृक्ष की समृद्धि का प्रतीक (झाड)
३	पालना	बालक के झूलने के लिये (पालणा)
४	खिलौने	बालक के खेलने के लिये (घूघरा चूसनी)
५	समधी-समधन और बालक	एकोऽहम् बहुस्याम की भावना का प्रतीक ब्याई और ब्याइन ने बालक को जन्म देकर अपने कर्तव्य को निभाया है। उनके अंकन में अभिनन्दन की भावना (ब्याई-ब्यायण)
६	स्वास्तिक	(सातयो)
७	काष्ठ-चौकी, बाजोट।	इन दोनों वस्तुओं के अंकन में धार्मिक भावना प्रधान है।

उपरोक्त आकृतियाँ रोली-कुंकुम या लाल स्याही से सफेद कागज पर अंकित की जाती हैं। इन आकृतियों का सामूहिक एवं प्रतीकात्मक नाम 'पगल्या' दिया गया है। पगल्या भेजना पुत्र-जन्म की सूचना के साथ ही एक प्रकार का निमन्त्रण भी है। जन्मे बालक की बुआ को निमन्त्रण दिया जाता है। पगल्या बालक के माता के भाई और ननद इन दोनों के यहाँ पहिले भेजा जाता है। भाई को भानजा होने की प्रसन्नता होगी और बहिन को भतीजा के जन्म पर 'नेग' पुरस्कार प्राप्ति का आनन्द होगा। किन्तु पगल्या के अधिकांश गीतों में इस रूप की भावना की अपेक्षा ननद भौजाई के राग द्वेष और मन मुटाव का उल्लेख ही अधिक हुआ है।

जाओ नाबी जाओ बामण जाओ बई का वीर म्हारा मारूजी हो राज,
बई जी यो तम कीजो तमारे भतीजो आयो, म्हारा मारूजी रो राज
चालो बाई चालो वेया तमारे भतीजो आयो म्हारा

म्हारा घरे काम घणो म्हारो तो आणो नी ह्,य म्हारा
नाना सारु कडा चइये, पान पनामा चइये
घूगरा चूतनी चईय भगलो-खु गाली चइये
म्हारा घरे काम घणो म्हारो तो आणो नी होय म्हारा
गया नावी गया बामण गया बाई जी का वीर हो म्हारा
डावा मे को गेणा वेच्यो पेटी म को कपडा बेच्यो
अच्छो हुओ जा बईजी नी आया, म्हारा मारूजी रो राज

गीत की भावना प्रचलित प्रथाओ पर पूरा प्रकाश डालता है । यदि भाई के यहा पुत्र होता है तो बहिन क यहा से भतीजे के लिये कडे (हाथ पैर के लिये) खुगाली आदि आभूषणो के साथ भगल्या-टोपी आदि ले जाना पडता है । सम्पन्न घर मे दी गई बहिन तो सोने के आभूषण ला सकती है किन्तु उक्त गीत की बहिन क घर की आर्थिक स्थिति ठीक नही जान पडती । भाई क यहाँ मागलिक अवसर पर वह खाना हाथ जाना ठीक नहा समझती । अत निमन्त्रण ए। पगल्या लान वाल नाई (या ब्राह्मण) का कह देती है कि घर में काम बहुत है वहा आना नहा हागा । बहिन न ता बहाना बताकर अवसर टाल दिया किन्तु भौजाई स्वय यह नही चाहती था कि उसकी ननन्द वहाँ आवे । ननन्द के न आने पर उसके अपने मन की प्रसन्नता व्यक्त कर ही दी ।

चला अच्छा हुआ, वह नही आई ।

जच्चा के गीता म प्रसूता का प्रसव पीडा परिवार के लागा के द्वारा पुत्र-जन्म पर इधर-उधर सदेश भेजन की दौड धूप सुआवड (प्रसूता) की उपशामयी स्थिति आदि का वर्णन किया गया है । गभवती पत्नी के प्रति पति का बडा आकषण हाता है । किन्तु सभावित आशा के विपरीत यदि पुत्र की अपक्षा पुत्री का जन्म हा गया ता बचारी नारी की बडी दुविधामय दशा हा जाती है । निम्न लिखित गीत मे गभवती कुलवधू के हृदय का उल्लास व्यजित हुआ है । परिवार के सदस्या के प्रति वधू की भावना सुखप्रद है जहा मालिन्य और द्वेष भावना का अभाव है ।

कबले उबी कुल बउ अइ अइ कम्मर माय पीड
फिकर म्हारी कुण करे जी म्हारा राज
सुसरा जी म्हारा राज विजैजी, सासू अलख भण्डार
जैठ म्हारा चोधरीजी, जैठानी भोली नार
देवर म्हारा लाडला जी, देराणी नई नवेली नार
ननद म्हारा लाडला जी, नन्दोई पराया पूत
ओर माय की ओवरी सूता नन्दल का वीर
पाव को अगूठो दबई जगाविया, जागो जागो बाई जी का वीर
खाली कर दो ओवरी जी झटपट बादी पाग
झपट घुडलो पलाणिया या लो गोरी ओवरी जी
जो तम जाओगा धीयडी जी आवे सातीडा म लाज
जो तम लावोगा लाडलो घर म वधावणा होय ।
फिकर म्हारी कुण करे जी म्हारा राज ३।१५५

'छठा जगा' जन्म के संस्कारों में विशेष महत्व रखता है। बालक के जन्म के छठे दिन रात्रि को विधाता आकर बालक का भाग्य लिख जाता है। विधाता के ये अंक अमिट होते हैं। बालक के जीवन के सहाभाग्य, दुर्भाग्य का निर्णय भी इस रात्रि को होता है। अतः बालक एवं परिवार की शुभ सम्पत्ति और वैभव की वृद्धि की कामना के लिये देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं। रातजगे में गाये जाने वाले गीतों का प्रायः दुहराया जाता है। प्रसूता के पलंग के पास बालक की भाग्यलिपि लिखने के लिये दवात, कलम कागज रख दिये जाते हैं। साथ ही मंगल कामना की पूर्ति के लिये मंडू पोना (कुंकुम-अक्षत) से पूजित एक ताम्र-पात्र भी रख दिया जाता है।

बालक के जन्म के दसवें दिन शुभ मुहूर्त न आने पर ग्यारहवें या बारहवें दिन प्रसूता के द्वारा सूर्य की पूजा की जाती है। इस दिन प्रसूता को मांगलिक स्नान कराया जाता है। प्रजनन सम्बन्धी अशुचि की भावना का इस दिन परिमार्जन हो जाता है। सूतक की समाप्ति मान ली जाती है। इन दस दिनों तक परिवार के लोग देव-मन्दिर आदि नहीं जाते। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के मरने पर 'मृतक सूतक' में स्पर्शास्पर्श की भावना का निर्वाह किया जाता है उसी प्रकार वृद्धि-सूतक में छुआछूत का बड़ा ध्यान रखा जाता है। सूर्य-पूजा के पश्चात् यह सूतक समाप्त हो जाता है। घर आंगन गोबर से लीपे जाते हैं। प्रसूता को नवीन वस्त्र पहनाकर नवजात शिशु के साथ चौक पर मंगल घट की पूजा कराई जाती है। सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। प्रसूता एवं बालक के लिये सम्बन्धी लोग वस्त्र आदि का उपहार लाते हैं। इस अवसर पर गेहूं अथवा जुआर की उबाली हुई 'घुघरी' वितरित की जाती हैं। यह भगवान सूर्य के प्रसाद का प्रतीक है, किन्तु एक प्रचलित मालवी कहावत के अनुसार घुघरी खाना अपनी वयोवृद्धता की एक उद्घोषणा है। यदि कोई छोटी उम्र का बालक अपने से बड़ी आयु के व्यक्ति को नाम लेकर पुकारता है तो यह अच्छा नहीं समझा जाता है और उस बालक को इस अवांछनीय आचरण पर डाँट दिया जाता है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं स्थूल रूप से तीन भागों में उनका वर्गीकरण होगा —

सूरज पूजा के गीत

चाक के गीत	घुगरी	हास्य के विविध प्रसङ्गों के गीत

चौक के गीतों में घर आंगन के लीपन-पोतन सम्बन्धी एवं परिजनों के मिष्ठान खिलाने, चन्दन चौक, मंगल कलश के उल्लेख के साथ मातृत्व की सार्थकता का गर्व प्रकट हुआ है। माता के लिये उसका नवजात शिशु प्रजा को पालने वाले, धरती का भार उतारने वाले श्रीकृष्ण के समान ही महत्व रखता है।

सूर्य गऊ का गोबर मगाय, सीके दई आगन लिपाव
भई म्हारे आनन्द मलाचार, गज मोतिया चाक पुराव
कुकू कलश धरावो, भई म्हारे

तेडो तेडो रे गोकुल का जोसी, नानुडा को नाम लेवाव
मई म्हारे नानुडा को नाम कुवर कन्हैयो, कृष्ण कन्हैयो
धरती को धोवन वालो, परजा को पालन वालो
सिरा कृष्ण आयो म्हारे द्वार, भई म्हारे आनन्द मगलाचार ३।१५७

उक्त गीत मे बच्चे का नाम रखने का मर्म भी है। सूरज पूजा के दिन जोसी (ज्योतिषी) से पूछकर बच्चे का नाम भी रख लिया जाता है। प्राचीन नामकरण सस्कार को सूरज-पूजा के आचार मे सम्मिलित कर लिया है। अलग मे नामकरण सस्कार करने की प्रथा प्रचलित नही है। सूरज-पूजा के दिन ही परिवार की सुहागिन नारियाँ बच्चे को गोद में लेकर उसके नाम का उच्चारण कर देती है।

घुघरी का उल्लेख सूर्य पूजा के प्रसग में किया जा चुका है। घूघरी पकाते समय निम्नलिखित गीत गाया जाता है —

बई ओ, ताज़ा केरो तोलनी मगाव, रायरूपा की ढाकणी
बई ओ, दूधा केरा आदण देवाव म्हारा गाळ्या गऊ को घुगरी
बई ओ, दोजे दोजे अन्नने सन्नने सेर, तमारी ननदल मत दीजो घुगरी
बई ओ, दइ दइ अन्नने सन्नने सेर म्हारी नणदल के दइ दी घुगरी
बई ओ, नावन म्हारी अगला भौ की सौक नणदल के दइ दी घुगरी
उठो पीया लालडो पलाणो म्हारो पाछो लाई दो घुगरी
बीरा आदि-पिछली रात असूरो-असूरो क्यो आयो
वे याओ रहारी भावज निरधन रो घीहडो पाछो मागे घूघरी
बई ओ आदि रहारा बालकडा समझा, आदि दई द घुगरी
बीरा रे म्हारा बालक ने राख समजाय रहारी सगली लई जा घुगरी
बीरा रे हेइू म्हारा गगा जमनी खेन हू नन की राढू घुगरो
बीरा रे हू जो हानो निरपनधारो नार रहारी कासे लानो घुगरो ३।१५६

गीत मे ननद और भावज की ईर्ष्या-भावना को लेकर सम्पूर्ण, कथा प्रसग का आयोजन हुआ है। सूरज-पूजा के अन्य गीता मे स्त्रियो द्वारा हास्य की सामग्री भी जुटाई जाता है। जिसमें सम्बन्धियो को कागना (कौआ) कुत्ता (मुर्गा) और मिनको (बिल्ली) आदि बनाया जाता है। ऐसे गीतो मे भाव सौन्दर्य का अभाव रहता है। परिवार के व्यक्तियों के नाम बार बार दोहराये जाते हैं। केवल एक-दो टेक का पक्तियो मे गीत समाप्त हो जाता है।

उण्डो उण्डो कुओ रे, केरली का पान
घरे छोरो हुवो रे सूपडा का कान

नवजात शिशु के कानो का सूप जैसा बताकर शरीर की अस्वाभाविक विकृति का दृश्य लाकर हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है।

जन्म-संस्कार के गीतों में प्रसंगवश हालरा-लोरियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। शिशु को पालने में झुलाते समय लोरियाँ गाई जाती हैं।

हालरा-लोरिया

मालवी लोरियों में मातृ हृदय में पाई जाने वाली उन सामान्य प्रवृत्तियों के दर्शन हो जाते है, जो भारत की अन्य भाषाओं की लोरियों में विद्यमान हैं। मालवा में लोरियों को 'हालरा' कहते हैं। पालने में या मांओं में शिशु को सुलाकर हुलराया जाता है। झुलाया जाता है। इसी हुलराने-दुलराने की क्रिया के साथ जो लोरी गीत गाये जाते हैं, उनकी संज्ञा हालरा हुई। प्रत्येक हालरा या लोरी के प्रारम्भ में

"हलो हलो रे नाना हलो रे भई,
हलो रे नाना भूला रे भई,
हुल रे हुल नाना हुल " आदि पंक्तियां दोहराई जाती हैं[1]

हुलराने की क्रिया के कारण बंगाली लोक गीतों में लोरियों को 'घूम पाड़ानी गान अथवा छड़ा' कहते हैं। शिशु को सुख की नींद प्रदान करने के लिये माता का कण्ठ गीत गाते गाते सूख जाता है परन्तु खेल में थके बालक की परिश्रान्ति निवारण में उसके लोरी गीत कभी नहीं सूखते, क्योंकि माता का हृदय कभी निर्धन नहीं होता। कुबेर का सम्पूर्ण संचित वैभव मानो उसके आंगन में बिखरा पड़ा है। शिशु के लिये पालना सोने का ही बनता है। उसे बांधने को रेशम की डोर ही लगती है। और अपने राजपुत्र शिशु को झुलाने का पारिश्रमिक (पुरस्कार) है सीरा पूरा और घुघरी गोल[2] कथा दानी वस्तुएं जन-सामान्य को उत्सव एवं मांगलिक अवसरों पर प्राप्त होने वाला मिष्ठ पदार्थ है। यहाँ मालवी माता का हृदय जीवन की यथार्थ स्थिति को छोड़कर अन्य पकवान एवं मिठाइयों के कल्पना लोक में जाने के लिये नहीं ललचाता। पंजाबी माँ की तरह मालवा की माताएं भी अपने राजपुत्र शिशु को हृष्ट पुष्ट बनाने के लिये दस गायों का दूध पिलाती हैं।

नानो तो म्हारो रायां को
दूध पीये दस गायां को।

और बड़ी आशा, आकांक्षा एवं देवताओं की मान मिन्नतों से प्राप्त हुए पुत्र को अनिष्ट से बचाने के लिये 'लूण मीच' करने को तत्पर रहती है। माता को अपने शिशु पर किसी की कुदृष्टि पड़ जाने अथवा नजर लग जाने का सदा भय बना रहता है। इस नजर

---

१ गीत परिशिष्ट क्रमांक १-अ। ४ में दिया गया है।
२ गीत परिशिष्ट क्रमांक १-अ। ५ में दिया गया है।
* नाम विशेष।

अथवा कुदृष्टि के प्रभाव से उसका मुंह जैसा बालक कुम्हला भी सकता है। अतः इस प्रकार की किंचित शंका होने पर वह लूण मिर्च करती ही है।[1]

अनिष्ट निवारण के साथ ही अपने शिशु के लिये माता को एक चिर पिपासा और रहती है। वह शीघ्र ही छोटी–सी दुलहन उसके घर में आजाय —

लूण करे रे मे रई रे भई
नाना की करो सगाई रे भई।

मालवी लोरिया में शिशु की मंगल कामना के साथ हास्य के भी कुछ रोचक प्रसंग आते हैं। साधारण स्थिति की माता के यहां कोई दास-दासी तो नहीं हैं, जो शिशु की देखभाल कर सके। अतः माता शिशु को अकेला छोड़कर पानी भरने के लिये घर से बाहर चली जाती है। तब कुत्ते आकर घर में खाने पीने की वस्तुओं को समाप्त कर जाते हैं और इस उजाड़ (नुकसान) का कारण समझा जाता है वह शिशु। उसे डाट फटकार के व कभी कभी मार धमके मार भी खाने पड़ते है, उजाड़ तो कुत्ते करें और जूते पड़े उस निरपराध शिशु पर,[2] हास्य के साथ कुछ लोरियों में व्यंग और नारी हृदय का कुण्ठित रोष, द्रोह भी प्रकट हो जाता है। यह कुण्ठा ननद के विरुद्ध उभार लाती है क्योंकि सामाजिक जीवन में व्यवहारिक शिष्टता के कारण ननद द्वारा किये गये अत्याचारों का प्रतिकार किया जाना तो सम्भव नहीं होता, अतः गीतों मे ही बेचारी ननद को गाली में दिया जाता है। उसे लगड़ी और पंगु बनाया जाता है।

सुईजा रे नाना झोली म, म्हारी भुआ गई होली में
हालर हूलर हासी को, लाल चूड़ो नाना की मासी को
पग टूटो नाना की भुआ को [3]

ननद की दुर्गामय स्थिति की चाह के साथ मालवी नारी का मातृ-पक्ष के प्रति जो ममत्व है वह भी नहीं छिप सकता। वह पति की बहिन के प्रति क्रुद्ध है, किन्तु स्वयं की बहिन के चूड़े को लाल और सुहाग–मय रखना चाहती है। वात्सल्य की सृष्टि के साथ नारी-हृदय की कुण्ठा का प्रकटीकरण मालवी लोरिया की विशेषता है।[4]

---

१ देखें परिशिष्ट क्रमांक १—अ। ६

° 'लूण मिरच करना' एक टोना होता है जिसमे नमक की डली, साबी मिरच, राई और झाडू के दो चार 'खोड़े' लेकर शिशु के ऊपर उसके मस्तक से पर तक सात बार उवारा जाता है और उक्त वस्तुओं को जलते चूल्हे मे डाल दिया जाता है। यदि जलती हुई मिर्च तीव्र गंध नहीं दे तो समझ लिया जाता है कि बच्चे को किसी की नजर अवश्य लग गई है।

२ देखें परिशिष्ट क्रमांक १—अ। ७

३ „ १—अ। ८

४ „ १—अ। ८

स्त्रियों के गीत :क्रमश:

विवाह के गीत

- o विवाह के सस्कार
- o विवाह की परम्पराएँ एव रीति रिव
- o शास्त्र और नारी का रूढि-शास्त्र
- o विवाह के लोकाचार
- o छोटा बयाक
- o बटा बयाक
- o सगाई
- o चाक नोतने के गीत
- o हल्दी व तेल-पान के गीत
- o रातजगा मे विभिन्न दवी-दवताओ का आह्वान
    - o कुल-देवी (माता) के गीत
    - o पूवज (पितर) के गीत
    - o जुझार जी पीर जी के गीत
    - o भैर जी के गीत
- o घोक्लश एव उकड़ी पूजा के गीत
- o बनडा-बनडी
- o मायरा के गीत
- o यज्ञोपवीत के गीत
- o वर-यात्रा के गीत
- o घोडी और सेवरा
- o सुहाग-कामण के गीत
- o हस्त मिलन के गीत
- o काकड डोरा के गीत
- o गाळ के गीत
- o पारसी जमाई की ज्ञान-परीक्षा
- o विदाई के गीत
- o बधावे।

विवाह के संस्कार

मानव-सभ्यता के विकास के आदिमकाल में विवाह-प्रथा का आविष्कार उस समय हुआ होगा जब मनुष्यने सामाजिक जीवन की आवश्यकता समझी होगी वैसे मनुष्य एकाकी कभी नही रहा। प्रकृति एव पुरुष के युग्म रूप में स्त्री-पुरुष का पशुओ की प्रवृत्ति के समान ही यौन आकर्षण, सृष्टि के निर्माण और विस्तार का एक अज्ञात रहस्य था। यह सभव है कि स्त्री-पुरुषा का सम्बन्ध समाजगत किन्हीं नियमा से बाध्य न होकर प्रकृत प्रवृत्तिया से प्रेरित होता था। एक पुरुष अनेक रमणियो का पत्नी रूप में रख सकता था। और एक स्त्री एक से अधिक पुरुषो स पति रूप मे सम्बन्ध रख सकती थी। मातृसत्ता के युग मे विवाह की जो प्रथाएँ रही होगी वहाँ भी समाजगत मान्यताओं का प्रमुख स्थान अवश्य रहा होगा। आज भी अनेक जगली जातिया मे विवाह की जो विचित्र प्रथाएँ एव लोकाचार विद्यमान है उनकी कुछ अस्पष्ट एव धूमिल छाया भारत की सुसस्कृत एव सभ्य कही जाने वाली जातियो मे प्रचलित देखकर आश्चर्य होता है।

भारत म प्रचलित विवाह के सस्कारा का मूल स्रोत हमें ऋग्वेद मे प्राप्त होता है। भारतीय आर्यों ने विवाह को मानव-जीवन का एक आवश्यक सस्कार माना है एव षोडस सस्कारो में उसका प्रमुख स्थान है। स्त्री-पुरुषो के यौन सम्बन्धो को समाजगत मान्यता देने के साथ ही प्रकृति के रहस्यमय तत्वों समझते हुए उसे धार्मिक महत्व भी प्रदान किया है।[1] मानव की लोक-यात्रा मे समाज के कल्याण एव शुभ—सकल्प के साथ वंश-संवर्धन एव स्वय की स्थिति की रक्षा के लिये विवाह को एक धर्म मानकर स्त्री पुरुषो के सम्बन्धा की निश्चित व्यवस्थाएँ निर्धारित की। शास्त्र मे उसके विधान बनाये गये। किन्तु मनुष्य-स्वभाव नियमा से कभी बाध्य नही होता और हम देखते हैं कि अनेक शास्त्रकारो न विवाह के लिये जिन आवश्यक बन्धनो को निर्धारित किया, सशक्त लोगो ने उनको तोडने की चेष्टा भी की। यह प्रवृत्ति प्राचीन भारत में प्रचलित आठ प्रकार की विवाह पद्धतिया स स्पष्ट होजाती है। समाज के विधान-निर्माता मनु को भी अपनी स्मृति मे शास्त्रीय विवेचन करने समय आठ प्रकार की विवाह-प्रथाओ पर मत देता पडा।[2] इन मे ब्राह्मण, देव, आर्ष और प्राजापत्य विवाह श्रेष्ठ माने गये हैं। तथा ब्राह्मण वर्ग के लिये प्रयोजनीय कह गये हैं। असुर एव गान्धर्व विवाह भी धर्मसम्मत है।[3] गान्धर्व विवाह ऋग्वेद—कालीन विवाह का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। उस युग मे कन्याओ को उत्सव एव सामाजिक आयोजना पर सुन्दर वस्त्रालकरणो से सज्जित होकर प्रेमियो

---

१ क्षेत्र भूता स्मृता नारी बीजभूत स्मृत पुमान्। मनु-स्मृति, ६।३३।

२ ब्राह्मो दैवस्तथवार्ष, प्राजापत्यस्तथासुर।
गान्धर्वो राक्षसश्चव पैशाचश्चाष्टमोऽधम ॥ —मनु० ३।२१ (२५)

३ अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्या दान विशिष्यते —मनु० ३।२४,२५।

को प्रार्जित करने का अवसर दिया जाता था। [1] राक्षस एवं पिशाच विवाह निकृष्ट कोटि के एवं निन्दनीय समझे गये हैं।

ऋग्वेद से स्पष्ट होता है कि उस समय सभ्यता के विकास के साथ ही विवाह-सम्बन्धी नियम सुदृढ़ होगये थे और स्त्री-पुरुष के स्वच्छन्द एवं प्रकृत सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। इसके पूर्व भाई और बहिन अर्थात् एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न स्त्री और पुरुष मे यौन सम्बन्ध की प्रथा प्रचलित रही होगी। ऋग्वेद का यम-यमी सम्वाद इस बात का संकेत करता है। समाजगत नियम को तोड़ने में अपनी बहिन यमी से प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करने में यम धर्म-संकट का अनुभव करता है। [2] ऋग्वेदीय समाज मे विवाह के सम्बन्ध निर्धारण आदि नियमों के साथ ही धार्मिक कृत्य के रूप मे अनेक प्रकार पद्धतियों का भी प्रचलन प्रारम्भ होगया था। इनमे प्राजापत्य विवाह की पद्धति सर्वमान्य एवं शाश्वत सिद्ध हुई है। इसमे पिता अपनी कन्या को वस्त्र—आभूषणो से सजा कर आवश्यक संस्कारों के निर्वहन के पश्चात् वर को सौंप देता है। कन्यादान अथवा पाणि-ग्रहण संस्कार उक्त भावना के अन्तर्गत विवाह के पर्यायवाची के रूप मे प्रचलित होगया है।

शास्त्र और रीति-रिवाज

आजकल हिन्दुओं में प्रचलित विवाह-पद्धतियों मे जहाँ तक शास्त्रीय परम्परा से विवाह का प्रश्न है ऋग्वेद काल से चली आने वाली प्रथाएँ किसी न किसी रूप मे विद्यमान हैं। मालवा में प्रचलित विवाह का जो पौरोहित्य कर्म है, उसमे शास्त्र की परम्परा का अक्षरशः पालन किया जाता है। ऋग्वेद-कालीन विवाह संस्कारों के साथ प्रत्येक युग में विभिन्न जातियों ने भारत की विवाह-पद्धति पर अपने संस्कारों की जो छाप छोड़ी है उनका प्रभाव इन आचारगत रूढ़ियों मे देखा जा सकता है। शास्त्रीय परम्परा के पालन के साथ ही लोकाचार का महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मनु याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने भी लोकाचार की मान्यता प्रदान की है। वंश अथवा कुल की परम्परा एवं जातिगत आचारों का संस्कारित रूप ही संस्कारों के रूप मे स्वीकृत होकर शास्त्रीय विधान की वस्तु बन गया है। अनेक रीति रिवाज एवं मान्यताएं कई जातियों के सम्पर्क मे आने से परिवर्धित हुई हैं। आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार शास्त्रों की लकीर पर चलने के लिये जन-समुदाय अपने को बाध्य नहीं समझता। समाज विकास की प्रारम्भिक स्थिति में विवाह एक सिविल कन्ट्राक्ट के रूप मे विद्यमान था। यह सम्बन्ध विनिमय कभी-कभी स्त्रियों की कमी के कारण आदान प्रदान की भावना से

---

१ क्रियति योषामर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसावार्येण।
भद्रावधूर्भवति यत्सुपेशा स्वयं सामित्रम् वनुते जने चित्॥ —ऋग्वेद १०।२७।१२।

२ महत्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो, धर्तार उर्विया परिख्यन्। १०।१०।२
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम। १०।१०।४
नास्त्वा भ्राता पतिमूरवा जारो भूत्वा निपद्ये। १०।१६२।५।

लेकर चलता था। आज भी लडकी देना और उसके बदले मे अपने परिवार के युवा सदस्य के लिये लडकी मागने की प्रतिबन्धात्मक प्रथा अनेक जातियो मे प्रचलित है। मालव मे इस प्रथा को 'आटा साटा' कहते हैं। इसी तरह प्राजापत्य विवाह का आदर्श भी आज कुप्रथा मे परिणित होगया है। ऋग्वेद काल का वर अपने ससुर से स्वर्ण एव पशु आदि दान के रूप मे, पुरस्कार के रूप म प्राप्त करता था।[१] किंतु आज यह प्रथा दहेज के रूप मे विस्तृत होकर समाज के लिये अभिशाप सिद्ध हो रही है।

हिन्दुओ के विवाह मे प्रचलित लौकिक आचारो की सख्या इतनी अधिक होगई है कि इस काल के लोकाचारो की सख्या नगण्य सी लगती है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल ८५ वा सूक्त (सूर्या और सूर्य से विवाह प्रकरण मे) तत्कालीन विवाह सस्कार एव रिवाजो पर प्रकाश डालता है। उस समय केवल पाच लोकाचारो मे विवाह हो जाता था।

१ वर यात्रा — वर पक्ष के लोग कन्या-पक्ष वालो के यहाँ इष्ट - मित्र और परिवार के लोगो को साथ लेकर जाते थे।

कन्या का शृंगार — कन्या मागलिक स्नान करती है वस्त्र–विन्यास और सुन्दर वस्त्र एव आभूषणो से सज्जित हो, वरण पाश' बांधकर विवाह के भोज के लिये तत्पर रहती थी।

प्रीतिभोज — वर पक्ष का सत्कार भोज देकर किया जाता था। इस आतिथ्य के सम्बन्ध मे गौ मांस के प्रयोग का उल्लेख आया है।[१]

अग्नि प्रदक्षिणा — विवाह के उपलक्ष मे दिये गये भोज के पश्चात् यज्ञ-मण्डप मे वर-वधू को लाया जाता था। अग्नि-पूजा, सोम रस निचोड,

हस्त मिलन — वर-वधू का हाथ पकड कर अग्नि प्रदीप्त यज्ञ-कुण्ड के चारो ओर परिक्रमा करता था। इस आचार मे आज की प्रचलित दो प्रथाए छिपी हुई हैं। १ हथ–लेवा। २ फेरा [सप्तपदी]

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम्॥ — ऋक् १०, ८५, ७।

(१) सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत — ऋक् १०, ८५ १३।

(२) — ऋक् १०, १७, १।

(३) अघासु हन्यते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते — ऋक् १०, ८५, १३।

(४) सोमं मन्यते पपिवान् यत्संपिषन्त्योषधिम् — ऋक् १०, ८५, ३।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः — ऋक् १०, ८५, ३६।

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् — ऋक् १०, ८५, ३९।

५ वर का स्वगृह प्रस्थान एव आशीर्वचन — अग्नि परिणय के पश्चात् वर धूमधाम से वधू को पालकी या अन्य किसी वाहन पर बैठा कर चल-समारोह के साथ अपने घर की ओर प्रस्थान करता था। वर के घर वधू का स्वागत किया जाता था। और वयोवृद्धो द्वारा दीर्घायु एव पुत्र-पौत्र वती होने का उसको आशीर्वाद दिया जाता था। आशीर्वचन के समय वधू-दर्शन की प्रथा का सकेत भी मिलता है। [1] आजकल इस प्रथा को मालवा में 'मुँह दिखाई' कहते हैं। वधू अपने पति के परिवार के लोगो का चरण स्पर्श करती है और परिजन घूघट में छिपे वधू के मुख को देखने के लिये आग्रह करते हैं। वधू को मुख दिखाई में आभूषण या रुपये पुरस्कार के रूप में दिये जाते ह।

रामायण-काल तक विवाह सस्कार के लोकाचारो का अधिक विस्तार होगया। उपरोक्त पाच लोकाचारो का विकास लगभग बीस की सख्या तक पहुँच गया। रामायणकालान विवाह सस्कार को स्थूल रूप से दो भागो में वर्गीकृत किया है —
१ वैवाहिकी २ समुद्वाह। वैवाहिकी [2] में दो प्रकार के सस्कार हैं —

वैवाहिकी

(१) प्रारम्भिक औपचारिक कृत्य		(२) मूल सस्कार (विवाह)
१ वर प्रयण ❀	प्रथम दिवस	१ वधू निष्क्रमण (मण्डप में आगमन)
२ सीमतपूजन +		२ वधू गृह आगमन
३ वशावलि-कथन ×		३ वदीकरण

---

(५) गृहान्गच्छ गृहपत्नीयथासो वशिनी त्व विदथमा वदासि। ऋक् १०, ८५, २६।

१ सुमगलीरियम् वधूरिमा समेत पश्यत
सौभाग्यमस्य दत्वायाथास्त वि परेतन — ऋक् १० ८५, ३३।

२ रामस्य लोकरामस्य क्रिया वैवाहिकीं विभो

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड अध्याय ७३ श्लोक १६। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्डमें अध्याय ६६ से ७३ तक तत्कालीन वैवाहिक लोकाचारोंका वर्णन है।

❀ वरप्रेषण—१ विवाह के लिये वर के पिता के पास दूत भेजना, यह कन्या पक्षकी ओर से विवाह का प्रस्ताव है—
प्रथम देया मया सीता वीर्य शुल्का महात्मने —वा० रा० बालकाण्ड ६६ ११।१२।

+ सीमन्त पूजन—वर पक्ष के लोगों का स्वागत।

× वशावली कथन—वशिष्ठ द्वारा इक्ष्वाकु वश-परम्परा का वर्णन है (वर पक्ष)
—वा० रा० बालकाण्ड ७०।२० से ४५।

४ वर वधू की गुण परीक्षा, द्वितीय दिवस ४ अग्नि-सस्थापन
५ वाग्दान | ५ होम
६ नादी श्राद्ध | गोदान, तृतीय दिवस ६ कन्या-दान
७ पाणि-ग्रहण पचम दिवस
८ अग्नि-परिणयन
६ जनवासा

समुद्वाह शब्द विवाह के पश्चात् वर के घर पर किये जाने वाले मागलिक कार्यों के लिये प्रयुक्त हुआ है। जिसमें निम्नलिखित लोकाचार प्रमुख हैं —

१ वधू का पति-गृह प्रवेश, २ वधू प्रतिगृह,
३ होम, ४ देवकोत्थापन।

शास्त्र और नारी का रूढ़ि-शास्त्र

रामायणकालीन विवाह पद्धति एव लोकाचारो की सागापाग परम्परा मालव में आज भी प्रचलित है। उपरोक्त पद्धति मे ब्राह्मण, देव, आर्ष एव प्राजापत्य इन चारो पद्धतियों का सम्मिश्रण हो गया है। स्त्रियों द्वारा मान्य रूढ़िगत आचारों मे असुर एव राक्षस विवाह का प्रभाव आज तक बना हुआ है। यहाँ आज का विवाह सस्कार शास्त्र और नारी का रूढ़ि-शास्त्र इन दोनो का सम्मिश्रित नवीन रूप है। आज अनेक रूढ़ियाँ [illegible]नत युग के सार असंगत एव अशिष्ट प्रतीत होती हैं, किन्तु इनका पालन किए बिना [illegible]क का विवाह सम्पन्न होना बड़ा कठिन है। मालवी स्त्रियो की कट्टर रूढ़ि प्रियता के [illegible]रण आज के शिक्षित नवयुवको को भी बहु-रूपिया बन कर सतरे नाच नाचने पड़ते हैं। [illegible]कभी वधू के श्रीमुख के दर्शन होना सम्भव है। शास्त्र द्वारा प्रतिपादित एव नारियो के [illegible]रा लोकाचार की आधार भूमि पर स्थित विभिन्न रूढ़िगत प्रथाओ का यदि वैज्ञानिक [illegible]वचन एव इतिहास के प्रकाश में देखें तो अनेक रोचक बातें ज्ञात हो सकती हैं। सबसे [illegible]ले विवाह मे सम्पूर्ण आयोजन की अवधि पर विचार करना आवश्यक है। शास्त्रो मे [illegible] मागलिक कार्य के लिए दिनो की कोई निश्चित सख्या निर्धारित नही है। ऋग्वेद कालीन [illegible]वाह समारोह मे कितने दिन लगते थे इसका पता नही लगता। किन्तु रामायण काल मे [illegible]वाह विधिवत् पूरे पाँच दिनो में सम्पन्न किया जाता था। विवाह आनन्द, मनोरजन [illegible]र परिवार के लोगो से मिलने का एक अपूर्व अवसर भी समझा जाता है। मध्य-युग [illegible] यातायात के साधन बैलगाड़ी या अश्व-यान तक ही सीमित थे तब सुदूर बसने वाले [illegible]म्बन्धियों का जीवन में बार-बार मिलना संभव नही था। जन्म, परण एव मरण जैसी

२ निमि वश-परम्परा का वर्णन (गद्य पद्य) वही ७१।३ से २०। वशावली कथन में यह भावना निहित है कि श्रेष्ठ एव समान प्रतिष्ठा वाले परिवारों में ही सबध सम्भाव्य है सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशो दातुमर्हसि, वही ७२।२१।

[illegible] नान्दी श्राद्ध—स गत्वा निलय राजा श्राद्धकृत्वा विधानत। वही, ७२।२१।

महान् घटनाओं पर ही सब सगे सम्बन्धी एवं इष्ट मित्र मिल सकते थे। अतः विवाह के कार्यों का पूरा क्रम पूजा, गीत, नृत्य एवं उदार गोष्ठियों की धूम धाम के साथ २१ दिन से लेकर लगभग एक दो महिने की अवधि तक आयोजन, जातिगत मान्यता एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से वांछनीय समझा जाता था। द्वितीय महायुद्ध के पहिले यही स्थिति थी। अब तो पांच-या सात दिनो मे ही विवाह के पौरोहित्य आनुष्ठानिक एवं लौकिक आचार आदि के कृत्य पूरे कर लिए जाते हैं। समयाभाव के कारण विवाह के शास्त्रीय विधि विधान में काट-छांट भी हो सकती है किन्तु नारियों के लोकाचारों को किसी भी स्थिति में टाल देना सम्भव नहीं है। विवाह से सम्बन्धित लोकाचार एवं रीति रस्मों की सूची निम्न प्रकार है

प्रथम श्रेणी

१ चाक नोतना २ छोटा बन्याक ३ बडा बन्याक
४ टीका ५ धोळी कलश ६ माणक थम्भ
७ तणी बाधना ८ उकडी पूजन ९ रातजगा
१० गिरे सातग ११ तेल पान १२ हल्दी-पीठी
१३ मायरा १४ वर निकासी १५ टूंट्या
१६ हथलेवा १७ होम (लाजा होम) १८ सप्तपदी (फेरा) अग्नि प्रदक्षिणा
१९ वर-वधू की प्रतिज्ञा २० हथलेवा छूटना
२१ कन्यादान (दहेज) २२ बिदाई (कन्या को जनवासे तक पहुँचाना)
२३ बाणनो रोकई (वर पक्ष के जमाई के द्वारा मार्ग अवरोध)
२४ कँवर कलेवा २५ भात (विवाहका भोज) २६ देवी देवताओंका पूजन
२७ काकड डोरा २८ पासा खेलना
२९ कपास बीनना ३० वर को मेहदी लगाना ३१ पलग फेरा
३२ पीला नारियल देना (विदाई की आज्ञा का सूचक)
३३ देली पूजा (वधू द्वारा पितृ-गृह की देहरी पूजन)।

द्वितीय श्रेणी

१ बड बदउ २ लगन भेजना ३ समेलो
४ तेल पान ५ पडला भेजना ६ कन्याका मागलिक स्न
७ कन्या की शृङ्गार सज्जा ८ वर का तोरण पर आ
९ तोरण मारना १० कामण (जादू टोने)
११ झिर-मिर आरती से वर का स्वागत १२ वर का वधू-मडप प्रवे
१३ माय माताका पूजन १४ गठ बन्धन
१५ मगलाष्टक विधान १६ मेहदी पीसना।

तृतीय श्रेणी

१ बउबदाना (वधू का स्वागत)
२ बाएानो गेकई (बहिन द्वारा नव विवाहित भाई से पुरस्कार मागना)
३ रातजगा
४ देवी-देवताओ का पूजन
५ कांकड डोरा छोडना
६ पामा से खेलना
७ मुँह दिखाई (वधू दर्शन)
८ सुहाग रात
९ माय माता उठाना

उपरोक्त लोकाचारो को विवेचन की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। प्रथम श्रेणी में उल्लिखित लोकाचार एव अनुष्ठान केवल वर यात्रा और ढूँढ्या को छोडकर वर एव कन्या प ा वालो के यहा समान रूप से आयोजित होते हैं। इन लोकाचारो को विवाह का पूर्वार्द्ध कहा जा सकता है। विवाह का आरम्भ गणपति-पूजा एव स्थापना से होता है ।

छोटा वन्याक

बन्याक शब्द विनायक का अपभ्रश है। विनायक ऋद्धि और सिद्धि के स्वामी माने गये है। विवाह में सब कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जावें इसलिये गणपति को पहिले निमत्रण दिया जाता है। [१] ऋग्वेद एवं रामायण काल मे विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर गणपति पूजन की प्रथा प्रचलित नही थी । शिव, गणपति आदि देवता आर्येतर जातियो की देन हैं। अत ऋग्वेद में इनका उल्लेख नही है। भारतीय आर्यों ने अनार्यों की लौकिक परम्परा को अपनाकर शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया है। विवाह के पूर्व गणपति की दो बार पूजा की जाती है । प्रथम पूजा और स्थापना को छोटा बन्याक कहते हैं। गणपति के पूजन की औपचारिक विधि तो पुरोहित आकर सम्पन्न करता है किन्तु स्त्रियाँ इस अवसर पर लोक के साकार प्रजापति का भी सम्मान करती हैं। मानव के शरीर घट का निर्माण करने वाला ब्रह्मा हो सकता है किन्तु मिट्टी के घड़े का निर्माता तो परजापत कुम्भकार ही हैं। स्त्रियाँ विनायक की स्थापना के पूर्व कुम्हार के यहां जाकर उसके चाक की पूजा करती है। यह प्रथा 'चाक-नौतना' कहलाती है । स्त्रियों की इस प्रथा की सार्थकता और महत्व को प्रदर्शित करने के लिये दार्शनिक भावभूमि पर आधारित अनेक तर्क प्रस्तुत किये जा सकते है । चाहे स्त्रियां स्वय सार्थकता से अनभिज्ञ हों। कुम्हार अपने चक्र [चाक] के द्वारा अनेक घटो का निर्माण करता है। वंश परम्परा के चक्र को निरन्तर घूर्णित करने के लिये ही विवाह का आयोजन

---

१ १ गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे प्रियनान्त्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधानान्त्वां निधिपतिं हवामहे। यजुर्वेद,
२ विद्यारम्भे विवाहेच प्रवेशे निगमे तथा सग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।

होता है। विवाह प्रजनन व प्रतिष्ठा के महान आयोजन के श्रीगणेश के पूर्व स्त्रियाँ ब्रह्मा की समता करने वाले लौकिक प्रजापति को नहीं भूल सकती हैं। उनका पूजा का पूजना अनिवार्य है। फिर कुम्भकार द्वारा निर्मित मृत्तिका के घट का मांगलिक कार्यों में बड़ा महत्व है। विवाह के सम्पूर्ण कार्य में इन घटों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। अतः घट निर्माता का स्वागत उपयोगिता की दृष्टि से भी वांछनीय हो जाता है। विवाह-कालीन अवधि में स्त्रियों को तीन बार कुम्हार के यहाँ जाना पड़ता है।

१ छोटे बन्याक के दिन चाक पूजन एवं मंगल कलश लाने के लिये।
२ बड़े बन्याक के दिन मंगल घट लाने के लिये
३ धाळी कलश लाने के लिये
(लग्न के दिन वर-पक्ष के लोग भी कुम्हार के घर जाकर चवरी के लिये मृतिकाघट लाने की आवश्यकता पड़ती है।)

बड़ा बन्याक

विनायक पूजन और चाक नोतना के पश्चात् वर पक्ष द्वारा के विवाह समारोह को प्रारम्भ करने का प्रथम दिवस माना जाता है। चाक-पूजा के पश्चात् वर या वधू को हल्दी आदि का उबटन लगाकर मांगलिक स्नान कराया जाता है। और गण पति की पूजन होता है। इस प्रथा को 'बाना बठाना' कहते हैं। यह विवाह की अवधि का प्रतीक है। लग्न होने की तिथि और बड़े बन्याक में सुविधानुसार ५, ७ अथवा ११ दिन का अन्तर रहता है बड़े बन्याक के दिन से विवाहगत लौकिक आचारों में तेजी आजाती है। उत्साह की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। विनायक-पूजन के पश्चात् वर और वधू का विवाह-कंकण बाँध जाते हैं। इस दिन वर पक्ष के यहाँ पर निकासी तक एवं कन्या-पक्ष के यहाँ तोरण की विदाई तक परिवार के तथा बाहर के आमन्त्रित अन्य सम्बन्धी भोजन करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य में मंगलाचरण के शास्त्रीय नियम का पालन करने के पश्चात् कलश-स्थापना का कार्य करने का विधान है। जल से परिपूर्ण आम्रपल्लवों से युक्त कलश भारतीय कला और संस्कृति का पुरातन चिह्न है। मंगल विधायक कृत्यों के पश्चात् गिरे सातग (गृह शान्ति) के लिये आवश्यक धार्मिक कर्म पुरोहित द्वारा मातृका पूजा नवग्रह पूजन एवं हवन आदि के साथ सम्पन्न होता है। विवाह के मूल संस्कार से इसका सम्बन्ध नहीं है। निर्विघ्नता से कार्य पूरा हो सके इस दृष्टि से विनायक पूजन की तरह वर और कन्या दोनों के विवाह के अवसर पर ग्रह शान्ति करना भी लोकाचार में सम्मिलित होगया है। 'तणी बाधना' एवं 'माणक थंभ' आदि प्रथाओं में उत्तर वैदिक-काल के यज्ञ मंडप की छाया स्पष्ट होती है। विवाह के लिये वैदिक युग में यज्ञ मण्डप का निर्माण किया जाता था। फल और पुष्पों का विपुल वितान मंडप की शोभा को द्विगुणित कर देता था। दस दिग्पालों के दस ध्वज स्थापित किये जाते थे। विवाह का यज्ञ मंडप शिल्प चातुर्य का एक उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करता है।[१]

[१] देखें, कुण्ड सिद्धि पृष्ठ १५ एवं २८।

आजकल प्राचीन आदर्शों के अनुकूल मण्डप का निर्माण प्रायः नहीं हो पाता। विद्युत लट्टुओं के प्रकाश की जगमगाहट ही मण्डप की शोभा बढ़ाने के लिए युगानुकूल हो सकती है। प्रकृति के साहचर्य से विछिन्न नगर निवासियों को अब तो आम्र एवं कदली केवल परम्परा निर्वाह की वस्तु बन गये हैं। ग्रामीण क्षेत्र में आम के पत्तों व फूलों से विवाह के मण्डप को सजाने की प्रथा भी विद्यमान है किन्तु वैदिक परम्परा के मण्डप का प्रतीक अब 'तणी बांधने' की प्रथा में जीवित रह गया है। 'तणी' शब्द वितान का पर्यायवाची है। वितान की जगह अब किसी कमरे की छत के नीचे मूंज (मोंजी) एक नाड़े (रंगीन मंगल-सूत्र) तान दिये जाते हैं। चार दिशाओं के प्रतीक रूप में फल प्राप्ति के स्थान पर प्रत्येक कोने पर पीले वस्त्र-खण्ड में सुपारी एवं अक्षत आदि की छोटी पोटली बांध दी जाती है। पास ही ईशान कोण में गेरू के रंग से पुता हुआ 'माणक खम्भ' प्रस्थापित किया जाता है जो मंडप के स्तम्भों का प्रतीक है। इस माणक खम्भ को सम्पन्न लोगों के यहां काष्ठ शिल्प की चतुराई से सजाया जाता है। जहां शुक, मयूर आदि पक्षियों की रंगीन शोभा काष्ठ में सजीव हो जाती है। रूढ़ परम्परा में ही सही, आज का हिन्दू प्रकृति एवं पशु पक्षियों के प्रति अपना सद्भाव प्रकट कर देता है। जैसे अग्नि परिणयन के लिए यज्ञ-मंडप का निर्माण कन्या के घर पर ही होना चाहिये। किन्तु तणी एवं माणक-खम्भ विवाह मण्डप का प्रतीक बन गया है और मांगलिक दृष्टि से वर और कन्या दोनों के यहां इस प्रथा का निर्वाह होता है। विवाह के पूर्व लोकाचारों में 'रतजगा' एवं 'लकडी-पूजन' आदि आनुष्ठानिक महत्व रखते हैं। तेल पान एवं हल्दी-पीठी मांगलिक स्नान के प्रतीक हैं। 'मायके' की प्रथा सामाजिक दृष्टि कोण लिये हुए है। ये लोकाचार गीतों में संलग्न है। अतः इनका विस्तृत विवेचन गीतों के प्रसंग में किया गया है।

द्वितीय श्रेणी के लोकाचार कन्या के घर वर-पक्ष के पहुँचने के पश्चात् प्रारम्भ होते हैं। इनमें शास्त्र और रूढ़ियों का समन्वय है। 'बड़-बडउ' में वर-पक्ष का जमाई कन्या के यहां एक नाई को लेकर बारात के आने की सूचना देता है। वर-पक्ष के प्रतिनिधियों का कन्या के घर पर स्वागत होता है। सम्मेला वर एवं कन्या-पक्ष के कुटुम्बीजनों का सम्मेलन है। उक्त दोनों प्रथाएं रामायणकालीन सीमन्त पूजन का अवशेष है। पडला वधू के लिए वर पक्ष की ओर से भेजे जाने वाली शृङ्गार सामग्री एवं मांगलिक वेश भूषा है। 'तेल पान' लोकाचार वर-पक्ष के आवास स्थान पर कन्या पक्ष की सौभाग्यवती महिलाओं द्वारा किया जाता है। यह लग्न के पूर्व मांगलिक स्नान का सूचक है। सम्मेलन एवं स्वागत के पश्चात् वर पक्ष के लोग दल सहित कन्या के घर तोरण प्रमुख द्वार पर पहुँचते हैं। विवाह मण्डप में पदार्पण करने से पूर्व वर द्वारा शत्रु के निमित्त तोरण का तलवार या कृपाण से स्पर्श किया जाता है। तोरण मारने की इस रूढ़ि में राक्षस विवाह की स्मृति छिपी हुई है, जहाँ कन्या के पितृ गृह पर आक्रमण कर बलात् कन्या का हरण कर लिया जाता था। तोरण मारने के पश्चात् वर का स्वागत किया जाता है। सप्तदीपों से प्रदीप्त झिलमिल आरती के द्वारा कन्या की माता द्वारा वर का अर्चन किया जाता है। इस प्रथा का वैदिक स्वरूप वरार्चन था। जहाँ कन्या पक्ष की ओर से मंडप में आगत हुए प्रधान अतिथि अर्थात् वर का स्वागत किया जाता था। आसन, पाद्य (पैर धोने के लिए जल)

भावनीय एवं खाने के लिए थोड़ा मधुपर्क (दही और घी मिला हुआ नहीं) प्रदान किया जाता था।[1] स्वागत के समय कन्या पक्ष की स्त्रियां वर पर रामपण अर्थात् जादू टोना करती हैं। इसके पश्चात् कन्या के गृह में प्रवेश करने के लिए कन्या की माता अगवानी करती है। वर और वधू मण्डप की मायमाता, कुल देवों का पूजन की जाती है। इसके अनन्तर नारियों की रूढ़ियाँ एवं लोकाचार की परिभाषा समाप्त होकर अग्नि-परिणयन आदि शास्त्रोक्त विधियों में विवाह का मूल कृत्य प्रारम्भ होता है। मधुपर्क, हस्तमिलन, अन्तःपट लाजाहोम सप्तपदी एवं कन्यादान की शास्त्रोक्त विधियों के सम्पन्न किए जाने के पश्चात् अग्नि प्रदक्षिणा (फेरा) आदि कृत्य पुरोहित द्वारा सम्पन्न होते हैं। हतलेवा छूटने के समय कन्या पक्ष की ओर से स्वर्णादि के आभूषण कन्या दान के साथ दिये जाते हैं। इसके पश्चात् वधू को वर के साथ जनवासे तक पहुँचाने के लिए कन्या पक्ष के लोग जाते हैं।

लग्न के दूसरे दिन के सब कृत्य लोकाचार में सम्बन्धित हैं। 'भात' विवाह का प्रीतिभोज है। कहीं कहीं पर विवाह के पहिले भी एक सामूहिक भोज होता था, जिसे कुँवारा भात कहते हैं। इसकी परम्परा ऋग्वेद काल से मिलती है। कांकड़ डोरा छोड़ना, पासा खेलना एवं कपास आदि बोनना लोकाचार का परस्पर-समंजन का परिवर्तित रूप मान सकते हैं। जहाँ शारीरिक स्पर्श भावना से हृदय समंजन या मैत्रीकरण की चेष्टा का प्रारम्भ होता है। अनुकूलता प्राप्त करने की यह विधि औपनिषदिक कालीन विवाह के अवसर पर पाणिग्रहण एवं कन्यादान के पहिले सम्पन्न की जाती थी।[2] किन्तु लोकाचार में विवाह हो जाने के पश्चात मनोरंजन की दृष्टि से कन्या एवं वर के यहाँ इसका आयोजन होता है। कन्या की विदाई पीला नारियल देकर मेहरी पूजन के साथ की जाती है। विवाह के उत्तरार्द्ध के संस्कार वर के घर पर होते हैं। वधू का स्वागत एवं वधू प्रतिग्रह की प्रथा 'बड़ बन्दौ' एवं 'दागना रांदई' के लोकाचार में निहित है। वधू दर्शन आदि का उल्लेख किया जा चुका है। मायमाता आदि देवताओं के उत्थान की प्रथा रामायण काल के देवकोत्थापन के समान ही है।

सगाई

विवाह की पृष्ठ भूमि पर कन्या पक्ष की ओर से सम्बन्ध निश्चय के सकल्प से तैयार होती है। बात पक्की करने के लिए कन्या पक्ष का व्यक्ति वर के यहाँ प्रस्ताव भेजता है। रामायण में इस प्रथा को वर प्रेषण कहा है। बात पक्की हो जाने पर किसी भी शुभ दिन कन्या का पिता या प्रतिनिधि वर के घर पर जाकर तिलक कर भेंट-स्वरूप 'रुपया' नारेल दे देता है। मालव में वर प्रपण की यह प्रथा 'रुपया नारेल भेलने' के नाम से प्रचलित है। बाद में वर-पक्ष की ओर से सुविधानुसार कन्या को ओढ़नी (चूंदड़ा) देकर खोल भरने का लोकाचार किया जाता है।

---

१ डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, पृष्ठ १५२।

२ वही।

⊛ रुपया नारेल भेलाना — कन्या पक्ष के प्रस्ताव का सूचक है।
⊛ ओढ़नी ओढ़ाना — वर-पक्ष की ओर से स्वीकृति का परिचायक है।

वर और कन्या के पक्ष द्वारा सम्पन्न उपरोक्त दोनों लौकिक आचारों के पूर्ण होने को सगाई कहते हैं। इस प्रथा का शास्त्रीय नाम 'वाग्दान' भी प्रचलित है। सगाई के पश्चात् विवाह के प्रारम्भिक कृत्यों से समाप्ति तक लोकाचारों का एक विस्तृत जाल फैला हुआ है।

सगाई के गीत

वर और कन्या-पक्ष की ओर से विवाह के लिए सगाई सम्बन्ध निश्चित हो जाने के पश्चात् कन्या के यहां से वर के लिए उपहार-स्वरूप वस्त्र, आभूषण आदि प्रेषित किये जाते हैं। इस प्रथा को 'टीका' कहते हैं। टीके में सम्पन्न लोग वर के परिवार की महिला सदस्या के लिए 'वस', पूर्ण वेश भूषा (दुपट्टा, चाली घाघरा आदि) भी भेजते हैं इसमें निकटवर्ती सम्बन्धी अर्थात् वर की माता, बहिन, काकी, मामी, मौसी, भुआ (फूफी) के लिए उक्त 'शकुन साधना' आवश्यक माना जाता है। वधू के लिए वर की ओर से प्रेषित वस्त्र और अलंकारों को 'चौढी (चीरडी) चढ़ाना' कहते हैं। यह लोकाचार रिवाज के अनुसार विवाह के पूर्व ही हो जाना आवश्यक है किन्तु वर पक्ष की ओर से यथा समय शान की प्रतिष्ठा के अनुकूल बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण आदि की व्यवस्था नहीं होने पर लग्न होने के कुछ घंटे पूर्व ही आभूषण आदि दे दिए जाते हैं। सगाई के समय गाए जाने वाले गीतों को साजन 'कहते' हैं। इस अवसर के सभी गीतों का प्रारम्भ 'साजन' शब्द से होता है। अतः गीतों का नामकरण भी 'साजन' के रूप में सार्थक है।

साजन शैली के गीतों में पारिवारिक प्रतिष्ठा, कुल का अभिमान, सम्पन्नता का गर्व और विवाह के मांगलिक कार्य करने की प्रसन्नता, कन्या के पिता द्वारा वर को देखने की आकांक्षा आदि भाव प्रकट हुए हैं।[1] कुछ गीतों में कन्या की माता की मनोदशा का बड़ा मार्मिक वर्णन है। सम्बन्ध निश्चित हो गया है, कन्या की सगाई हो गई है। उसका विवाह भी शीघ्र हो जावेगा और माता का बेटी से विछोह होगा। इस संभावित विरह की कल्पना के कारण माता का हृदय कसक उठता है। 'साजन' के गीतों में निम्नलिखित गीत अधिक लोकप्रिय है 'म्हारी राजल बेटी क्या हारिया ?' माता को बड़ा दुःख है कि राजकन्या के समान पालित-पोषित कन्या को पराये घर जाना पड़ेगा। विवाह संबंध में कन्या-पक्ष के लोगों को ही वेदना से अधिक ग्रस्त होना पड़ता है। जीवन के खेल में अनेक वस्तुएं हमें हारकर देना पड़ती हैं। धन, सम्पत्ति आदि के चले जाने पर हमें उतना कष्ट नहीं होता किन्तु हृदय के रस से पालित, वात्सल्य का मूल आधार कन्या भी साथ छोड़ कर चली जावे, यह स्थिति माता के लिए असह्य हो उठती है परन्तु वह विवश है। समाज के सनातन नियमों का प्रतिकार करना तो उसके लिए संभव नहीं। हाँ, उसके हृदय का उभार भाव गाथा में बह कर थोड़ा हल्का अवश्य हो जाता है —

१ मालवी लोक गीत, पृष्ठ ७२ से ७४, गीत को २, ४।

साजन समुदर का तेने पेने पार, साजन खेले सोवटा
साजन कुण हार्‌या, कुण जीतया ? हारया हारया लाडी का बाप
* सायवा जीतया घर में बउ लाडी बोल्या बाल
हारतां हारता काकडिया रो खेत म्हारी राजल बेटी क्यो हारया ?
हारतां हारता म्हारा डाग मायका गेनडा म्हारी राजल बेटी
हारता हारतां चार भुवन का लोग म्हारी राजल बेटी
हारता हारता सगता जणामे बोलडी म्हारी राजल बेटी क्यो हारया ?

प्रियतम ने समुद्र के इस पार पास फेंके साजन पासे मे कौन हारा और कौन जीता ? कन्या का पिता हार गया और वर का पिता जीत गया। लडकी के पिता को हारा हुआ देखकर गृह स्वामिना (कन्या का माता) बोल उठी, मेरे *प्रियतम ग्राम की* सीमा के सब खेत हार जाते, चारो भवन के लोगो को हार जाते, जाति के सब लोगों के समक्ष अपने वचन भी हार जाते किन्तु मेरी राजदुलारी बेटी को क्यो हार गये ? मातृ हृदय के इस शाश्वत प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता किसी भी पुरुष में नही हो सकती।

साजन के गीता में इसी तरह मातृ-हृदय के उद्वेलन के अनेक शाश्वत चित्र अंकित हुए हैं।

विनायक (विनायक) एव चाक नीतने के गीत

विनायक के गीता में उनका महिमा-गान के साथ विवाह के शुभ कार्य के लिए विभिन्न व्यक्तियों के रिये यहाँ जाने का उल्लेख किया गया है। विवाह म निम्न लिखित व्यक्तियो का सहयोग आवश्यक है। प्राय सभी मागलिक गीता मे इनके यहाँ जाने का आग्रह किया गया है।

१ जोशी — ज्योतिषी के यहाँ जाने का प्रयोजन है विवाह के लिए शुभ-लग्न का मुहूर्त निश्चित करना।

२ बजाज — वधू के लिये सुन्दर वस्त्र खरीदना। विशेषत पहला जो वधू की मागलिक वेश भूषा है।

३ सुनार — वधू के लिए अच्छे-अच्छे अलंकार प्राप्त करना।

४ माली — पुष्प मालाएँ एव गजरे भी वधू के शृंगार के लिए आवश्यक हैं।

५ तमोली — अधरों के रंजन के लिए ताम्बूल प्राप्त करना भी वाञ्छनीय है।

६ गन्धी — इत्र आदि सुगन्धित पदार्थ प्राप्त करने के लिए।

७ मोची — वर वधू के लिए जूतियों को भी मागलिक वेश भूषा में सम्मिलित कर लिया गया है।

---

* नाम विशेष।

उपरोक्त सात व्यवसायियों का उल्लेख अनेक गीतों में प्राप्त होता है।[1] कुछ गीतों में हलवाई [मिठाई बेचने वाला] एवं साजनियों के यहाँ जाने के लिए आग्रह किया गया है। किन्तु परम्परा के गीतोंमें हलवाई के यहाँ जाने का उल्लेख नहीं मिलता। लोकाचार एवं शकुन की दृष्टि से सात व्यक्तियों के नामों का उल्लेख वर यात्रा आदि के गीतों में भी हुआ है[1] उपरोक्त प्रवृत्तियों से युक्त विनायक का गीत इस प्रकार है।

चालो गजानन जोसी के चाला, आछा आछा लगन लिखावा
गजानन जोसी के चालाँ, काठा रे छज्जे नोबत बाजे
नोबत बाजे, इन्दर गढ गाजे झनन् झनन् झालर बाजे गजानन
चालो गजानन बजाजी के चालाँ आछा आछा पडला मोलवाँ, गजानन
चालो गजानन सोनीडा के चालाँ आछा आछा गेनडा मोलावाँ, गजानन

(क्रमश माली, तम्बोली, गंधी एवं माची के यहा जाने का उल्लेख कर गीत आगे गाया जाता है)

उक्त गीत की परम्परा में राजस्थान और मालवा भिन्न दिखाई नहीं पडते। यह संभव है कि मेवाड और मारवाड से आई हुई जातियाँ इस गीत को अपने साथ लाई हों और यहाँ उसकी भाषा का मालवीकरण होगया। यही गीत राजस्थान में भी प्रचलित है। भाव एक हैं, केवल भाषा का अन्तर होगया है।[2]

कुम्हार के यहाँ चाक की पूजन कर स्त्रियाँ मंगलघट लेकर, जब घर आती हैं तो मार्ग मे निम्नलिखित गीत गाया जाता है।

के म्हारी बई घड्या रे सुनार, के तमारे सचे उतारियाजी
नीं वो म्हारी बे मायड्यो रे सुनार, नीं म्हने सचे उतरियाजी
घडियो घडियो काय कोजी
जामण माय रूप दियो करतार, थोडा थोडा जोसिडा तेडावो
तो घणा घणा गोतिडा बुलावा जी, जोसिडा तो लगना मिलावे
वरद उजाले गोतिडा जी, थोडी थोडी कुँवासियाँ तेडाव
घणी घणी कुल बउ वा बुलावो जी, कुँवास्या तो घर आमणा री सोभ
वरद उजाले कुल-बउ , कुल बउ ने घुगरी जिमाव
कुल-बउ ने चूनडी ओढाव, कुल-बउ बंस बढावे जो ११७१

कुम्हार के यहाँ का चाक पूजन और उसके यहाँ से प्राप्त मंगल घट की दार्शनिक पृष्ठ भूमि गीत में स्पष्ट है। भारतीय संस्कृति के धार्मिक-अनुष्ठान, पूजा एवं अन्य मांगलिक कार्यों मे घट-पूजन की महत्ता का उल्लेख हो चुका है कि यह घट हमारे

१ देखें, बना-बनी, घोडी एवं वर यात्रा के गीत।
२ राजस्थान के लोक गीत, पृष्ठ ११३, गीत क्रमांक ५६।

जीवन घट का प्रतीक है। इसे सृष्टि विधाता ब्रह्मा ने घडा हैं। गीत मे प्रश्न किया गया है कि इस शरीर घट को इतना सुन्दर रूप देकर किसने निर्मित किया ? क्या सुनार ने इसे साचे म ढाला ? उत्तर मिलता है कि इस मानवी शरीर को न तो साचे म ही ढाला गया और न सुनार ने ही घड बन कर बनाया। माता के गभ मे विधाता ने इसके रूप का निर्माण किया है। गीत में अभिव्यक्त जीवन संबधी दार्शनिक चिन्तन की महत्ता एव अर्थ-वैभव से गीत की गायिका महिलाए चाहे अपरिचित रहें किन्तु सांस्कृतिक एव दार्शनिक-चेतना का यह परम्परागत प्रवाह मालवा की नारियो के द्वारा अक्षुण्ण रखा गया है। गीत के उत्तरार्द्ध मे ज्योतिषी को लग्न लिखने के लिए बुलाया है और गोतिया, सगोत्री कुटुम्बी जना को विवाह म आमन्त्रित करने की भावना प्रकट की गई है। गोतिया के बिना विवाह जसा मांगलिक कार्य सपन्न भी कैसे हो सकता है। इनके द्वारा तो शुभ कार्य वरद परिपूर्ण होता है। परिवार का गौरव बढ़ता है। परिवार के लोगो के अतिरिक्त विवाह म कुमारी कन्याओ का भी मांगलिक दृष्टि से महत्व है। कुंवारी अविवाहिता कन्याए भी आमन्त्रित होती है, इनसे घर और आगन की शोभा बढती है। गीत क अन्त म कुल वधू का भी आमन्त्रित करने का भाव है। क्या कि इसके द्वारा ही वंश की परम्परा आगे बढती है।

विवाह क अन्तगत चाक नातने के प्रसग में सृष्टि की उत्पत्ति-कर्त्री शक्ति-युगल की महिमा का गान्तर भारतीय प्रवृत्ति का सूचक है। गुजराती लग्न गीता मे भी चाक बधावे के गीता क अन्तगत धरती का मगल-मय जनन भावना क साथ गाय घोडा की सृजन-शक्ति एव माता तथा सास की भी वन्दना की गई है। क्या कि कन्या का तो माता न जन्म दिया और सास न अपने सुपुत्र का जन्म देकर उस कन्या को पति प्रदान किया।

> धरतीमा बळ सरज्या बे जणा एक धरती बीजो आभ वधावो रे आविया
> आभे मेहुला वरसाविया, धरतीए झील्या छे भार वधावो
> धरती मा बळ सरज्या बे जणा, एक घोडी बीजी गाय वधावो
> गाय नो जायो रे हले जुत्यो, घाडी नो जायो परदेश वधावो
> धरती मा बळ सरज्या बे जणा एक सासु बीजी मात वधावो
> माताए जनम ज आपीओ सासुए आप्यो भरथार वधावो[1]

भावना की दृष्टि स यह गुजराती गीत अधिक सुन्दर है। स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी ने इसे सृजन महिमा का स्तोत्र कहा है।

हल्दी और तेलपान के गीत

चाक नातने क दिन म ही वर और वधू नाना को प्रतिदिन हल्दी आदि का उब टन लगाकर स्नान कराया जाता है। यह मांगलिक स्नान है। वर को वर-निकासी क दि

---

१ चूंदडी भाग, पृष्ठ ४१५।

तक एव वधू को लग्न होने तक पीठी लगाई जाती है। हल्दी का प्रयोग शरीर के वर्ण सौन्दर्य को निखारने की दृष्टि से किया जाता है। हल्दी की पीठी लगाकर वर को प्रति दिन नाई स्नान कराता है। और कन्या को सुहागिन महिलाएँ हल्दी लगाती हैं। हल्दी का लगना [पीठी का चढाना] वर और वधू [लाडा–लाडी] बनने का सूचक है। पीठी लगाते समय स्त्रियाँ मगल भावना सूचक गीत गाती हैं —

हल्दी गाठ गठिली हल्दी रग रगिलो, निपजे बालू रेत मे
या तो हल्दी मोलावे लाडा का समरथ दादा जी,
माता सुवागण बाई हल्दी केवटे
या तो हल्दी मोलावे लाडा का समरथ काका जी,
काकी सुवागण बाई हल्दी केवटे ११४८

हल्दी के बालू रेत मे उपजने, समर्थ दादा, काका, आदि परिजनों द्वारा उसका क्रय करने और मागलिक कार्य के लिये सुहागिन काकी, माभी द्वारा तैयार करने का उल्लेख है। तेल के साथ हल्दी मिलाकर शरीर पर मर्दन किया जाता है। वर या वधू के शरीर पर वर्ण निखार के लिये सामान्यत हल्दी का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि केसर और कस्तूरी जैसे बहुमूल्य के पदार्थ तो सर्व-सुलभ होते नहीं। भावना मे ही केसर और कस्तूरी का तेल मे मिलाने की कल्पना तो की जा सकती है —

सुण सुण रे इन्दोर्‌या का तेली, सुण सुण रे उज्जीण्या का तेली
घाणी म पील केसर ने कस्तूरी यो तो तेल लाड लडा के अग चढसी
यो तो तेल ज गोत बडा के अग चढसी, दमडा वाला दादा जी भर लेसी
देल्यॉं म्हारा माता बई कर लेसी, सुण सुण

[काका, मामा आदि नामो के साथ गीत-विस्तार]

उज्जैन या इन्दौर के तेली को आदेश दिया गया है कि घानी मे केसर कस्तूरी पील कर तेल तैयार करें। वह तेल अधिक लाड-प्यार मे पोषित वर [या वधू] के अग पर लगाया जावेगा। अंग पर तेल लगाने को 'तेल चढ़ाना' कहते हैं। सौभाग्यमयी स्त्रियाँ वर के मस्तक से पैर तक पाच या सात बार हाथों से आचल लेकर घुमाती हैं। यह सुदुर स्पर्श अग पर तेल चढ़ने का प्रतीक मान लिया जाता है। कन्या के यहाँ पहुँच जाने पर जनवासे में भी वधू पक्ष की सुहागिन महिलाओं द्वारा तेल चढाने का लोकाचार किया जाता है। इस प्रस ग पर गाये जाने वाले गीतो म मृदुल भावनाए प्रकट हुई हैं। सभव है किसी का हाथ अधिक कठोर हो और वर या वधू के कोमल शरीर पर खुरदरे हाथो का स्पर्श वाछनीय भी नही है। अत तेल चढाने के लिये सप्त के पुष्प की कोमल पंखुडियो का प्रयोग ही उपयुक्त है।

उपरोक्त विविध शब्दों के अतिरिक्त मालवी नारी ने अपने प्रियतम के चरित्र को आंशिक रूप से उद्‌घाटित कर अपने हृदय की विभिन्न भावनाओं को प्रदर्शित किया है। प- के लिये निम्नलिखित उपमामयी अभिव्यक्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

१ सासूरा जाया	२ बाई जी रा वीर
३ सेजा रा सरदार	४ ढोल्या रा उमराव
५ निंदालू बालमा	६ कन्ता सूरज [1]

'सासूरा-जाया' एव 'नणदल का वीर' आदि विशेषताओं से अपने प्रियतम को सम्बोधित कर मालवी नारी अपनी आकर्षण विहीन एव विवश परिस्थिति मे पति को मा और बहिन के पुनीत सम्बन्ध की याद दिलाकर विलग न होने की कामना प्रकट करती है निंदालू बालमा का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है। वह पत्नी की प्रेम भरी भावनाओं की ओर ध्यान न देते हुये वह निद्रागस्त हो जाता है। कन्त को सूरज की उपमा देना भी स्पष्ट है प्रियतम के अभाव में नारी का जीवन अधकारमय हो जाता है। प्रिय को सेज का सरदार बना देना नारी मानस की काम-तृप्ति की स्वीकारोक्ति है। सौंदर्य एव प्रेम की सुवास से आपूर्ण पति के लिये दिये गये दो उपमान विशेष उल्लेखनीय हैं।

१ हरिया बागा का केवडा	२ सायबा मेरा बाग का चम्पा [2]

---

१ क हो सासूरा जाया बाई जी रा बीरा, मुखडे बोलो क्यो नी रे ? —३।६२
  ख सेजा रा सरदार ढोल्या रा उमराव, छज्जा उप्पर मोर नाचे —३।७८
  ग याजू रैवो म्हारा कता सूरज, म्हाकी मिरगाणैनी झूरेजी —३।७६

२ क ओ पिया जी म्हारा हरिया बागा का केवडा
  सायबा जावा नी देवाजी राज —१।२१८
  ख — ३।६८

(इ)

मालवी लोक-गीतो में रस-प्रतिष्ठा

- लोकगीत एव लोक-सगीत
- लोकगीतो मे भावो का शास्त्रीय पक्ष
- वात्सल्य, मातृ हृदय की एक अभिव्यक्ति
- सयोग और वियोग शृ गार की भाकी
- करुण एव हास्य के प्रसग

लोकगीत एव लोक-संगीत

लोकगीतो में शब्द एव भाव सौन्दर्य की अपेक्षा कण्ठ से निसृत स्वर एव भाव-ध्वनिया का विशेष महत्व है। लोकगीतों की मौखिक परम्परा में जिन गीता का अस्तित्व भाज विद्यमान है उसका कारण है श्रवण रुचिर स्वर-लहरिया का आकर्षण। जिन गीता की गायन शली अधिक सरल एव मधुर होती है उनका प्रभाव जन मानस पर निरतर बना रहता है। सवेदनशील मानव हृदय के भाव सहजत जब मुख स अभिव्यजित होते हैं, स्वर एव लयबद्ध हो जाने के पश्चात् एक निश्चित 'धुन' गेय-पद्धति मे प्रकट होते हैं। इन लोक-धुना की सख्या अनत है। भारत के प्रत्येक जनपद मे जितने भी लोकगीत प्रचलित हैं उनकी विशेष धुन हैं। ये लोकधुनें निसर्ग सिद्ध हैं। इन्हीं लोकधुना म भारतीय सगीत क अनेक राग छिपे हुए हैं। शास्त्रीय सगीत एव विभिन्न राग रागनिया का विकास लोक धुना में व्याप्त स्वरा पर आधारित है। मालवी एवं राजस्थानी लोकधुना को लेकर शास्त्रीय सगीत के क्रमिक विकास का अध्ययन करने में कुमार गन्धर्व न विशेष प्रयास किया है। उनकी खोज के आधार र अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शास्त्रीय सगीत का विकास लोकधुना में गत है। लोकधुनो मे शास्त्रीय सगीत का ज्ञान होता है। कुछ नई धुनें ऐसी भी हैं जिनके रा नवीन रागा का निर्माण किया जा सकता है।[1] लोकधुनों में से राग के मूल स्वरा को कर राग रागनिया का निर्माण कर प्रदेश एवं जनपद विशेष की गान-पद्धति पर उनका

---

1 देखें, कुमार गन्धर्व का लेख, भारतीय सगीत का मूलाधार लोक सगीत, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अक —पृष्ठ ३१२।

नामकरण करना भी इस बात का सिद्ध करता है कि मान्धार संगीत का आधार लोक-संगीत ही है। आधुनिक समय में प्रचलित राग रागनियों में सोरठ गा धारा मालवा, मुल्तानी, बंग भरवा सिंध भरवा एवं गौड सारग प्रादि जनपदीय लोकधुनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुमार गन्धर्व ने लोकधुनों की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं —

१ चार पांच स्वरों में सीमित (साधारणतः)
२ लयबद्धता
३ लय के अनेक प्रकार इन धुनों में प्राप्त होते हैं
४ लोक धुन के स्वर समय के अनुरूप होते हैं
५ सरलता
६ धुन रचना प्रसंगानुकूल होती है
७ एक धुन में अनेक गीत गाये जा सकते हैं।[1]

मालव जनपद के लोक-संगीत में भी प्रेम भक्ति, मधुरता करुणा एवं उल्लास आदि मानव-जीवन की अनेक भावनाएँ तरंगित हुई हैं। मालव की लोक धुनों का प्रतिनिधित्व करने वाला मालव राग यद्यपि आज प्रचलित नहीं है फिर भी इस राग के अस्तित्व का इतिहास मालव के लोक संगीत की स्मृति को उभार देता है। तेरहवीं शताब्दी में मालव राग का प्रचलन था। जयदेव के गीत गोविन्द में इसका संकेत मिलता है।[2] दाक्षिणात्य संगीत के विचार पाण्डुरि के सोमनाथ ने १११ जानरंजक रागों की सूची में मालवी (५१) और मालव (९१) का उल्लेख किया है।[3] आज मालव में प्रचलित लोकगीतों में संगीत की जो अभिव्यक्ति है, वह भावनाओं के उद्रेक के साथ रस की सृष्टि करने के लिए पर्याप्त है। सुख दुःख एवं मान ‍ उल्लास के भावों को प्रकट करने वाले लोकगीतों के द्वारा संगीत की स्वर माधुरी के सहारे रस उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। मालवी लोकगीतों की निम्नलिखित धुनें विशेष आकर्षक हैं —

गीत की प्रथम पंक्ति	प्रसंग	भाव-सृष्टि
१ नाना कावडिया रे वीर जल भर लायो सोरम घाट को।	तीर्थ यात्रा, गंगाज	हर्ष, प्रियजन के पुन मिलन का उल्लास,
२ भारी भलकती आवे जम्बू उबराती आवे।	,, ,	प्रतिष्ठा का गर्व, धर्म भावना

१ वही, पृष्ठ ११२।१४
२ मालव रागयतितालाभ्यां गीयते—सर्ग ७ प्रबन्ध १३।
३ देखें डा० श्रीकण्ठ शास्त्री का लेख, तेरहवीं शताब्दि का दाक्षिणात्य संगीत, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अंक) पृष्ठ ३३०।

ल्हाने लादी हूँ, तो दीजो हो, नन्दलाल कु वर न्हावता भूमर म्हारी गम गई।	प्रभाती, तीर्थ-स्नान के लिये जाते समय गेय	धर्म भावना
ले लोटयो बउ न्हावा चाली सासु मु मचकोडयोजी राम नाम सिरी कृष्ण जी।	"	"
ननद बाई बरजो मती म्है ता बसीवाला से खेलू गी फाग।	फाग	माधुर्य भावना
६ उदियापुर से सायबा भाग मगाय अब थे घोटो हो केसरिया सायबा भागडी हो राज।	उद्यान गीत	दाम्पत्य जीवन का सौख्य, प्रेमभाव की उद्दामता।
७ जी सायबा खेलन गई गणगौर अबोलो म्हा से नी सरे जी म्हारा राज।	गणगौर का गीत	वियोग जन्य भावना, मिलन की आकांक्षा।
८ कई रे जुवाब करु रसिया से दल बादल बीच चमके तारो साझ पडे पिउ लागे जी प्यारो।	उद्यान गीत	प्रणय का आकर्षण, सौन्दर्य गर्व का स्खलन
९ चालो गजानन जोसी क्या चाला।	विवाह, विनायक-पूजा	मगल-भावना एव मागलिक आयोजन का उल्लास।
१० म्हारी राजल बेटी क्यो हारया?	विवाह (वाग्दान)	वात्सल्य एव करुण, उल्लास एव निराशा का मिश्रण।
११ वीरा गिरधरलाल वीरा मदन गोपाल।	विवाह (मायरा)	पारिवारिक गर्व
१२ बीरा रमा झमा से म्हारे आजो।	"	"
१३ गाडो तो रडक्यो रेत मे रे गगना उडे रे गुलाल।	"	"
१४ कृष्णजी घुडलो पलानिया बई रुक्मण हुआ असवार।	विवाह (विदाई)	अवसाद एव करुण भाव।
१५ ओ सासू गाल मति दीजे।	"	वात्सल्य एव करुण
१६ धरम तमारा ए नार पति की सेवा करा।	विवाह (गालगीत)	नवीन धुन

१७ गाडी भरी चंगेरडी श्रो बउ थे कठे चाल्या श्राज।	शीतला-पूजन	पुत्र कामना, बन्धयत्व की लांछना से उत्पन्न क्षोभ, ग्लानि एव करुणा।
१८ गौरी का ढोला फेर मिलागा रे मनडो हालरियो।	ऋतु गीत	उल्लास और छेडछाड

लोकगीतों में भावों का शास्त्रीय पक्ष

भारतीय साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने मानव जीवन की विभिन्न अनुभूतियो के आधार पर हृदय की अनन्त भावोर्मियो का मन्थन कर सार रूप मे स्थायी भावो की व्यापक एव चिरन्तन सत्ता को स्वीकार किया है। इन स्थायी भावो से ही विभिन्न रसो की असख्य भाव-लहरिया मे तरगित होकर मानव हृदय उद्वेलित होता रहता है। किन्तु वासना रूप में जो भाव हमारे अन्त करण मे निहित हैं वे ही प्रदीप्त होकर रसमग्न करते हैं। यह रस आनन्द की अभिव्यक्ति है और उसका पहिला विकार अहकार है। उससे ममता या अभिमान पैदा होता है एवं इसी ममता या अभिमान से रति अर्थात् प्रेम प्रकट होता है। वही रतिभाव पुष्ट होकर शृ गार रस की स्थिति धारण करता है। हास्य आदि उसी के अनेक भेद हैं। रतिभाव सत्वादि गुणो के विस्तार से राग, तीक्ष्णता, गर्व और सकोच इन चार रूपो में परिणित होता है। राग से शृ गार, तीक्ष्णता से रौद्र, गर्व से वीर एव सकोच से बीभत्स रस की उत्पत्ति होती है[1]। इस प्रकार मानव हृदय में अनेक भावो की सत्ता को स्वीकार करते हुये भी शृ गार के स्थायी भाव रति को भारतीय आचार्यों ने मुख्य एव आदि-भाव माना है और इसी से उत्पन्न अन्य विकार विभिन्न भावो का स्वरूप धारण करते हैं। काव्य एव लोकजीवन का मूलाधार रति भाव ही ठहरता है। पश्चिम के मनोविज्ञान शास्त्रियो ने भी जीवन की मूल प्रेरक शक्ति सेक्स को ही माना है। स्त्री और पुरुष की सहज आकर्षण शील चित्तवृत्ति रति जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे अभिव्यक्ति होकर मनुष्य को जीवित रखने, स्वय का अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देती रहती है। मनुष्य के सामाजिक जीवन में बंध जाने के पश्चात् दाम्पत्य के रूप मे रति भाव के विकसित एव अभिव्यक्ति होने में अनेक अनुभूतियो से युक्त मनोदशाओ का स्फुरण और लोप होता रहता है। लहर के समान

---

१ आनन्द सहजस्य व्यज्यते सकदाचन
आद्यस्तस्य विकारो योऽहकार इति स्मृत
ततोऽभिमानस्तत्रेद समाप्त भुवन त्रयम्
अभिमानाद्रति साच परिपोषमुपेयुषी
तद्भेदा कामभिनरे हास्याद्या ह्यनेकश
रागाद्भवति शृ गारो रौद्रस्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते।

उठने और एक दूसरे में विलीन हो जाने वाले भावों को सचारी की सज्ञा दी गई है । उनकी सख्या यद्यपि ३३ निर्धारित की गई है किन्तु जीवन की विशाल एव आदि अत से परे की शाश्वत सत्ता में मानव हृदय की उर्मिल वृत्तियों की संख्या एव उनके स्वरूप का निश्चित रूप से ज्ञान लेना किसी भी मानस शास्त्री के लिये सम्भव नही हो सकता ।

लोकगीतो में जीवन की अनन्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का व्यापक स्वरूप मिलना कठिन है । काव्य शास्त्र के आचार्यों ने नव रस के विभिन्न उपागों का विस्तृत विवेचन कर जो सूक्ष्म विभेद एव विविध मनोदशाओ का विश्लेषण प्रस्तुत किया है उसके आधार पर लोकमानस के भाव-सौन्दर्य को परखने का प्रयास भी नही किया जा सकता । साहित्याचार्यों द्वारा श्रृंगार आदि के वर्णन के लिये जिन सीमारेखाओं का निर्धारण किया गया है वह काव्य का परम्परा में रूढ हो गया है । फिर नारी हृदय के भाव, आवेग आदि पुरुष कवियो द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं । उनमें स्वाभाविकता का समावेश होना भी सम्भव नहीं । केवल बाह्य चेष्टाओ का देखकर ही नारी के मानस में उद्वेलित होने वाली भावनाओ का अकन कर लेना पुरुषो की मनोरम कल्पना का परिचायक अवश्य हो जाता है । किन्तु इसमे नारी-मन के सहज-सौन्दर्य की अनुभूतियो का यथार्थ चित्र नही मिल सकता । स्त्रियों की अतृप्त कामनाएँ एव कुचली हुई मनोकाक्षाओ का आवेग लोकगीतो में खुलकर प्रकट हुआ है । इसी तरह यौवन की उमगो में डूबते इतराते नारी हृदय की विरहजन्य यतनाएँ भी बडी चुभती हुई हैं । जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण काव्य-ग्रन्थो में सम्भव नही, वह लोकगीतो की ही वस्तु है ।

लोकगीतों में श्रृंगार एव इसके सहयोगी हास्य और वीर रस मे आपूर्ण चित्रो का ही विकास है । रौद्र, वीभत्स एव भयानक रसो के प्रादुर्भाव के लिये लोकमगल की भावभूमि में कोई स्थान नही है । अद्भुत रस केवल बाल प्रवृत्ति का सूचक है । अत बालको के गीतों में दो चार स्थलों पर विस्मय पूरित अद्भुत रस के हल्के छींटे देखने को मिल जावेंगे ।*
शान्त एव करुण रस को लोकगीतो में अधिक महत्व नहीं दिया गया है । भक्तिभावना के गीतों मे शान्त रस के दर्शन अवश्य हो सकते हैं किन्तु स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो द्वारा गेय भजनों एव पथीडा के गीतो में ही इसका प्रभाव अधिक परिलक्षित होगा । स्त्रियो के गीतो में व्यक्त भावना का श्रृंगार के अन्तर्गत ही समावेश होगा क्योकि वहाँ सौभाग्य कामना ही सबसे प्रबल है । श्रृंगार के अन्तर्गत वियोग की पूर्वानुराग एव करुण (मरण) की स्थितिया का चित्रण भी सम्भव नही है । लोक-लज्जा एव सामाजिक नियमो की बाध्यता के कारण पूर्वानुराग की स्थिति उत्पन्न हो ही नही सकती । पति का सदा के लिये वियोग होना वैधव्य की स्थिति का सूचक है और लोकगीतो के मागलिक पक्ष को प्रकट करने वाली सौभाग्य की

* आम्बा मे ताम्बो रे, केरिया मे खजूर —१।६।३
आम्बो चाल्यो लाम्बो रे, डाल पडी गुजरात — १।६।२

माराधिका नारी के हृदय मे ऐसी भयावह एवं अमंगलसूचक मानना निसन भी कैसे हो सकती है ? केवल सती के गीता के प्रसंग म एवं पारिवारिक कलह के कारण किसी गृहिणी की मृत्यु की घटना को लेकर करुण भावो की यत्र-तत्र अभिव्यजना हुई है।[1]

शास्त्रीय दृष्टि से शृ गार रस की अभिव्यक्ति का शास्त्रिक स्वरूप मानवी लोकगीता में देखने को अवश्य मिल सकेगा। प्रकृति, कर्म एवं अवस्था की दृष्टि से भारतीय काव्यशास्त्र म नायिका के अनेक भेद एव उपभेद मान लिये गये हैं। वय भेद की दृष्टि से लोकगीतों की नायिका का उल्लख नही हो सकता। रति प्रगल्भा नायिका का एकाघ उदाहरण अवश्य मिल जाता है।[2] दशानुसार प्रस्तुत की गई नायिका के चारो स्वरूप अन्य समोग दु खिता, मानवती, प्रम-गर्विता एव सौन्दर्य-गर्विता के चित्र की छाया भी इन गीता मे देखी जा सकती है।[3] प्रकृति के अनुसार मालवी लोकगीता के नायिका का बडा ही विचित्र स्वरूप है। स्त्री की प्रकृति का परिचय देने वाले शब्दा के उल्लेख से ही उनके भेद माने जा सकते हैं। बांगड, जैलू, मालवी नायिका क विशेष भेद हैं।[4] इसी तरह भावा की अभिव्यक्ति के आधार पर लोकगीता की नायिका का एक भेद 'देवृकामा' भी हो सकता है। स्वकीया के स्वरूप की अभिव्यक्ति ही मे देवृकाया को छोडकर परकीया नायिका का उल्लेख नही मिलेगा। सौत भी स्वकीया ही मानी जावेगी। सयोग एवं वियोग शृ गार के प्रसग में भावो की मार्मिकता पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। नारी के मातरूप का विवेचन वात्सल्य के अन्तर्गत आ जाता है।

वात्सल्य 'मातृ-हृदय की एक अभिव्यक्ति'

माता के हृदय की उमडती हुई ममता और वात्सल्य का सच्चा स्वरूप लोरिया में प्राप्त होता है। झोपडी से लेकर राजमहलों म जन्म लेने वाले मानव को शिशु के रूप में माता की गोद में, उसक हिय के पालने मे आशा-उमगा की मृदुल-लहरियो से दोलित हो झूलना ही पडता है। सगीत माधुय स सिक्त मात कण्ठ द्वारा उच्चारित लोरिया के स्वरो

---

[1] क नाग के डसने से वधू की मृत्यु का वर्णन —३।८१
ख गृह कलह के कारण नववधू के विप खा लेने का उल्लेख —१।१८६

[2] एक 'झकोरो' दीजो सायवा जापा भरियो डील —२।३२

[3] कैंई रे गुमान करूँ रसियां पे —२।१६
सभी साझ का गया साजन आवे आधी रात —मा० दोहे-१२७
दोया की जोडी भली झक मारे ससार —मा० दोहे-१३१
भँवर म्हारी एडी निरखा तो पनघट आजो म्हारा रे —३।२४

[4] घोडो हिंम्यो रे वागड बडडे चढी —१।१५४
सीतळजी (नाम विशेप) की जेळू पूछे
रे दादा कीको घोडो ? —वही

को माता से पीकर ही तो शिशु मुख की नींद सोता है। सृष्टि के प्रारम्भ मे परिग्रह की व-पत्रशायी शिशु के रूप मे महा भारत की आदोलित लहरियो के झूले पर झूले थे एव मीठी लोरियो का पान करने के लिये ही कौशल्या और यशोदा की गोद में उन्हे आना पडा ।। मानवी लोकगाथा मे वात्सल्य, माता के हृदय म उठने वाली विभिन्न भाव तरगो के रा अभिव्यक्त हुआ है। शिशु के प्रति जो सहज स्नेह है, विशेषकर पुत्र के प्रति वह रिया में प्रकट हुआ है। वात्सल्य की अभिव्यक्ति निम्नलिखित भावनाओ पर आधारित है –

१ शिशु के प्रति मगल की कामना [1]
२ शिशु की वेषभूषा के प्रति आकर्षण [2]
३. शिशु के पोषण म निस्वार्थ भावना का उल्लास [3]

पुत्र के साथ ही कन्या के सम्बन्ध को लेकर वात्सल्य की उद्भावनाए हुई हैं। विवाहित कन्या के पति (जमाई) का जो स्वागत सत्कार किया जाता है एव विशेष ममता र्शित की जाती है वहाँ भी वात्सल्य भावना की प्रधानता है। जमाई के लिये जो स्नेह क्त होता है वह पुत्री के प्रति ममत्व का परिचायक है। जमाई की प्रतीक्षा मे माता के न्य का उल्लास वात्सल्य का स्वरूप ले लेता है।[4] कुछ गीतो म वात्सल्य, शृगार भावना ो साथ लेकर चलता है। बालक की उपस्थिति एव बाल-क्रीडा के आकर्षण मे नारी एक ार विदेश गये अपने पति के वियोग का दुख भी भूल जाती है। सुहावनी रात में पति की मृति अवश्य ही जाग्रत होती है किन्तु शिशु के स्नेह मे प्रिय वियोग की वेदना उभरने नही ती।[5] वात्सल्य में प्रणय का गर्व भी मिश्रित है। पति का वैभव नारी के गर्व को उभारने साथ ही मातृ हृदय मे शिशु के सुख और सौभाग्य के प्रति उल्लास और आत्म-सतोष की ावना प्रेरित करता है।[6] वास्तव मे मातृत्व का एक ऐसा ऋण है जिसे मनुष्य कभी भी

---

१ गुडली गुडली पानी भरु, म्हारा नाना ऊपर लूण करु
लूण करो ने रई रे भई —१।१६

२ नाना की टोपी नित नवी, या टोपी फुदावली
या टोपी मोत्यावाली, नाना का माथे सोवे
मायड मन हरखे, नाना की टोपी गोटा की
गले खु गाली चार सो की —१।२३

३ क हुल रे नाना हुल रे, दूध पतासा पीले रे नाना —१।१७
ख नानो तो म्हारो रायो को, दूध पीये दस गाया को —१।१९

४ ऊची चढू ने नीची उतरु जोऊ म्हारा जमईजी री वाट —१।११

५ नाना का काकाजी दसावरिया गढ गुजरात, माझल रात
नाना की टोपी नित नवी —१।२२

६ नाना भई नाना भई करती थी, रस मे पोळी पोती थी
नाना का बाप ठाकरिया, ठाकरिया करे ठकुराई
नाना भई ऊपर च वर ढुले —१।२५

नही बुझा सकता। नारी के महिमामय स्वरूप मां के आंचल की छाया में पोषित शिशु युवा होकर जब अपनी प्रियतमा नारी के प्रति पुरुष हृदयहीन एवं कठोर हो उठता है तब वात्सल्य के आंचल की दुहाई देकर नारी उसे अपत करती है।[1]

संयोग और वियोग श्रृंगार की झाँकी

संयोग श्रृंगार मे नायक एवं नायिका के मिलन से उत्पन्न दाम्पत्य सुख की विविध मनोदशाओं के चित्र मालवी लोकगीतों में प्राप्त होते है। श्रृंगार से मिलन पक्ष तक के चुम्बन, आलिंगन एवं प्रणय-क्रीड़ाओं का वर्णन स्त्रियों के लोकगीतों में नहीं पाया जाता। इस प्रकार के वर्णन में पुरुषों का ही अधिक रस मिलता है। संकोचशीला एवं लज्जा की गरिमा से विभूषित लोकगीतों की नारी अपने हृदय के वैभव को सस्ती कामुकता पर बिखेरने के लिये कभी तैयार नहीं होगी। यह तो पुरुष ही है जिसने प्रेम एवं विरह की वेदना को स्त्रियों के सिर पर मढ़ कर उसे विलासिता की पुतली एवं काम-क्रीड़ा का एक खिलौना मात्र समझा। रतिभाव की अभिव्यक्तियों में स्त्रियों ने धृष्ठता अथवा वाणी के असंयम का बहुत कम परिचय दिया है। मिलन श्रृंगार के अन्तर्गत युग्म की सुन्दरता पर गर्व, रूप-सौन्दर्य का अह, प्रिय-दर्शन की लालसा एवं हृदय से लगने की कामना के साथ जीवन के व्यवहारिक पक्ष की उपेक्षा भी नहीं की गई है। प्रिय मिलन की आकांक्षा की विन रियों नी जाय स्थान स्थान पर प्रकट हुई है। संयोग श्रृंगार की भावना में रूप-सौन्दर्य का आकर्षण प्रमुख है। नायक और नायिका के मिलन की स्थिति में प्रेम भरे अनेक रमणीय भावचित्रों का सृजन करती है। वियोग के बाद मिलन की आकांक्षा और भी तीव्र हो जाती है। मिलन की प्रतीक्षा के क्षण समाप्त होते ही प्रियतम का सामीप्य वियोग-तप्ता नारी को प्रिय से आलिंगन करने के लिए अधीर कर देते हैं।

राजन्द आया दूर से सतरंज देऊँ बिछाय
सुख-दुख पाछे पूछ जो हिरदा लोनी लगाय

प्रियतम बड़ी दूर से आये हैं सतरंज तो बिछाये देती हूं किन्तु सुख-दुःख आदि के समाचार बाद में पूछना पहिले हृदय से लगा लीजिये न। प्रेम भरे इस आग्रह मे मिलन की प्यास के साथ विरह की कसक भी छिपी हुई है। यह तो मिलन की उत्कण्ठा से आतुर नारी का चित्र है। किन्तु अपने सौन्दर्य के दर्प से गर्वित नारी तो प्रियतम के सम्मुख मिलन की शर्त प्रस्तुत करती है कि धरती का लहंगा आसमान की साड़ी और तारों की कंचुकी यदि ला सकते हो तो मिलने के लिये आना अन्यथा अपने घर पर ही रहना।

---

१ सूरज दुवारथा पालने हिन्दाया आंचला धवाया
रे नव रंगिया ढोला १.९४

धरती को लेगो, आसमान को लुगडो, तारा रो पोलखो सिलावो जी बना
इत्ता होय तो आवो प्यारा बनडा, नी तो रेवो अपने डेरे जी बना [1]

दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग बनाने में नारी की भावना के ऐसे अनेक शाश्वत चित्र मिलेंगे। आकर्षण और अनुरक्ति इन चित्रों के सुदृढ आधार-भित्ति हैं। विशिष्ट का विशेष से मिलना गर्व करने की वस्तु है। उपयुक्त पति मिलने पर नारी का यह गर्व और भी द्विगुणित हो जाता है। उस समय ससार के अन्य आकर्षण उसे स्खलित नहीं कर सकते।

थाके कसूमल पागडी म्हाके कसूमल घाट
दोया की जोडी भलो झक मारे ससार [2]

यदि प्रेमी और प्रेमिका, पति एव पत्नी आपस में ही एक दूसरे के सौन्दर्य पर मुग्ध हो तो विश्व के अन्य सुन्दर एव आकर्षण प्रलोभन फीके पड जाते हैं और नारी का रूप गर्व और यौवन का दर्प आत्मशक्ति के विश्वास के साथ विश्व की कुप्रवृत्तियों को चुनौती भी देता है।

एडी म्हारी चीकणी जैसे सतवा सूठ
ऐसी चालू झूमती रडवा छाती कूट [3]

सतवा सोठ के समान चिकनी एड़ी से नायिका झूमती हुई ऐसी मस्ती भरी चाल से चलती है कि रडवे पत्नि विहीन लोग छाती कूट कर रह जाते हैं। नायिका को अपने सौन्दर्य का गर्व है और सुन्दरता की ओर कुदृष्टि से घूर-घूर कर देखने वालों की प्रवृत्ति के प्रति भी वह सजग है।

नारी मिलन आकाक्षा लेकर शयन-कक्ष मे प्रियतम की प्रतीक्षा करती है। उस समय शृगार सज्जा और सौन्दर्य से प्रियतम को आकर्षित करती है।[4] लोकगीतो की नायिका अत्यन्त चतुर है। सामाजिक बन्धनो के कारण निर्बाध मिलन का अवसर अप्राप्त होने की स्थिति में प्रियतम को बुलाने के लिये वह जो युक्ति प्रस्तुत करती है उसमे भी उसका बुद्धि-कौशल प्रकट होता है। द्वार के निकट ताम्बूल की लता एव आगन मे इलायची के पौधे इस आशा से लगाती है कि ताम्बूल ग्रहण करने के बहाने ही उसको अपने प्रियतम की झलक

---

[1] दोहे, क्रमांक ८६
[2] मालवी दोहे, क्रमांक ८७
[3] वही, दोहा क्रमाक ८६
[4] क घाट कसूमल ओढी ने, मरवण मेला बैठी —१।४१
ख पेचा मे रगलाल लिये, कद की खडी रे बना —१।६३
ग भवर जी काजल निरखो तो, पलग पर आजो रे —३।२४

मिल जायेगा।[1] नायिका प्रणय के व्यवहार में भी अधिक कुशल है। प्रियतम के पास दू
भेजने में चतुराई से काम लेती है। वृद्ध व्यक्ति को प्रणय संदेश के लिये इसलिये नहीं भेजत
कि उसे लोगों का जाना है, यदि बालक को भेजता है तो प्रणय भेद के अज्ञान एवं कौतूह
के कारण उसे हंसी आ जायेगी। इसलिये प्रेम दशा में प्रवीण कृष्ण को ही प्रणय-संदेश क
वाहक बनाने की आकांक्षा प्रकट करती है।[2] प्रेम का पथ वास्तव में कंटकाकीर्ण है। प्रे
का भाग से मानना सहज नहीं है। किन्तु उत्कट प्रेम में सर्वथा मुग्ध रहने वाली नारी
मिलन के अवसर को व्यर्थ ही छोड़ देना उचित नहीं समझती। वह प्रियतम को संकेत करती
है कि प्रेम का संसार निश्चित ही परिमित है। परन्तु प्रणय-पुष्प की स्निग्ध सुगंध इसी उद्या
में प्राप्त हो सकती है। यौवन की मस्ती में इठलाती हुई प्रेमिका अपने प्रियतम को स्पष्ट
संकेत दे देती है कि मिलन का अवसर जीवन में बार-बार नहीं आ सकेगा।[3] मालवी लोक-
गीतों में मिलन, क्रीड़ा, रति एवं छेड़छाड़ के प्रसंगों का सांकेतिक एवं स्पष्ट दोनों प्रकार क
वर्णन हुआ है।[4] प्रिय के समागम की इच्छा, अभिलाषा, शृंगार-सामग्री एवं पर्यंक (शय्या
आदि का उल्लेख भी गीतों में प्राप्त होता है।[5] सम्भोगानन्द की अनुभूति आसमान के तारे
टूटने का संकेत देकर व्यक्त की गई है।[6] बाछड़िया (ग्राम की नर्तकी) द्वारा गेय दोहा।
एकाध स्थल पर सम्भोग एवं उसके पश्चात् की स्थिति का चित्र भी मिल जाता है।[7] प्रकृति

---

१ आगण थोर् एलची पवळे नागर वेल
बोडा मे मिस आवजो —मालवी दोहे ६२

२ मेरा दिल चावे बना, आपसे मिलने के लिये
कहो तो छोरा भेज् कहो तो बुड्डा भेजू
भेज् म्हे कृष्ण मुरार —१।८५

३ अगन बाग मे मगन बगीचा, दाख तले घर मेराजी
नौ सो कलियाँ लूम गई, नारंगी नीचे डेराजी
आवोगा पछतावोगा फिर नईं मिलन का मौका जी —१।१६६

४ क काली काचली मे लीबूडा भक भोर खाये रसियो —३।७७
ख ढोला मारुनी दोई मिल सूता
हेलो किने कई दुश्मन पाड्यो हो राज —१।२१५

५ बीडा काय को मगाया चाबो रसिया
ढोल्या काय को मगाया पोढो रसिया —३।५०

६ बना थाने केसर बरसाई, आसमान का तारा टूट्या
म्हारी तबियत घबरावे —१।१०४

७ ढोल्या रा पाया उजला ढीली पडी रे निवार
साळ ने सलवट पड्या रमुया रे राजकुमार —२।३१

पश्चात् नारी हृदय में प्रदीप्त सगर्भेच्छा [१], प्रकृति में उल्लास लीज [२] एवं खण्डता नायिका ईर्ष्या मिश्रित विषाद आदि भावों की सार्वतिक अभिव्यंजना भी स्पष्ट रूप से की गई है।[३]

शृंगारी कविताओं में प्रेमभाव का विस्तार दिखाने के लिए सौत अथवा किसी स्त्री की कल्पना की जाती है किन्तु लोकगीतों में पति से संबंधित पर-स्त्री अथवा सौत का नारी हृदय की ईर्ष्या भावना का सहज एवं यथातथ्य चित्रण हुआ है। सौत के प्रति भावना में घृणा एवं क्रोध जैसी भावना नहीं है। समाज में एक से अधिक पत्नियाँ रखने कारण नारी के हृदय में क्रोध की अपेक्षा स्वयं का आकर्षणविहीन स्थिति पर क्षोभ भी न हाता है। कहीं-कहीं पर तो नायक के दो पत्नी एवं अनेक पत्नियाँ रखने के उल्लास वर्णन किया है। [४] यहाँ नायक की रसिकता की ओर संकेत करने के साथ ही नारी की उदारताका परिचय भी मिलता है। इस उदारता की भावना में विवशता छिपी हुई। एक से अधिक पत्नियाँ रखने की प्रथा पर तो नारी कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकती इसलिये त एवं स्वयं के प्रति समान व्यवहार करने का निवेदन अवश्य कर सकती है। [५]

प्रेम के संयोग एवं वियोग के पक्ष में नारी का त्याग एवं आत्मसमर्पण सर्वोपरि है। की दयनीय स्थिति में भी वह प्रियतम के प्रति दुर्भावना नहीं रखती पति के सम्मान प्रति मालवी नारी सजग रहती है। [६] पति के लिये सुख के उपादान प्रस्तुत करने के साथ उसको किसी भी प्रकार की आपत्ति अथवा कष्ट से मुक्त रखने के लिये वह सदैव तत्पर ती है। समर्पण मयी नारी के हृदय की विशालता यही है कि पति को वह हर संकट से

१ पाच करण की पिया बावडी पेड्या पेड्या लील
एक झकारो दीजो सायबा जापा भरियो डील —२।३१
२ नई ओढ् रे तेरा दुमाला
३ क कँई रे जुबाब करूँ रसिया से
मेमद को रस रखडी ने लीदो, मेंमद को रस साजन ने लोदो
ख कई रे गुमान करु रसिया पै
क्यो रसिया जी था ने किन विलमाया
तो लोडी का जाता वडी विलमाया —२।१६
४ मनडो हालरियो गोरी का ढोला फेर मिलागा रे, मनडो हालरियो
म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला दो-दो गोरया राखे रे
म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला, तीन-तीन राखे रंगीली रे —३।१२४
५ एक चणा केरी दोय दाल
दोया ने राखो सारखी जी म्हारा राज
साजन कचेरिया छाड दो ने उसाओ नन्द गाव
लोग लुगाया निन्दया करे ले ले थ्हाकी नाम —मा० दाहे १२५

जागता है तो स्वयं को अकेली पाती है। प्रियतम पास नहीं है। इस विरहमयी असह्य स्थिति से तो वह हृदय में कटारी मार कर अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर समझती है।[1] वियोग के क्षणों की भयावह कल्पना से ही नारी का हृदय कांप उठता है। प्रवास के लिये उद्यत प्रियतम को रोक लेने की कामना में वियोगिन नारी का हृदय उभर आता है

> थांजू रेवो जी, म्हाई जी रा वीरा
> म्हारी सासू रा पूत, थांज रे वो जी
> थांजू रे वो म्हारा कन्ना सूरज, द्हारी मिरगानैणी झूरेजी —३।७६

स्त्रियों के लोकगीतों में पुरुष के हृदय में वियोग की आशंका से उत्पन्न त्रस्त एवं खिन्न भावना का चित्रण भी मिलता है। यौवन की भावना में उद्दीप्त प्रेमी-युगल का क्षण मात्र के लिये बिछुड़ना अवाञ्छनीय होता है। नव-युवक अपनी पत्नी की अनुपस्थिति को सह्य होते हुये भी टालने में तो असमर्थ ही रहता है क्योंकि सामाजिक जीवन के व्यवहार में पत्नी को उसके मायके तो भेजना ही पड़ता है। पूर्ण यौवना पत्नी का मायके जाना उसे अखर जाता है और वह मन ही मन तरसता रहता है।[2] वियोग के चित्रण में किसी कल्पित प्रसंग विधान की अपेक्षा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों के कारण नारी मानस की विरह-व्यथा सजीव हो उठी है। मालवी लोकगीतों की विरहदग्धा नायिका की यह व्यथा, सृष्टि के उन सब उपादानों को अभिशाप देती है जिनके आकर्षण में उलझ कर उसका प्रियतम विलग हो गया है।

> आम्बा निरफल जाजो रे, कोयल रीजो बांझ
> बालम बिछड़्या बाग मे, हू ढ़ूंढ़त पड़ गई सांझ —२।६६

करुण एवं हास्य के प्रसंग

लोकगीतों में करुण भावना का प्रसार व्यापक रूप में हुआ है। जीवन की आर्द्रता एवं विशिष्ट रस को लेकर प्रभावित होने वाली इस भाव धारा में निमग्न मानव-हृदय बुद्धि की उस भावना हीन अवस्था को छोड़ देता है, जहां अनात्म भाव के कारण क्रूर-कठोर पाषाण की चिनगारियां चटकती रहती हैं। हृदय को स्निग्ध, कोमल एवं द्रवणशील तादात्म्य की दशा में ले आने की क्षमता के कारण करुण भाव का अधिक महत्व है। मानव जीवन में प्रेम और सुख की अपेक्षा करुण की व्यापक सत्ता और प्रभाव की प्रधानता देखने में आती

---

१ चन्दा म्हारी चान्दनी सूती पलंग बिछाय
   जद जागू जद एकली मरू कटारी खाय —वही ९८

२ सीरो भरियो बाटको, टपकन लागो घी
   गोरी चाली बाप के तरसन लागो जी —मालवी दोहे ९४

।काव्य की तरह लोकगीतो मे भी अनेक मार्मिक प्रसगो को लेकर करुणापूर्ण भावो की ञ्जना हुई है। किन्तु लोकगीतो मे करुणा को उत्पन्न करने के लिये किसी मार्मिक प्रसग या ना का भावोद्वेलन के लिये ग्रहण करने की आवश्यकता नही रहती। नारी मानस जीवन ी अनुभूतियो से आप्लावित होकर अन्य मनोदशाओ की तरह कारुणिक भावो को भी स्व वन गीतों मे व्यक्त कर देता है। करुण की इस अभिव्यजना का आधार हृदय की ोकमयी चित्त वृत्ति है। जो किसी अभाव की पीडा एव असग व्याकुलता के कारण शोक ी चरम अनुभूति के रूप मे करुण को जन्म देती है। मालवी लोकगीतो मे नारी हृदय की रुणापूर्ण स्थिति को उभारने में अभाव की तीन दशाए हैं।

१ पुत्र के अभाव मे उत्पीडन देनेवाली बाह्य एव आभ्यन्तर दशा।
२ पति का अभाव, मरण के पश्चात् की चिर वियोगजन्य दशा।
३ पारिवारिक जीवन मे सुख के अभाव की स्थिति।

पुत्र के अभाव को लेकर इन लोकगीतो मे नारी हृदय की मार्मिक व्यथा के शाश्वत चित्र अंकित हुये हैं। अभागिन नारी मातृत्व की चरम साधना के सुफल को प्राप्त करने मे असफल रहती है तब समाज के द्वारा बाझ जैसे घृणित शब्दो से लाछित और निंदित होने की दुवह स्थिति को टालना उसके लिए असम्भव हो जाता है। परिजनो के व्यग्य बाणो से मर्माहत होने के कारण भी लोकगीतो में करुणा का उद्वेलन हुआ है। करुण के उद्वेलित करने की बाध्य स्थिति लोक निन्दा एव नारीत्व के अपमान से उत्पन्न होती है। आभ्यन्तर स्थिति में उसको स्वय के जीवन के प्रति ग्लानि हो जाती है। नारी जीवन की यह बडी दयनीय स्थिति है कि उसके अस्तित्व की सार्थकता को चुनौती देकर पुरुष अन्य रमणी को सौत के रूप में लाकर उसके गृहिणी पद को समाप्त कर देता है। पुत्र के अभाव के लिये केवल नारी को ही दोष नही दिया जा सकता। किन्तु समाज तो सारा लाछन उसी पर थोपता है। उसकी इस दयनीय, असहाय एव विवश स्थिति मे करुणा उमड पडती है जो गीतो में एक प्रार्थना के रूप मे प्रकट होती है।[१] इस प्रकार के विडम्बनामय जीवन धारण करने की अपेक्षा कुल वधुओ के हृदय में डूब कर मर जाने की इच्छा भी जाग्रत हो उठती है।[२] किन्तु इस प्रकार के भावो का अङ्कन मालवी लोकगीतो में प्राप्त नही होता।

पुत्र के अभाव के अतिरिक्त कन्या की विदाई का प्रसग भी करुण भाव को उद्वेलित करता है। कन्या के वियोग की कल्पना की स्थिति सगाई 'वाग्दान से प्रारम्भ होती है।

---

१ माई एक बालूडो दे
एक बालूडा का कारणे, म्हारा ससुरा जी बोले बोल
एक बालूडा का कारणे सायब लावे लोढी सौक
माई एक बालूडो दे १।१६६

२ गगा ना मोर सासु ससुर दुख नाही नेहर दूरि बसे
गगा ना मोरे हरि परदेस कोखि दुख डूबब हो —कविता कौमुदी भाग ५ प

छठा अध्याय

मालवी लोकगीतों में प्रकृति

[प्र]कृति एवं जन-मानस का तादात्म्य

प्रकृति मनुष्य के लिये सदा से एक रहस्य की वस्तु बनी हुई है। यहा प्रकृति शब्द का [आश]य दृश्य जगत से है। अंग्रेजी का 'नेचर' शब्द प्रकृति के पर्यायवाची रूप मे ग्रहण किया [जा] सकता है। किन्तु भारतीय दृष्टिकोण मे प्रकृति का बडा व्यापक अर्थ लिया गया है। [स]मस्त बाह्य जगत को उसके गोचर इन्द्रिय प्रत्यक्ष की रूपात्मकता और उसमे निहित [चे]तना को प्रकृति माना गया है।[1] यह एक व्यापक परिभाषा है। प्राचीन काल से ही दार्श[नि]क एवं वैज्ञानिक मान्यताओं का मूलाधार रही है। कतिपय यूनानी मान्यताओं के आधार [पर] यूरोप के दार्शनिको ने दृश्य-जगत, (भौतिक प्रकृति) को अधिक महत्व दिया। भारत [ने] उसे एक चेतनामय तत्व एवं विराट पुरुष की प्रतिकृति माना है। सम्पूर्ण बाह्य जगत की [रू]पात्मक सत्ता का कारण है भावमय चेतन प्रकृति जो विश्व की सृजनात्मक शक्ति एवं [पर]म पुरुष की चिर-सहचरी है। भारतीय दृष्टिकोण से मनुष्य भी उसी व्यापक, विराट [चे]तना का एक अंश मात्र है।

प्रकृति एवं जन मानस की एकात्मक स्थिति का अध्ययन करने के लिये वैज्ञानिको के [वि]कास सिद्धान्त एवं भारतीय तथा अन्य आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि-कल्पना एवं सर्वात्म[वाद] की मान्यताओं के प्रकाश में यथातथ्य विश्लेषण करना चाहिये। प्रकृति की सत्ता मानव [के] पंच भौतिक शरीर मे आकर एक चैतन्य स्वरूप धारण कर लेती है जहा मन, बुद्धि और [अ]हंकार की आधार शिला पर मानव के अन्तर्जगत का निर्माण होकर एक ऐसा अमूर्त लोक [प्र]तिष्ठित होता है जो चर्म-चक्षुओ से अग्राह्य होकर भी नश्वर शरीर से परे अपनी शाश्वत [सत्]ता रखता है। भारतीय दार्शनिकों के विचार मन्थन का यह सार तत्व कहा जा सकता [है]। किंतु भौतिक जगत के साथ मानव के मस्तिष्क का विकास क्रम भी विचारणीय है। [अ]ज्ञान की स्थिति में मनुष्य के लिये प्रकृति का वही स्वरूप नहा रह सकता जो उसे ज्ञान की [स्थि]ति में अनुभूत होता है। ज्ञान की विकसित अवस्था मे मनुष्य प्रकृति के सहज-शाश्वत एवं [नि]हित तत्वों को अच्छी तरह पहचान सकता है। प्रकृति के प्रांगण में माता की गोद के समान [ज]ब आदि मानव ने जन्म लेकर अपने चर्म चक्षुओं से प्रकृति को देखा होगा, दृश्य जगत [के] साथ स्वयं के अस्तित्व के सम्बन्ध मे सोचने का प्रथम विचार उसके मस्तिष्क मे उत्पन्न [हु]आ होगा। उस मनोस्थिति का यदि विश्लेषण किया जावे तो मानव के चेतन मस्तिष्क की [प्रा]रम्भिक स्थिति का किंचित् आभास मिल जाता है। मनुष्य ने प्रकृति के सौम्य, सुखद एवं [मा]नव-जीवन के अस्तित्व मे बाधा नही पहुचाने वाले स्वरूप के साथ ही उसके संहारकारी, [भ]यावह एवं रौद्र रूप को देखकर स्वयं की स्थिति का कुछ आभास प्राप्त किया होगा। उसके [फल]त करण में विराट प्रकृति का देखकर भय मिश्रित कौतूहल भावना ने प्रकृति की सर्वशक्ति[मा]न सत्ता के सम्मुख स्वयं की सामर्थहीन सत्ता पर सोचने के लिये विवश किया होगा।

---

1 डा० रघुवंश, प्रकृति और हिन्दी काव्य, पृष्ठ ४।

प्रकृति के अनेक परिवर्तनशील स्वरूप मे मनुष्य ने देवत्व की कल्पना कर अपनी आत्म रक्षा के लिये विविध स्तवन एव पूजापचार का विधान भी रच दिया है। इस प्रकार अपनी चेतना के अनुभव-जन्य आधार पर मनुष्य ने प्रकृति का समझने की चेष्टा की है और प्रकृति के विभिन्न व्यापार, क्रियाकलाप एव नाना रूपो को अपने ही समान देखने और समझने की चेष्टा में ईश्वर का मानवी रूप मे स्वीकार करने एव अवतारवाद की कल्पना भी इसी आधार पर विकसित हुई।

भारतीय दार्शनिको ने विश्व को जड और चेतन रूप में विभक्त कर पच भौतिक तत्वो की स्थापना को स्वीकार किया। काव्यकारो ने भी परम्परागत उक्त दार्शनिक धारा को प्रवाहित किया किन्तु आज का वैज्ञानिक भाव जगत के इस तत्व चिन्तन को तर्क एव सत्य की कसौटी पर उतार कर विश्लेषण करने को तयार नही है। प्राचीन एव मध्य युग का सृष्टि के सम्बन्ध मे जो द्वित्व चिन्तन है वह विज्ञान के प्रकाश मे अब अध विश्वास सा प्रतीत होने लगा है। वर्मे मायावादियो के अनुसार पल पल मे परिवर्तित होने वाली नश्वर विश्व की मा यता म पदार्थवादी वैज्ञानिको के द्वारा सिद्ध इस सत्य का स्थूल रूप देखा जा सकता है कि प्राकृतिक शक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित की जा सकती है। पदार्थ के सिद्धात [1] एव रसायन शास्त्र के चरम विकास न यह सिद्ध कर दिया है कि यात्रिक एव सायनिक शक्ति ध्वनि एव ताप प्रकाश एव विद्युत एक दूसरे के स्वरूप मे परिवर्तित किये जा सकते हैं। ये प्रत्यक्षत विभिन्न रूपो मे दिखाई भी पड सकते हैं किन्तु ये सब एक ही अवित प्रकृति की सर्व व्यापक शक्ति के अश हैं। प्राकृतिक तत्वो का स्वरूप बदल सकता है किन्तु शाश्वत गुण नही बदल सकते।[2] परिवर्तन तो सृष्टि विकास का एक चिर जीवित सत्य है। हमारे चर्म चक्षुओ मे दृष्ट इस विश्व मे परिवर्तन तो होता ही रहता है। हिम को हम पिघलते हुए देख सकते हैं, लकडी भी अपना स्वरूप बदल सकती है पानी ग्रीष्म के चरम उत्ताप में भाप और बादल बन सकता है, लकडी और कोयला जलकर राख हो जाते हैं। परिवर्तन की इन गतिविधियो को हम अपनी स्थूल दृष्टि से देख सकते हैं। किन्तु कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिन्हें हम चर्म चक्षुओ मे देख नहा पाते किन्तु उनमें परिवर्तन तो प्रतिक्षण होता ही रहता है। पृथ्वी और वायु के पदार्थ, हरी-हरी दूर्वा बन जाते हैं। हमारे चारो ओर दृष्टिगत होने वाली प्रकृति मे निरन्तर कभी न रुकने वाला परिवर्तन होकर नवीन स्वरूप का निर्माण तो होना ही रहता है।[3] इस प्रकार ससार के परिवर्तनशील एव विकासमय स्वरूप का सही ज्ञान हो जाने के पश्चात् प्रकृति के परे किसी अन्य सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नही किया जाता। जीव विज्ञान एव डार्विन के विकास सिद्धान्त ने सावयवी जगत सम्बन्धी गुत्थियो को सुलझाकर पुरातन दार्शनिको के द्वारा उत्पन्न वास्तविकता एव आभास, मनस एव शरीर अन्त एव वाह्य, वस्तु एव गुण अनन्त एव शान्त, ईश्वर एव जगत आदि के द्वैतभाव का उन्मूलन कर दिया है। उक्त द्वैत भावना अब काल्पनिक जगत की

---

१ Law of Substence से तात्पर्य है।

२ The Riddle of the universe, pp 208 ff

३ Price and Bruce, Chemistry and Human Affairs, p-13

वस्तु बनकर रह गई। प्रकृति में व्याप्त बाह्य अनेकात्मकता होते हुये भी उसकी एकात्मकता विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुकी है। आधुनिक युग की यह विशेषता है कि उसने द्वैतभाव को विज्ञान की विभिन्न कसौटियां पर परख कर यह सिद्ध कर दिया है कि वस्तु-जगत एव चेतना शक्ति एक ही शाश्वत प्रणाली के दो विभिन्न पहलू हैं। सावयवी सृष्टि का विकास निरावयवी सृष्टि से हुआ है। यह अवश्य है कि पशु-जगत, वनस्पति और पेड़-पौधों में विविध, नाना रूपात्मकता एव वर्ण वैचित्र्य दृष्टिगत होता है, किन्तु यह प्रकृति की विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम है कि विभिन्न रसायनिक पदार्थों का मिश्रण पेड़-पौधे एव जीव जतुओं की भिन्न भिन्न रग-वैचित्र्य पूर्ण सृष्टि का निर्माण कर सके।

विकास सिद्धात की कसौटी पर सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तन करते समय यहाँ भारतीय पुराणकारों की कल्पना की शाश्वत सत्यता पर सहसा आश्चर्य होने लगता है। हिन्दू यह मानते हैं कि चौरासी लाख योनियां मे भटकने के पश्चात् ही जीव को मानव शरीर प्राप्त होता है। बौद्ध जातक कथाओं में भी इस मत की पुष्टि की गई है विकासवाद ने हमे यह बतलाया है कि सृष्टि की निम्नतम जीव(Species)की साधना एव अस्तित्व प्रस्थापन के दुर्धर्ष सघर्ष का चरम प्रतिफलन ही तो मनुष्य ह। पौराणिक कल्पना एव विकास सिद्धान्त का सत्य यहाँ एकाकार होजाता हैं। यह बात अवश्य हैं कि आज का वैज्ञानिक चौरासी लाख जीवो की सख्या की जानकारी तक नहीं पहुँच सका और कुछ लाख तक पहुँच कर ही सीमित रह गया।

स्थूल एव गोचर जगत की सत्ता के पश्चात् आन्तरिक तत्व एव मस्तिष्क की विभिन्न विचार धाराओं के विकास–प्रवाह पर सोचना भी आवश्यक है। इस अन्त सत्ता अथवा चेतन शक्ति को लेकर आस्तिक दर्शनकारो, धर्मगुरुओ और विज्ञानिको मे विरोध उत्पन्न होता है। आस्तिक दर्शनकार किसी अनन्त शक्ति–विश्वेश्वर शक्ति की कल्पना कर उसके अस्तित्व में विश्वास करते है, किन्तु भौतिक शरीर की तरह मानव का मस्तिष्क एव चेतना शक्ति का आधार भी विकास सिद्धान्त पर परखा जा सकता है। जिस प्रकार भौतिक प्रकृति गतिशील है उसी प्रकार मन मस्तिष्क की विचारधारा भी प्रवाह मान एव विकासमय है। विकास का यह क्रम एव अन्तर वनस्पति जगत, प्राणी जगत एव मनुष्य में स्पष्ट देखा जा सकता है। मानव मस्तिष्क की बनावट ही ऐसी है, उसका सेरेब्रम इतना विकसित है, आजका मनुष्य ही नहीं,क्रोमेग्नन् और 'ने अन्डर्थल'का भी कि वह सोच सकता है,विश्लेषण कर सकता है,नवीन रास्ता निकाल सकता है और अनुभवो से शिक्षा ग्रहण कर सकता है, और भविष्य को अनिश्चित छोडना अपने उसी मस्तिष्क की बनावट के कारण उसके लिये मुश्किल है। मानव मस्तिष्क के विकास मे उसके शरीर के दूसरे अगो ने भी पूरी सहायता की है।[1] मनुष्य के मस्तिष्क का विकास पशु एव वन–मानुस और कुत्ते आदि समझदार के मस्तिष्क विकास के आगे की उच्चतर स्थिति है। वन-मानुस एव कुत्ते आदि सामने की वस्तु के प्रतिबिम्ब को देखकर मस्तिष्क से कुछ सोचने की क्षमता अवश्य रखते हैं किन्तु उनका सोचना वर्तमान के प्रकाश में ही होता है। मनुष्य त्रिकाल चिन्तक होता है। पशु प्रकृति के साथ संघर्ष अपने

१ राहुल सांकृत्यायन, मानव समाज, पृष्ठ २१।

वर्तमान केवल वर्तमान अस्तित्व को कायम रखने के लिये करता है और उसके जन्म-जात साधना का इस्तेमाल करता है, किन्तु मनुष्य वर्तमान स्थिति के साथ ही अनुभव-जन्य ज्ञान के कारण भविष्य के लिये भी उपाय सोच लेता है।[1] मानव मस्तिष्क आविष्कारों का अनन्त स्रोत है। उसमें से न जाने कितनी ही वस्तुएं निकली होंगी जो आज की दुनिया में तुलनात्मक दृष्टि से नगण्य भले ही प्रतीत हों किन्तु मानव के मस्तिष्क विकास के इतिहास में उनका महत्व है। आदि मानव के मस्तिष्क से ही आज के अणु-युग के मानव का मस्तिष्क विकसित हुआ है। आज का मानव यद्यपि आदिमानव तो नहीं है किन्तु उसकी आकांक्षाएं आज के मानव में अभिव्यक्त हो चुकी हैं, जिसका बीज आदि मानव के मस्तिष्क में विद्यमान था,[2] और आज भी मानव मस्तिष्क के विकास की यह चरम स्थिति नहीं कही जा सकती। भविष्य की कल्पना हम वर्तमान के आधार पर अवश्य कर सकते हैं। मानव की आकांक्षाओं का स्रोत कहाँ जाकर समाप्त होगा यह कहना कठिन है।

विकास में निम्नस्तर की आकांक्षाओं का पूर्णत्व ही तो ऊपर की सीढ़ी माना जावेगा। निम्नस्तर जीवों (Lower Species) की निहित भावना उच्च स्तर के जीवों में जाकर अभिव्यक्त होती है। मानव का विकास पशु जगत से हुआ है, अतएव पशुजगत एवं मानव की भावना और प्रवृत्तियों में साम्य एवं तादात्म्य होना स्वाभाविक ही है।[3] इस कल्पना को यदि और आगे बढ़ाया जावे तो विकास सिद्धांत के अनुसार अचेतन, जड़ सृष्टि से ही वनस्पति पेड़ पौधे जीव जन्तु पशु पक्षी एवं मानव की सृष्टि का विकास हुआ है। अतः मानव अपनी भावनाओं का उद्रेक करने वाली वस्तुओं को फूल पेड़-पौधे एवं पशु-पक्षी आदि में जहाँ कहीं भी देखेगा उनकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी भावनाओं का उस आधार प्रकारमयी ध्वनि-नादों से समन्वित गतिमान सृष्टि से, प्रकृति से परम्परा प्राप्त एवं जन्मानुगत वासना के रूप में सम्बन्ध निहित है। प्रकृति की ओर जन मानस का आकर्षित होना सहज-वृत्ति ही कहा जा सकता है। जन मानस का प्रकृति से तादात्म्य होता है इसका यही तात्पर्य है कि प्रकृति जहाँ कहीं अपनी उच्चतम आकांक्षाओं को साधना से उच्चतम सौन्दर्यमय रूप में प्राप्त कर रही होगी वहीं जन-मानस का तादात्म्य होगा ही। मनुष्य अपने मानस की भावनाओं का प्रस्फुटन जब प्रकृति में देखता है तब उससे एकात्मकता का अनुभव

---

१ राहुल, विश्व की रूपरेखा; पृष्ठ ३२८-३३१ तक।

२ "The result of earlier stages of development determine development in its later stages."

—हेगेल के द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद के विवेचन के आधार पर।

देखें, History of Modern Philosophy, by Hoffding vol II pp 180 ff.

३ "The Pulses of existence itself beat in our thinking with the same rhythm, more over as every where else"

वही पृष्ठ १८१।

कर लेना उसके लिये स्वाभाविक हो उठता है। किसी हरी-भरी लता की क्रोड में खिलते हुए, मुस्कराते हुए पुष्प की ओर मनुष्य एकदम आकर्षित हो जाता है। यहाँ नयनाभिराम वर्ण-सौन्दर्य अथवा घ्राणेंद्रिय को तृप्त करनेवाली सुरभि ही केवल आकर्षण का कारण नहीं है। पुष्प का अस्तित्व ही स्वयं आकर्षण का विषय बन जाता है। मानव का मन सुमन से एकात्म हो जाता है, मानव मन का भावसुमन बन जाता है। सुमन अथवा पुष्प से तात्पर्य क्या हो सकता है? पुष्प, वृक्ष अथवा लता की जीवन-साधना का सुन्दर सुगन्धित स्वरूप ही तो है जिसमे फल के रूप मे हो उसका विकास अभिव्यक्त होकर बीज के रूप में अपनी शाश्वत सत्ता एवं वंश विस्तार का रहस्य छिपाये बैठा है।

मानव की मानसिक प्रवृत्तियों के विकास का आभास मिथ युग में स्पष्ट हो जाता है। उस समय की मानवीय चेतना प्रकृति के सचेतन क्रोड के मनस की सचेतन स्थिति मे प्रवेश कर चुकी थी[१] और धीरे धीरे प्रकृति के रहस्यों के सममन की ओर जागरूक हुई। इन्द्रिय प्रत्यक्ष अनुभूति के आधार पर पंच ज्ञानेंद्रियों से निसर्ग सिद्ध रूप रंग, रस गंध, ध्वनि-प्रकाश एवं स्पर्श आदि पंच भौतिक तत्वों की ओर आकर्षण हुआ। इन्द्रिय-वेदन की सहज एवं एकांगी वृत्ति का स्वरूप कीटपतंग, भ्रमर एवं मृग आदि जीवधारियों मे देखा जा सकता है। कीट-पतंगो का ज्योति ज्वाल के प्रति, भ्रमर का सौरभ एवं मकरन्द के प्रति, सर्प एवं हरिण का ध्वनि-नाद के प्रति और मछली का स्वर्ण ज्ञान मनुष्य की सहज वृत्तियो की तरह है। अन्तर केवल इतना ही है कि मनुष्य में उक्त सभी वृत्तियाँ एक साथ सजग रहती हैं और मानवेतर प्राणियों मे उसका एकांगी रूप ही देखा जा सकता है। आदिमानव की प्रवृत्तियाँ किसी बाह्य प्रेरणा से प्रवाहित होकर ही संवेदनात्मक स्थिति मे आई होंगी। वह उन्हीं प्रेरणाओं को ग्रहण करता होगा जिनके द्वारा उसके जीवन के स्वार्थ बंधे हुए थे। मनुष्य जैसे अधिक विचारशील होता गया, उसकी चिर सहचरी प्रकृति के विविध रूपों ने उसके मानस में आकर्षण की एक अमिट छाप अंकित कर दी। झरनों का कलकलनाद, पक्षियों का कलरव, चातक एवं कोकिल के कण्ठ का मधुरवाणी मयूर का रूप-सौन्दर्यमय आकर्षण एवं नृत्य आदि मनुष्य के लिये प्रेरणा के विषय बन गये। विवाह के पूर्व (Court -ship) का प्रणय आकर्षण एवं सहगमन की प्रवृत्ति मानवेतर प्राणियों में पाई जाती है। मयूर की वाणी वर्षा के समय मानव के हृदय में कवि-परम्परा के अनुसार रागात्मक भावना उत्पन्न कर करती है किन्तु मयूर स्वर-सौन्दर्य का प्राणी नहीं है, अपितु रूप सौन्दर्य की अनुपम सृष्टि है। वह अपनी मयूरी को गीत अथवा स्वर माधुरी के द्वारा नहीं वरन् वर्ण-सौन्दर्य एवं नृत्य के द्वारा आकर्षित करता है।[२] कौन जाने मयूर के नृत्य से ही मनुष्य ने आत्म विभोर हो नृत्य करने की प्रेरणा प्राप्त की हो। जैसे केकड़ा और मकड़ी भी अपने स्त्री-साथी को आकर्षित करने के लिये नृत्य करते हैं।[३] किन्तु मनुष्य का ध्यान उनके प्रणय नृत्य की ओर न आकर

१ डा॰ रघुवंश, प्रकृति और हिंदी काव्य।
२ L R Brigh well, The miracles of Life, page 130
३ वही, पृष्ठ १३०।

क
की अथाह उमग रहती है, जो गार्हस्थ जीवन के सुख दुःख की अनुभूति से परे भोलेपन की सूचक है। राजा भरथरी के जोगी होने पर रानी पिंगला ने भी कौमार्य जीवन की निर्द्वंद्वता के प्रति अपनी रुचि प्रकट की है।[१] वट वृक्ष पर चमगीदडो का उल्टे मस्तक लटकते हुये देखकर एक वधू ने अपनी सास को बड की बागल की उपमा भी दे डाली। वट वृक्ष का उल्लेख एक धार्मिक गीत मे केवल उक्त प्रसग में ही पाया है।[२]

पथोडा के गीतो मे रहस्यात्मक एव कौतूहलमयी भावना को व्यक्त करने के लिये भी कुछ वृक्ष एव लताओ के नामो का उल्लेख हुआ है। आम के वृक्ष पर इमली पकती है और अगूर लताओ पर अनार के फल लगते हैं।[3]

पुत्र का अभाव एव सन्तान-विहीनत्व की भावना की अभिव्यजना मे पीपल एव नागर बेल (ताम्बूल लता) का माध्यम ग्रहण किया गया है।[४] शरीर की सुन्दर वाटिका में मन को मोगरा (बेल) की लता का रूपक देना भी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है।[५] देव स्थान का वर्णन करते समय एव पूजोपचार के प्रसग मे मोगरे की लता का उल्लेख है। देवी के मन्दिर के आँगन में मोगरे की लता कलियो से लदी हुई हैं। उसकी डाल कौन हिलाता है और कौन कलियो को लेकर हार गूथता है।[६] चम्पा का वृक्ष सतियो की गाथा एव गीतो से अधिक सम्बन्धित है। चम्पा एव चमेली के पुष्प सतियो को अधिक प्रिय होते हैं। यह उनकी सासारिक मनोवासनाए के अपूर्ण रह जाने का प्रतीक भी है। पति की अकाल मृत्यु पर उन्हें अपने यौवन की उमगों से पूर्ण शृङ्गार सौभाग्यमय जीवन का विसर्जन करना पडता है और जीवन की अनेक लालसाएं अधूरी रह जाती हैं। चम्पा बाग मे झूलने, क्रीडा एव

---

१ क एजी खडी पिंगला बोले
कु वारी रेती तो राजा पीपल पूजती
लेती ईश्वर को नाम —मालवी लोकगीत पृष्ठ ३३

ख कु वारी रई जाती राजा पीपल पूजती
परणी ने लगायो यो दाग —२।१२३ —पृष्ठ ७६

२ थें सासूजी बड का बागड सिद्धनाथ मे ऊंदे माथे झूलोजी —२।२३७
(सिद्धवट उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर एक तीर्थ है। यहां उक्त वट की पूजा की जाती है)

३ आम्बा पाकी आमली, पाकी दाडम दाख —२।११५

४ पीना झूरे पीपली फल ने नागर बेल —२।११५

५. तन बाडी मन मोगरा, सस्ता अमरत बोल —२।११६

६ माता रे दरबार, मोगरा री डार
कुण हिलावे डार, कुण गूथे हार —१।६८

विहार करने की लालसा मन में दबी रह जाती है। [१] चम्पा के वृक्ष एवं पुष्प के साथ सतिया के उल्लेख में यही मनोभूमि हो सकती है। [२]

दृश्य प्रकृति हमारे आकर्षण का स्वाभाविक विषय है और इसके आधार पर हमारी कलागत चेतनाओं का विकास हुआ है। वृक्ष-लता एवं पुष्पों को लेकर लोकगीतों में भी भाव-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। स्वरूप वर्णन में प्रकृति के सौन्दर्य को उपमाना के द्वारा स्वयं के अंग प्रत्यंगों पर आरोपित भी किया है। मालवी एवं राजस्थानी लोकगीतों में समान रूप से वृक्ष-लता एवं फल सम्बन्धी उपमानों के प्रयोग में जन मानस की कलागत मौलिक सूझ उल्लेखनीय है —

उपमान	उपमेय
१ बागडियो नारेल	सीस
२ आम्बा री फाक	आख्या
३ पनवाडया (ताम्बूल लता)	ओठ
४ दाडम (अनार) रा बीज	दांत
५ चम्पा की डाल	बाया (बाँहु)
६ मूंगफली	आंगली
७ पीपर को पान	पेट

संस्कृत एवं हिन्दी के काव्यकारों ने भुजा के लिये लता का उपमान अवश्य लिया है किन्तु चम्पक-लता जैसा उपमान प्रस्तुत करने मे यहा मार्दव, लचक एवं वर्ण-सौन्दर्य तीनों भाव एक साथ व्यजित हो जाते हैं। [3]

इलायची एवं ताम्बूल की लता नायिकाओं के लिये प्रिय दर्शन करने का एक बहाना अथवा माध्यम बन जाती है। कुशल नायिका अपने आँगन में 'एलची' एवं 'नागर-बेल' इसलिये लगाती हैं कि उसका प्रिय बीडा (ताम्बूल) के बहाने आकर प्रेमिका को अपनी झलक दिखा जायगा। [४] अंगूर-लता एवं नारंगी का वृक्ष भी सरस फलों को प्रदान करने के

---

१ झूलो डाल्यो चम्पा बाग में जी म्हारा राज

२ सायब को डोलो (अर्थी), चम्पा नीचे ऊबो
चम्पा नीचे ऊबो, चमेली नीचे ऊबो
सायब से छेटी मति पाडो हो सेवग म्हारा

३ कुलदेवी का गीत —१।७१ बइयाँ चम्पा री डाल
— ग्यारस मोहिनी का स्वरूप वर्णन

४ आँगण बोऊँ एलची, कवळे आगर बेल
बीडा के मिस आवजो, लीजो मुजरो झेल

कारण प्रणयकांक्षी नायिका के लिये प्रेम का माहात्म्य तथा रस बोध कराने का एक प्रतीक बन गया है।[1] नायिका को रसयुक्त नारंगी एवं दाख में अधिक आसक्ति है। नीबू के पेड़ के नीचे ही भम्मर जैसे आभूषण को धारण कर वह प्रेमी की प्रतीक्षा करती है।[2]

'मरवो-मोगरो ए मालनी'

वृक्षों एवं लताओं की तरह मनुष्य के आत्माह्लादन के लिये पुष्प भी विशेष महत्व रखते हैं। भारत की वनश्री का वैभव पुष्पों से ही निखरता है। बसन्त में प्रकृति भी पुष्पों से ही अपने यौवन का शृङ्गार करती है। प्रकृति की भाँति भारतीय नारी भी युग युगों से अपने को फूलों से सजाती आ रही है। पुष्पों के मण्डन मणि-काञ्चन के आभूषणों से कम शोभावान नहीं होते। शरीर की शोभावृद्धि के साथ ही पुष्पों से सुगन्ध भी प्राप्त होती है जो रत्नाभरणों की वाह्य कठोरता से अलभ्य है। स्वयं के शृङ्गार के साथ ही मानव पुष्पों के द्वारा अर्चना के निमित्त श्रद्धा के सुमन भी अर्पित करता है। पुष्प एवं लताएं भारत की पुष्प संस्कृति के अनन्य स्थान हैं। आज के युग में प्राचीन भारत के वसन्तकालीन पुष्पोत्सव एवं क्रीडाएं जो आज विद्यमान नहीं हैं किन्तु फूलों के प्रति आकर्षण की धूमिल रेखायें जन मानस पर अवश्य ही अङ्कित हैं।

मालव की भूमि मे जूही, चम्पा चमेली, मरवा मोगरा गुलचान्दनी, हरसिंगार, कुन्द, मधुमालती, मोलश्री, गुलाब, कनेर एवं गुलगटम्भ (गेंदा) आदि पुष्प-लता और वृक्षों की शोभा के साथ ही घर आँगन एवं वन सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते रहते हैं किन्तु मालवी लोकगीतों में उपरोक्त सभी पुष्पों का वर्णन प्राप्त नहीं होता। वसन्त एवं ग्रीष्म में पुष्पित होने वाला पलाश एवं शीतकाल मे अफीम का पुष्प भी ग्राम्य जीवन से विशेष सम्बन्धित है। अफीम के पुष्पों का रंग वैचित्र्य खेतों में एक अनुपम दृश्य को उपस्थित कर देता है, किन्तु इस सहज सौन्दर्य की ओर जन मानस की रुचि आकर्षित नही हुई, केवल विवाह के एक गीत मे आफू की क्यारी का उल्लेख मात्र हुआ है और वह भी कल्पना वैचित्र्य की दृष्टि से। सड़क पर आफू और केसर की क्यारी होने की कल्पना केवल कौतूहल उत्पन्न कर सकती है, खेत मे खिले आफू-पुष्पों के प्रति रसात्मक भावना का संचार नही हो पाता।[3]

---

१ अगन बाग मे मगन बगीचा, दाख तले घर मेरा जी,
आवोगा पछतावोगा फेर नहँ मिलन का मोकाजी
नारगी नीचे डेरा जी —१।६६

२ भम्मर पैरया नीबू तले —१।२६

३ सडक पर आफ की क्यारी रे, सडक पर केसर की क्यारी
नवल बनोजो का रथ सि गारिया, हवा करो प्यारी

पुरुषों की अपेक्षा नारी मे पुष्पो के प्रति आकर्षण का भाव अधिक मिलता है । फूलो सुवास के अतिरिक्त उनके वर्ण-सौन्दर्य मे वह उपमान ग्रहण करती है, और प्राकृतिक न्दर्य को निहारती भी है । प्रभात मे केवडे (केतकी) के वर्ण की समता करने वाला ज भी उसी पुष्प वाटिका की आभा मे उदित होता हुआ दिखाई पडता है।[1] केवडा वर्ण-न्दर्य एवं सुवास दोनों दृष्टि से ही प्रिय पुष्प रहा है । रघुवंश मे सीता की मुख-श्री का भिनन्दन करने के लिये वायु केतकी के रेणु कणो को लेकर अग्रसर होती हैं ।[2] केतकी के रस-सौन्दर्य की यह अनुभूति मेघ श्याम पुरुष राम की ही हो सकती है । किन्तु मालवी री केवडे के वर्ण मे अपने गौर वर्ण के पति के सौन्दर्य को देखती है । नारी के हरे भरे गान मे प्रेम की सुरभि से मन को प्रफुल्लित करने वाले पति को केवडे का रूपक प्रदान ती है ।[3] केवडे के अतिरिक्त गुलाब का फूल भी रूप-सौन्दर्य एवं सुवास का प्रदाता है । जाति (फूल पत्ती) के गीतों मे इसे शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ है । गुलाब प्रेम रस की गह ई एवं अनुराग की लाली से परिपूर्ण है । प्रेम की गहन सुवास से पूर्ण गुलाब एवं पति दोनो, ही तो है ।[4] लोकगीतों की नायिका अपनी 'ननद के वीर' एवं गुलाब मे तादात्म्य स्था-त करती है । गुलाब जैसा खिला प्रफुल्ल सुन्दर गौर-वर्ण की हल्की सी ललाई लिया हुआ का मुख किस नारी को प्रमुदित नहीं करता ? मायरे के एक गीत की पंक्ति मे गुलाब को र नारी हृदय की इस शाश्वत भावना का उद्रेक हुआ है ।[5]

विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले सेवरे के एक गीत मे निम्नलिखित पुष्पो के म गिनाये गये हैं —

१ चम्पा २ चमेली ३ मरवा ४ मोगरा ५ गुलदावदी

उक्त पुष्प मालव भूमि की प्रकृति के सर्वाधिक प्रिय पुष्प हैं । गुलाब के पुष्प का वाह जैसे मांगलिक अवसर पुष्पो की सूची मे न आना विचारणीय है । मोगरे के फूल के थ मरवे का उल्लेख कुछ सार्थकता लिये हुये है । रंग सौन्दर्य एवं वर्ण वैविध्य की दृष्टि मरवे के फूल को मोगरे की कलियों के साथ हार में गूंथा जा सकता है । मोगरे के पुष्पों

---

१ सूरज उगो केवडा की परछी
केवाणो श्यामल उगिया —प्रभाती का गीत २।१६

२ वेलानिल केतकिरेणुभिस्ते सभावयत्याननमायताक्षि —रघु० १३।१६

३ जी म्हारा हरिया बागां का केवडा
सायब जावा नी देवा जी राज —१।२१८

४ इ तो बाईजी रा बीरा बालम रसिया
गैरा जो फूल गुलाब को —बालिकाओं के गीत की पंक्ति

५ वीरा मांयाने मेमद लावजो
फूल जा रे फूल गुलाब को —१।७१

र किये ।[1] युद्ध के लिये भी अश्व अधिक उपयोगी पशु है । अत वीर पूजा से सम्बंधित राहण का अनेक बार उल्लेख मिलता है । रामदेवजी के गीत प्रमाण मे प्रस्तुत किये जा है । युद्ध क अतिरिक्त युग की सामान्य स्थिति मे भी अश्व का उपयोग होता है । अश्व से चलन वाला पशु है । किसी निश्चित स्थान पर शीघ्र एव यथासमय पहुँचने के लिये पर विश्राम ही किया जाता था । सवारी के लिये घोडो को अधिक महत्व दिया जाता रग के अनुसार घोडो के लीलडी, घोलो आदि नामकरण भी किये गये हैं । सावन के न म बहिन को ससुराल से लाने के लिये भाई को लीलडी पर प्रस्थान करने के लिये त किया गया है ।[2] विवाह आदि मागलिक अवसरो पर भी वर-यात्रा क लिये अश्व का । आवश्यक है । घोडे अथवा घोडी के बिना हिन्दुओ मे विवाह का सम्पन्न होना सम्भव रहा । वधू के घर के लिये प्रस्थान करने के पूर्व घुडचढी की आवश्यक रूढि का निर्वाह ा जाता है । वर की माता घोडी का पूजन करती है । सेवरे के गीतो मे घोडी के नाचने- ने एव नगर मे भ्रमण करने का विशेष वर्णन किया गया है ।[3] विवाह क अन्य गीतो में अश्व का परिवहन के पशु के रूप मे उल्लेख हुआ है । वधू विवाह के पश्चात् पति के घर ओर प्रस्थान करने के लिये अश्व पर आरूढ होती है ।[4] प्रस्थान के लिये उद्यत वर को ाई के समय कुछ क्षण अश्व का रोकने का आग्रह करती है ।[5] कभी कभी व्यक्ति विशेष अश्व होने का कारण उसका सम्मान भी बढ जाता है । प्रियतम का अश्व सबसे अधिक र्षण की वस्तु बन जाता है । उसे सप्तरगी लगाम लगाई जाती है । श्वेत अश्व के साथ तरगी लगाम की कल्पना बडी मनोहर है । बडे एव साहब लोगो के घोडे का भाई, भाई

धरती पै दो ओधा बडा
एक है सूर्या नो जायो, दूजो है घोडी नो जायो
एक तो पाने ससार, दूजो जाय रण मे असवार —हीड का प्रारम्भिक अ श

१ क घोलो घोडी ने कु वर रामदेव चढिया —२।८८
ख लीले घोडे जीन माडी रामदेव असवार —२।६४
ग धौले घोडे असवार पीरजी मुलक चढयो थो तवरा को २।११०
घ होकर घोडा का असवार, रामदेवजी आया जी
ङ आवो नो म्हारा बाला वीरा, (उठो हो, पाठातर)
लोडलो पलानो जी —मालवी लोकगीत, श्याम परमार, पृष्ठ २०

। घोडी नाचत कूदत नगर गई
गई रे बजाजी के हाट, बछेडो लूम रई – ३।१४०

४ कृस्न जी घुडलो पलानिया बई रुक्मण हुआ असवार – १।१७१

५ घडी एक घुडलो थो बजे रे सायब बनडा—मालवी लोकगीत, पृष्ठ ८७

त्य बैलों की जोडी को गाडी में जोतता है। गाडी को लेकर दौडने हुये बैल के सौंदर्य का ान मायरे के एक गात मे प्राप्त होता है।[1] सुन्दर बैलो की जोडी के लिये मालवी में रो, धोरडी आदि शब्दो का उपयोग मिलता है। श्वेत वर्ण के पुष्ट बैलो की जोडी बडी ोरम होती है। बणजारो के लिये सामान ढोने का काम भी बैल ही करने आये हैं, किन्तु ज के यान्त्रिक युग मे तो बणजारो की बालद का स्थान मोटर-ट्रकों ने ले लिया है। रेल- र्ग एव सडक से सुदूर के ग्रामीण क्षेत्र मे बालद के दर्शन हो जाते हैं। ग्राम की मालवी हेन तो अपने भाई को बणजारे के रूपमे देखती है और अपने घर पर आये भाई के स्वागत, त्कार एव आवास-व्यवस्था की उसे चिंता होती है कि वह अपने भाई की और उसकी ाळद की कहा स्थान देगी।[2]

भार वाहन के सन्दर्भ में बैलो के अतिरिक्त एक गीत मे साडनी (साडडी पाठांतर) ा वर्णन किया गया है। वैसे साड गाय का जाया अवश्य होता है। किन्तु शिव का वाहन ी होने के कारण वह धार्मिक श्रद्धा का पात्र है। अत उससे भार-वहन का कार्य नही लिया जा सकता है। विवाह के अवसर गणेश और सूरज वीरा को साडडी पर रुपये एव ाभूषण आदि लाने के लिये कहा गया है।[3] किन्तु यह साडडी शब्द साड का स्त्री-वाचक न ोते हुये शीघ्र गामिनी ऊँटनी के लिये प्रयुक्त किया गया है। ऊँट को रेगिस्तान का जहाज ले ही कह दिया जाय किन्तु मध्य-युग मे बणजारो की बालद की तरह ऊँट भी यातायात व भार वहन का प्रमुख साधन रहा है और आज भी मालवा के अनेक ग्रामो में शीघ्रगामी ाहन के रूप में उसका उपयोग होता है। मोटर आदि यान्त्रिक वाहनो के प्रचलन के पूर्व ालवी ग्रामो में जागीरदार एव जमीदारो के यहा साडनी का रखना सम्पन्नता का द्योतक मझा जाता था। साडनी का स्थान आजकल मोटर कार ने ले लिया है।

कृषि जीवन से सम्बन्धित पालतू पशुओं के प्रति चिर-सहचर्य के कारण आत्मीयता की भावना का जागृत होना स्वाभाविक ही है। दुधारू पशुओ की उपयोगिता से परिचित हो जाने के कारण लोक मानस में अपनी वश-वृद्धि के साथ पशु वश के वर्द्धन की कामना भी प्रकट हुई है। रनजगा के अन्तर्गत पूर्वजो के गीतों म पुत्र-जन्म के साथ ही गाय, भैंस एव घोडी आदि मादा-पशुओ द्वारा बच्चे उत्पन्न करने का उल्लेख पशु-सवर्धन की उल्लास भावना

---

१ गाडो तो रडक्या रेत मे रे वीरा, गगना उड रह्यो गेर
चालो उतावला धोरडी रे, म्हारा वेया वई जोवे वाट
धोरी रा चमकया सीगडा रे —मालवी लोकगीत, पृष्ठ ८३

२ वीरा म्हारा वणजारा, कडे ओ उतारा बोराजी की वाळदां ? —२।१५

३ मणी माण्डे रिव सिर रो चाव, पलाणो गजानन की सांडडी
मणी माण्डे गेणा रो चाव, पलाणो सूरज वीरा सांडडी — २।१६

के रूप व्यक्त हुआ है।[१] दूधारू पशुओं में गाय की अपेक्षा भैंस को अधिक महत्व देना नगर के ग्वाला की लोभी वृत्ति का परिचायक है। अधिक दूध प्राप्त करने एवं आर्थिक लाभ की दृष्टि से लोग भैंस का ही अधिक पालते हैं। गाय का महत्व तो बछड़े, कृषि के लिये बैल उत्पन्न करने के कारण स्वीकार किया जाता है। अर्थ लाभ में ग्रामीण जन भी कभी-कभी अपनी परम्परा धार्मिक भावना को तिलांजलि देकर, घर के आभूषण आदि बेचकर दूध के लिये भैंस लाते हैं। यदि भैंस न पाडी उत्पन्न न कर पाडा पैदा कर दिया तो वह गम्भीर निराशा और पश्चाताप का कारण बन जाता है।[२]

कुत्ता, बिल्ली एव चूहे भी ऐसे प्राणी हैं, जो मनुष्य के गृह जीवन के साथ लगे हुये हैं। ये अवसर पाते ही खाने-पीने की वस्तुओं में से अपना हिस्सा बरबस प्राप्त कर ही लेते हैं। कुत्ता घर मे खाने-पीने की वस्तुओं का उजाड कर देता है। कुत्ते के द्वारा स्पर्श की गई जूठी वस्तुएं अपवित्र हो जाती हैं और उपयोगिता की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता है। कुत्ते का वर्णन उजाडू पशु के रूप में ही हुआ है।[३] मिनकी (बिल्ली) तो म्याऊं-म्याऊं करने के कारण हास्य एवं मखौल की वस्तु बन गई। ब्याईन (समधिन) को मिनकी की उपमा देकर मनोरंजन का प्रसंग उत्पन्न कर लिया गया पुत्र-जन्म के गीतों मे। मिनकी एक प्रकार का हास्य-गीत है (१।२६६)। मिनकी की तरह तालूडी (गिलहरी) भी गाल-गीत एवं हास्य का विषय है[४] चूहा जैसा तुच्छ प्राणी कृषि के लिये कितना ही हानिकारक बन जावे किन्तु गणेशजी का प्रिय वाहन होने के कारण वह क्षम्य ही नहीं अभिनंदन का पा भी बन जाता है। चुहिया कभी कभी हरि नाम का स्मरण करने की माला (सुमरणी कतर डालती है। किन्तु वह भी हास्य के आवरण मे गृह जीवन के द्वन्द्व की रोचक कथा व विषय बन जाती है। एक चुहिया ने हरि भक्त चूहें की माला कतर डाली। भक्ति मे विघ्न आ जाने के कारण चूहा बड़ा क्रोधित हुआ और दोनों मे झगडा इतना बढा कि पति-पत्नी के इस द्वन्द्व मे आत्म रक्षा के लिये चुहिया ने झाडू हाथ में ले ली और चूहे ने प्रहार के लि

---

१ पूर्वज आया म्हारी घोड्यां के ठाने घोड्या ने बछ्डा जाया हो
पूर्वज आया म्हारी भैंस्या के ठाने, भैंस्या भूरी पाडी जाई ओ – १।५६

२ हँसली वेच के भैंस आणी
भैंस बियाणी पाडो रे, चलती को नाम गाडो रे – २।१०७

३ नाना की मा तो पानी गई, घर मे कुतरा घर गई
कुतरा ने कर्‌यो उजाड रे भई – १।२०

४ बढ पर गे उतरी तालूडी, म्हारी सूने तो सेज ए तालूडी
म्हारा नीरा करां ए म्हारी तालूडी —१।१५७

डा उठा लिया। इस लाव मे चूहा-दम्पत्ति का झगडा न सुलझ सका और अ त मे स्वर्ग के धर्मराज को यह झगडा निपटाना पडा।[1]

आवदा मे अपनी वाणी का विशेष आकर्षक रखने वाले बचारे माधव नन्दा की और किसी वयस्क का ध्यान आकर्षित नहा हो पाया। बालका ने अवश्य ही गर्दभ दम्पत्ति की पाडा को पहिचानने का चेष्टा के साथ ही सहानुभूति प्रकट की। अनावृष्टि क कारण जब तृण घास नहा उग पाता तब भूख-प्यास की विकलता से गदभ एव गदभी चीख-पुकार मचाते हैं।[2] गर्दभ क अतिरिक्त प्रकृति के प्रागण मे विचरण करने वाला एक सुरम्य प्राणी और बच गया है जिसका स्थान मालवी लाकगीता मे नहीं के बराबर है। सुन्दरिया के चचल नेत्रा से होड लेने वाले मृग मृगियो की आर जन मानस की उपक्षा का कारण अनुभूति का अभाव ही कहा जा सकता है। वस मालव मे सलग्न वन प्रा तर मे मृगा के दर्शन यत्र तत्र हा जाते हैं। किन्तु गीतो मे एक दा स्थान पर ही उनका उल्लेख मिल पाता है। राजा भरथरी के कथानक से सम्बन्धित जागिडा के एक गीत म शिकार के प्रसग पर मृग मृगी का उल्लेख हुआ है। लाक साहित्य की परम्परा क अनुसार ये पशु भी वाणी से युक्त है और दुख सुख, वियोग सयाग एव स्वधर्म-पालन की प्रेरणा से ओतप्रोत हैं। मृग का सम्पूर्ण शरीर मानव के लिये कितना उपयोगी एव परोपकार क लिये प्रेरक हो सकता है इसकी काव्य माधुर्य से सिक्त अभिव्यक्ति जागिडा के उक्त सर्व प्रसिद्ध एव लाकप्रिय गीत मे देखी जा सकती है।[3]

---

१ वारी ए उदरा वारी, व्हारी गजानद असवारी
उदरा ऊदरी के राड हुई है जुद्ध मच्यो अति भारी
उदरा ने लीदी लाकडी ने उदरी लीदी बुआरी घरमरायजी न्याव करयो है
चुरमो बण्यो अति भारी, वारी — १।२४४

२ म्हारा बीरा की आन सूखे पाल सूखे
गद्दो भूके गद्दी भूके भौं भौं भठट — ११३

३ सीग दीजो गोरखनाथ ने, घर घर अलख जगाय
खाल दना साधु सन्त ने, लेगा म्हने बिछाय
नैना देना चचल नार कू राखे घू घटा मे छिपाय
आख देना भल घर नार कू, लेगा अन्नी नो फडकाय
पाव देना काला चोर ने, झट से भागी जाय
खुरया देना सुर्या गाय ने
लेगा अग लगाय जिनस पवित्तर हुई जावा
आत देना सिरी गौड (श्री गौड ब्राह्मण) ने
जारी जनोई बनाय जिनसे पवित्तर हुई जावा
माँटी दीजो पारदी ने, देगा दुनिया म बपराय —२।१८३, पृष्ठ ७५

पक्षियों का वर्णन करने की लोकगीतो मे एक विशिष्ट शैली है। पक्षियों के समान स्वच्छद एव उन्मुक्त विचरण की लालसा का भूमि के बधन से जकडे हुये मानव के हृदय मे जागृत होना स्वाभाविक ही है और उसन अपनी चिर जागृत लालसा को वायुयानो क द्वारा पूरा कर हो लिया। लोकगीतो मे पक्षियो का वर्णन प्रमुखत तीन रूपो मे प्राप्त होता है।

१ युग्म भावना के प्रतीक के रूप मे,
२ प्रमी प्रेमिकाओ के सदेश-वाहक के रूप म,
३ मधुर एव प्रियभाषी होने के रूप मे,

जन थल एव गगन म स्वच्छद विचरण करने वाले पक्षी युग्मो मे क्रौंच, हस, सारस एव चक्रवाक आदि प्रमुख हैं। भारतीय महाकाव्यो म इनको महत्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त हुआ है। हिन्दी के महा कवि बिहारी न उन्मुक्त एव बाधा विहीन सुख का उपयोग करने वाले दम्पत्ति के रूप म कबूतर का भी वर्णन किया है।[१] मालवी लोकगीतो में क्रौंच मिथुन का वर्णन तो अप्राप्त है। किन्तु प्रेमी युग्म का चित्रण करने के लिये सारस, कबूतर हस एव मयूर आदि पक्षियो का चित्रण अवश्य हुआ है। एक गीत मे सारस को प्रेयसी क रूप में अकित किया है। जिसक आकर्षण के कारण एक स्वकीया बडी व्यथित है।[२] प्रमी एव प्रमिका क लिये हस हसनी का प्रतीक भी उल्लेखनीय है।[३] प्रम की अनन्यता क लिये, स्वकीया की प्रतिष्ठा क लिये पति से आग्रह किया गया है कि घर का अप्रिय वातावरण होत हुये भी, पत्नी क मनानुकूल न होन पर भी अन्यत्र विहार करने मे जग-हँसाई होती है। अन्योक्ति रूप मे पति के लिये 'हस' शब्द का प्रयोग मार्मिक है।[४] प्रेम की अनन्यता के लिये

१ पट पाखे भखु काकरे, सदा परेई सग
सुखी परेवा जगत में, तू ही एक विहग —बिहारी सतसई

२ उचा ओ तमारा आवरा, नीचो बधावा पटसाल
राजाजी का मेला म सारस रमी रया
हमारा बुलाया सारस नी बोली
अलीजा बुलावे सारस दाडी द हो जाय
सारस घटावा टोटी भूमरा छोडो म्हारा अलीजा रो साथ
—मालवी लोकगीत, श्याम परमार, पृष्ठ ११

३ क हम हसा की हसणी रे
तम बच्या ने कई कन जी —२। २४, पृष्ठ ८२
ख कणी हसा को हसणी मो प्यारी, कई छे थारो नाम

४ हसा सरोवर न तजे जिको जल खारो वी होय।
डाबर डाबर डोलता, भला न कहसी कोय॥

स का मोती चुगना भी लोकोक्ति साहित्य में उदाहरण के रूप में अपना लिया गया है।[1] पात-युग्म नायक एवं नायिका के प्रतीकार्थ को सूचित करते हैं।[2] मयूर मयूरी के नृत्य वत में प्रेमी युगल के विहार का दृश्य भी अङ्कित किया गया है।[3] पक्षियों के अतिरिक्त न्दर स्त्री के लिये भी हरिणी का प्रतीक मिलता है।[4]

सन्देश-वाहक पक्षियों में कबूतर का उपयोग होता रहा है। किन्तु भारतीय लोक हित्य में हंस और शुक दोनों पक्षियों का नायक-नायिका के प्रेम सन्देश-वाहक के रूप में वर्णन हुआ है। दमयन्ती का सन्देश-वाहक हंस, पद्मावती का सन्देश ले जाने वाला शुक तो सिद्ध ही है। लोक-कथाओं में भी इन सन्देश वाहकों को भारतीय महाकाव्यों में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। लोकगीतों में हंस अथवा कपोत का वर्णन सन्देश-वाहक के रूप में प्राप्त नहीं होता। प्रकृति के इन मनोहर प्राणियों को छोड़कर काग जैसे अशुभ एवं सौन्दर्य विहीन प्राणी को प्रियतम तक सन्देश पहुँचाने का कार्य सौंपा गया। राजस्थानी एवं मालवी लोकगीतों में काग ही विरह-व्यथा नायिकाओं का सन्देश ले जाने वाला पक्षी है।[5] वर्षा की एकान्त भयावनी रात में विरह से व्याकुल कामिनी को जब बिजली की चमक कटार के समान प्रतीत होती है तब वह एकाकिनी भयाकुल होकर अपने प्रियतम के पास सन्देश भेजने के लिये काग पक्षी को उड़ाती है।[6] शुक जैसे मधुर-भाषी पक्षी को छोड़कर लोकगीतों की नायिकाओं ने काग को ही प्रेम सन्देश पहुँचाने का कार्य सौंपा यह एक आश्चर्य की बात हो सकती है किन्तु विरहिणी के मन की स्थिति पर यदि विचार किया जाय

---

१ कै हंसा मोती चुगे नहिं तो करे उपास —२।७३

२ साजापुर का सेर मे चार कबूतर जाय
पडोसन मार्‌यो काकरो म्हारी न जोडी विछडी जाय – मालवी दोहे क्रमांक ४०

३ क ओटला पै ओटला रे जिसमें बैठो मोर
मार विचारो कई करे रे घर का देवर चोर – मालवी दोहे क्रमांक २०
ख छज्जा ऊपर मोर नाचै खेले कुंवर दोय —३।७८

४ कावो हरणी क्यो दूबली चाल हमारा देस
खाटा गऊँ की घुगरी ने रामतली को तेल – मालवी दोहे क्रमांक १

५ गोखा बैठी काग उडाऊँ
उड उड काग निमाणा भवर जी कद आसी – राजस्थानी के लोकगीत
क्रमांक १०५ पृष्ठ २४

६ विरह से व्याकुल कामणी जी
ए जी कई बिजली कडके कटार
मारणी त्हारी राता डर मरे जी
नित नित ढोला काग उडावती —मालवी लोकगीत, पृष्ठ २७

तो इसमें मनोविज्ञान-सम्मत कारण लक्षित होता है। विरह से ग्रस्त व्यक्ति का मन ठिकाने नहीं रहता, ससार के प्रत्येक प्राणी से वह सहानुभूति प्राप्त करने की आकाक्षा करता है। वहा शुक और काग मे अन्तर स्पष्ट करने की दृष्टि भी सजग नहीं रह पाती। विवेक से शून्य इस स्थिति को उन्माद कहा जा सकता है। जायसी की नागमती भी भ्रमर और काग के द्वारा अपना सन्देश पहुँचाना चाहती है।[१] जायसी ने उक्त भावना सम्भवत लोकगीतो एवं लोक-कथाओ से ग्रहण की है।

काग की बोली अप्रिय होती है। कर्कश स्वर में बोलने वाले अशुभ पक्षी के रूप मे भी इसका वर्णन मिलता है।[२] प्रेम सन्देशा पहुँचाने के अतिरिक्त विवाह आदि अन्य मागलिक अवसरो पर भी निमन्त्रण एव सन्देश भेजने की आवश्यकता पडती है। लोकगीतो की नारी यह कार्य भी पक्षियो के द्वारा ही साधती है। मागलिक एव शुभ प्रसगो पर काग जैसे अशुभ पक्षी को महत्व न देने मे नारी समाज सजग दिखाई पडता है। पुत्र-जन्म के अवसर पर बहिन अपने भाई के यहा बधाई सन्देश प्रेषित करने के लिये जिस पक्षी का उपयोग लेना चाहती है, उसका नाम विशेष न देकर 'लाल-परेवा' शब्द से सम्बोधित किया है।[3] कुरजा एव श्याम पक्षी को स्वर्ग मे सन्देशा भेजने का कार्य सौंपा गया। इन पक्षियों का गगन मे ऊँचाई से उडता देख, इनके स्वर्ग तक पहुँचने की क्षमता मे विश्वास कर लिया गया है। विवाह के अवसर पर स्वर्ग मे निवास करने वाले पूर्वजो को श्यामा पक्षी के द्वारा निमन्त्रण प्रेषित किया जाता है और पूर्वजो का प्रत्युत्तर भी श्यामा के द्वारा उसी गीत मे प्राप्त हो जाता है।[४] निमाडी लोकगीतो मे भी एक पक्षी के द्वारा स्वर्ग में निमन्त्रण भेजा जाता है। यहा साँवळी (श्यामा) की जगह गिरधरनी शब्द का प्रयोग किया गया है। गीत का सम्पूर्ण भाव मालवी गीत से मिलता हुआ है। उसे मालवी का पाठान्तर कहा जा सकता है।[५]

---

१ पिय सो कहेऊ सन्देसडा है भौंरा, है काग
सोधीनि बिरहे जरि मुई हिय धुवा हम लाग —जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ १५४

२ मगरे बैठो कागलो कुर कुर कुरखे कागलो —१।३१

३ उड उड रे म्हारा लाल परेवा नगर बधावा दीजे रे
गाव नी जाणू नाम भी नी जाणू किना घरे दू बधावो जी
—मालवी लोकगीत, पृष्ठ १४

४ सरग भवती सावली एक सदेसो लेती जा
जइ वृद्धा गल्ला से यू कीजे, तम घर वरदोडी हो
ताला जडया लोह का ने जडया बजर किवाड
काचा सूतका पालणा बाध्या है सरग दुआर
बरद करा बरदावणा हमारो तो आवणो नी होय —वही पृष्ठ ८६

५ सरग भवती हो गिरधरणी एक सदेसो लई जाव
सुरग दाजी खयो कहे जो तुम घर को ब्याव
जेम सरे हो सार जो, हमारो तो आवणो नी होय
जडी दिया बजर किवाड, अग्गल जडो लुहाकी जी
—निमाडी लोकगीत, भूमिका पृष्ठ १३, रामनारायण उपाध्याय

राजस्थान के एक लोक गीत में कुरज पक्षी स्वर्ग से सिद्ध पुरुषों का सन्देश भी लाता है।[१]

कोयल मयूर आदि मधुर भाषा पक्षियों का वर्णन ऋतुओं के गीतों में हुआ है। इन पक्षियों का उल्लेख उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। वसन्त के समय पपीहे की पुकार नायिका के हृदय में प्रिय-सामीप्य की भावना उत्पन्न कर देती है, और वह अपने प्रियतम को बाग, उद्यान एवं महलों में आकर मिलने का आमन्त्रण देती है।[२] कोयल अमराइयों में बोलती है। शुक की वह बहिन है। शुक की चोंच में दाना चुगा भी भरती है।[३] वर्षा कालीन गीतों में दादुर, मोर एवं पपीहे का उल्लेख मात्र हुआ है।[४] वह अनुकरण की प्रवृत्ति का द्योतक है। बालिकाओं के सजा के गीतों में भी पपीहे का नाम लिया है।[५] इसी तरह घर की दीवार पर बैठी हुई चिड़ियों का वर्णन कर कन्या से उसका साम्य स्थापित किया है कि दाना अवसर आने पर घर से उड़ा दी जाती हैं।[६]

मालव के जन सामान्य का, विशेषकर नारियों का जीवन-क्षेत्र अत्यन्त ही सीमित है। विद्वानों के समान शास्त्र का गहन अध्ययन देशाटन एवं प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने से उनका जीवन कोसों दूर है। अतः काव्य के शाश्वत स्वरूप से परिचित न रहते हुए भी स्वयं की अनुभूति के आधार पर पशु पक्षी, वृक्ष पुष्प आदि का जो सहज एवं आकर्षक वर्णन किया है वह परम्परा की वस्तु बन कर कवियों की अमर वाणी की तरह अनन्त सौन्दर्य की सत्ता अपने आप में छिपाये हुये हैं।

बारहमासी

भारतीय काव्यों में प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन के रूप में ही प्राप्त होता है। सूर आदि हिन्दी के कवियों ने संयोग और वियोग शृङ्गार के वर्णन के अन्तर्गत षटऋतु

---

१ गिगन भवन यू कुरजा उतरी
कई यव लाई बात श्री —गोगाजी का गीत २२०, राजस्थानी लोकगीत पृष्ठ ५३१

२ भवर म्हारा मेला आजो जी, चतर म्हारा बागा आजो जी
म्है बागा फिरु अकेली पपइयो बोल्योजी —१।६४

३ हूँ तम से पूछूं म्हारा बाडी का सुआ, किने तमारी चोंच चुगा भरी
आम्बा की डार म्हारी बैन कोयलडी, उने म्हारी चोंच चुगा भरी – १।४२

४ रिमझिम रिमझिम मेवलो बरसे
दादुर मोर पपइयो बोले, कोयलडी कूक सुणावे —१।२१३

५ म्हारा पिछवाडे केल उगी, केल उगी
हू जाणू पपइयो बोल्यो
म्हारा बीराजी चढवा लाग्या —मालवी लोकगीत पृष्ठ ६४।६५

६ चादे बैठी चिडकली उडाव म्हारा दादाजी
सजा बई चाल्या सासरे मनाव म्हारा दादाजी

वर्णन एव बारहमामा की प्रकृति का वर्णन करने मे मेद उत्पन्न नहीं किया है। जायसी ने नागमती के विरह वर्णन मे बारहमासे को ही माध्यम बनाकर वेदना का अत्यन्त ही निमर्म एव कोमल स्वरूप प्रदर्शित किया है। इसमे हिन्दू दाम्पत्य जीवन का माधुर्य अपने चारो ओर प्रकृति के नाना व्यापारो के साथ भारतीय नारी की वेदना मिश्रित सरलता मे देखा जा सकता है। इसमे हृदय के वेग की व्यजना अत्यन्त ही स्वाभाविक रीति से होने पर भी भाव उत्कर्ष दशा को पहुँचे दिखाये गये हैं।[1] ऋतु वर्णन एव बारहमासा की परम्परा का आधार विचारणीय अवश्य है। प्रकृति का सश्लिष्ट अथवा यथातथ्य चित्रण आदि-कवि के काव्य मे भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु बारहमासा की परम्परा का मूल स्रोत लोकगीत ही हैं। जन मानस की इस परम्परा को साहित्य मे अपनाया गया और इसका चरम विकास हम जायसी के पद्मावत मे प्राप्त होता है। रीतिकाल मे चलकर तो बारहमासा का रूप रूढिवादी हो गया और ईश्वर प्रेम एव भक्ति भावना को प्रकट करने के लिये बारहमासा की रचनाए की गई, किन्तु इनकी सख्या नगण्य सा है। रीतिकाल में चार पाच कवियो की बारहमासा सम्बन्धी रचनाए प्राप्त होती है। कबीर ने लोकगीतो की प्रचलित पद्धति पर ज्ञान एव भक्ति भावना को अभिव्यक्त करने के लिये बारहमासे का माध्यम बनाया और उसी परम्परा के अन्य कवियो ने भी अपनाया।[2] आज भी मालवी लोकगीतो मे कुछ बारहमासे इस प्रकार के सुनने को मिल जाते हैं जहा केवल बारह महिनो के नाम परिगणन के साथ ही धार्मिक एव भक्ति सम्बन्धी कथाओ की धारा चलती रहती है। द्रौपदी चीर हरण की कथा से सम्बन्धित 'द्रौपदी को बारहमासा' मालवी लोकगीत मे प्रसिद्ध है।[3] किन्तु इस प्रकार के गीतो मे कथा प्रवाह की तीव्रता ही के अतिरिक्त प्रकृति द्वारा उद्दीप्त भाव सौन्दर्य की मृदुल अभिव्यक्ति का रूप देखने को नहीं मिलेगा। बारहमासा मे प्रकृति का मानव-हृदय के भावो से अधिक ही स्वच्छन्द एव उन्मुक्त सम्बन्ध स्थापित होता है। हिन्दी की काव्य परम्परा मे प्रकृति का स्वतन्त्र महत्व नहीं रह गया था फिर भी कुछ कवियो ने लोक मान्यताओ और गीतो की भावनाओ को अपने काव्य मे अवश्य ही उतारा है। लोकगीतों के बारहमासा के समान ही सर्वप्रथम नरपति नाल्ह ने बीसलदेव रासो मे राजमती के वियोग का वर्णन करने में बारहमासो का माध्यम

---

१ क जायसी ग्रन्थावली के आधार पर, पृष्ठ ४४, ४६
  ख कबीर बारहमासा ५० पद्य, विषय ज्ञान, पृष्ठ ३६३

२ क गुलाल साहब (स० १७८०) ने बारहमासा लिखा। देखें, डा० रामकुमार वर्मा कृत हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४०४
  ख सवसुख शरण (स १८५७) बारहमासा विनय ,, ,, पृ ६८६
  ग रामरूप (स १८०७) बारहमासा ,, , पृ ४१३
  घ धरणी हमराज (१८११) बारहमासी, हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ ३५३
  ङ सुदर (१६८६ ,, ,, ,, २२६

३ म्हाराज कृष्ण जो, राखो हो परतना अबला नार की
  राजो हो परतना (प्रतिना) द्रोपदा नार की —२.२५७

बनाया। वैसे बीसलदेव रासो काव्य ग्रंथ नहीं है, यह गाने के लिये रचा गया था[1]। बीसल-देव रासो ही हिन्दी साहित्य में एक ऐसा सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसमें लोकजीवन से सम्बन्धित तत्वों का समावेश प्राप्त होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में हमें विवाह के गीत देखने को मिलते हैं। बीसलदेव रासो के रचयिता नाल्ह ने बारहमासा को भी अन्य लोकगीतों की तरह प्रच-लित सामान्य जनता में प्रचलित गीत शैली के रूप में ही ग्रहण किया होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अपभ्रंश की जिस रचना में बारहमासा मिलता है वह विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चउपई' जो तेरहवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्व की रचना नहीं है।[2] मालवी लोकगीतों में प्रचलित जो बारहमासे प्राप्त होते हैं उनका प्रारम्भ प्रायः आषाढ मास से होता है।[3] किन्तु बीसलदेव रासो के कवि ने बारहमासा का प्रारम्भ कार्तिक मास से किया है जबकि लोक परम्परा के अनुकूल कुछ स्वतन्त्रता से काम लिया। प्राचीनकाल में वर्षा के समय प्रवास करना कठिन था। लोग चौमासे में अपना स्थान छोड़कर नहीं जाया करते थे। बीसलदेव भी वर्षा के पश्चात् अर्थात् कार्तिक मास में प्रवास के लिये निकलता है। अतः उसकी राज-रानी राजमति की वियोग वेदना का आश्विन मास के पश्चात् कार्तिक से प्रारम्भ होना स्वा-भाविक है। जायसी ने पद्मावत में बारहमासा का प्रारम्भ लोक-प्रचलित परम्परा के अनुसार आषाढ मास से ही किया है।[4] लोकगीतों में बारहमासा आषाढ से प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति का कारण स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है। आषाढ मास में हमारे देश में मेघों की ओर सामान्य जनता की दृष्टि लगी रहती है और हमारे कोटि-कोटि कृषक धरती माता को हरी-भरी देखने के लिये विकल हो उठते हैं तब जन-मानस को अपने प्रिय व्यक्ति का वियोग कैसे सह्य हो सकता है? वर्षाकाल में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले गगन विहारी पक्षी भी अपने नीडों में विश्राम करते हैं। प्रकृति स्वयं भी उल्लासमयी होकर ग्रीष्म की तपन को भुला देना चाहती है। तब कोई भी मानव-हृदय एकाकी रहने की स्थिति कैसे स्वीकार करेगा। आषाढ वर्षा के प्रारम्भ का प्रथम मास माना जाता है। वर्षा में सामीप्य भावना तीव्रतम हो उठती है। विरह वेदना के उभार के लिये आषाढ़ का प्रथम बादल ही पर्याप्त है। भावनाओं से स्पंदित होने वाले कवि हृदय में मेघदूत जैसे विरह-काव्य के सृजन की प्रेरणा देने वाला भी आषाढ मास और उसका मेघ ही तो है।

प्रकृति में अपनी अन्तर्वृत्तियों का सामञ्जस्य प्राप्त करने की चेष्टा का जहां तक प्रश्न जन मानस में इसका उद्वेलन होना स्वाभाविक है किन्तु भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३६

२ नामवरसिंह —हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृष्ठ २७६

३ क अषाड आसाकरी हमारी अन्न पाणी नइ भावेजी
जाय मिले कुब्जा से श्याम जो भग मिलावे रे – १।२२६

ख असाड मास मुरसती सुमरु, सुदबुद देत जुवाला
म्हाराज क्रस्न जी राखो परतज्ञा अबला नार की – २।२५७

४ चढा असाढ गगन घन गाजा।
साजा विरह दुन्द दल बाजा॥ – नागमती वियोग खण्ड, पृष्ठ १५२

दृष्टि से विचार किया जाय तो सारे हृदय का स्थूल एवं परिष्कृत भावनाओं का विकास काव्य कारों की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगत होगा। लोकगाथा में बारहमासे के मासों की मार्मिक व्यंजना एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म विवेचन नहीं मिलेगा। लोकगायन में सम्बन्धित त्योहार, उत्सव आदि उल्लासवर्द्धक प्रसंगों के उल्लेख के साथ प्रत्येक मास में प्रियतम के अभाव का स्मरण मात्र रहेगा। लोक भावना के इस आधार पर नाहड़ एवं जायसी आदि अन्य सूफी कवियों ने विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यक्ति के लिये मासों को उद्दीप्त करने वाली प्रकृति को बारहमासा में माध्यम बनाया। यहाँ मालवी लोकगीत के एक बारहमासे का उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

असाढ़ मास करो हमारी, भ न पानी नइ भावेजी
जाय मिले कुब्जा से श्याम जो भग दिखावेरे, बिरज कुल हाय लजावे रे
सावन आवन के गये सजनि, सब सखि तीज मनावे रे
नवमिव गैणा पैरी सब कंू उढावे रे, बिरज कुल
भादव महिने रेन अंधेरी गरज-गरज डरावे रे
दादुर मोर पपैय्या बोले कायल शब्द सुनावे रे, बिरज कुल
कुआर महिने देवी अम्बिका राधा पूजन जावे रे
भली करो म्हाराज किस्नजी थारे उरा बुलावे रे, बिरज कुल
कार्तिक महनो उत्तम आयो सब सखी कार्तिक न्हावे र
राधा से प्रभु उध्यो नो जावे प्राण गमावे रे, बिरज कुल
अगहन महनो उधापति से आवे रे
कहो श्याम ने उधो राधा घरे बुलावे रे बिरज कुल
पोस महना उत्तम कहमे ठण्डी रेन सतावे रे
व्याकुल हूँ दिन रात नाथ तसे दया ना आवे रे, बिरज कुल
माह महना बसन्त पञ्चमी घर घर वसन्त छावे रे,
राधा उभी दुआर उधो अगिन जलावे रे, बिरज कुल
फागन महने बन गये रसिया घर घर फाग मनावे रे,
राधा को तन सूख्यो उधो जल भर पिचकारी लावे रे, बिरज कुल
चैत महना तड़का किस्न मधुवन आवे रे
राधा उभी धूप जलावे तोय क्या तरस नो आवे रे, बिरज कुल
वैसाख महना उत्तम कहम राधा बावरी बन म
भागी हाय का बाग मे जावे रे, बिरज कुल
जेठ महन बड सावित्री पूजे राधा मन मे स्याम समावे रे
आँसु बेना नयणा पण मुखड़े क्या मुस्कावे रे, बिरज कुल – ११२

सप्तम अध्याय

उपसंहार

१ मालवी लोकगीतों का महत्व
२ मालवी गुजराती एवं राजस्थानी लोकगीत
३. बदलते युग का इतिहास
४. सिनेमा पर लोकगीतों का प्रभाव

मालवी लोकगीतों का महत्व

लोक भाषा का माधुर्य साहित्य के ममज्ञ एवं प्रकाण्ड विद्वानों के लिये भी आकर्षण का विषय बन जाता है। जब जनता की वाणी, हृदय के रस से सिक्त होकर स्वाभाविक सरसता को अपना अन्तर्निहित गुण बना लेती है तब सभी लोगों का ध्यान सहजतया आकर्षित हो जाता है। मैथिल-कोकिल विद्यापति ने लोक भाषा के सौंदर्य एवं माधुर्य पर अभिमत प्रगट करते हुये कहा है कि लोक-वाणी अपनी मिठास के कारण सभी लोगों को प्रिय लगती है।[1] वास्तव में लोक भाषा की वन्दना का यह एक प्रशंसात्मक स्वरूप है। भारत जैसे महादेश की भिन्न भिन्न भाषा और बोलियों में प्रवाहित होकर जन हृदय का प्रकृत एवं मधुर रूप लोक-संस्कृति का संस्कार करता है। लोकगीतों में आकर जन मानस का उर्मिल स्वरूप अधिक निखरता है और गीतों के सौम्य एवं आर्द्र स्वरों में घुलमिल कर एक अनन्त रस लोक की सृष्टि करता है।

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मालवी एवं उसके लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप भी आकर्षण के कुछ तत्व अपने में छुपाये हुये है। मालवी भाषा अपनी सहोदरा गुजराती एवं राजस्थानी के स्निग्ध-कोमल रूप को समेट कर चलती है वहाँ गीतों में शृङ्गार प्रेम की धारा का समानान्तर प्रवाह भी लोक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। गुजरात और राजस्थान की भाव-सृष्टि में मालव के सांस्कृतिक हृदय की स्पन्दनशीलता को एकांगी बनाकर अलग से देखना सम्भव भी नहीं है। क्योंकि भाव, भाषा लोकाचार, संस्कृति और जन-परम्पराओं का अध्ययन करने के लिये उक्त तीनों प्रदेशों के लोकगीतों को तुलनात्मक दृष्टि से परखना आवश्यक है।

मालवी, राजस्थानी और गुजराती-लोकगीत

प्राकृतिक एवं भौगोलिक भिन्नताओं के रहते हुये भी लोक हृदय की भावधारा के शाश्वत स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आ पाता। मालवी, राजस्थानी और गुजराती के लोकगीतों में सांस्कृतिक एकता के कारण बहुत कुछ समानता पाई जाती है। गीतों के भावसाम्य के अतिरिक्त विवाह आदि के प्रसंगों से सम्बन्धित लोकाचार एवं प्रथाओं में भी बहुत कुछ

---

१ देसिल बअणा सबजन मिट्ठा —कीर्तिलता, १।१९-२२

समानता है। गुजरात में विवाह के अवसर पर चाक बधावा, मायरा, माण्डवा, पीठी नावण, तोरण आवता, सामैया (मालवी समेलो), हस्त मेलाप, चोरी (मालवी चंवरी), गृह शान्ति प्रभाती, वर घोडा (वरयात्रा), जान मा (बरात), लग्न आदि प्रसगो पर गीत गाये जा हैं।[1] मालवी मे भी विविध लोकाचारो के नाम गुजराती से मिलते-जुलते हैं और विवाह के अवसर पर उनको सम्पन्न किया जाता है । गीतो में प्रसंग, भावना आदि के साम्य के सा अनेक शब्दावलियो का एक समान पाया जाना, भाषा सम्बन्ध एव अविच्छिन्न परम्परा क परिचय देता है। मालवी और गुजराती लोकगीतो में भाव और भाषा की समानता क तुलनात्मक दृष्टि से परिचय प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त है—

मालवी	गुजराती
१ लीप्यो चुप्यो म्हारो आगणो दूधारा पीवा वालो दोजी । ढोल्या रा पोढनवाला सुआवणा थाल्या रा जीमन वाला अतघणा तासकरा जीमनवारा दोजी	१ लीप्यु ने गूप्यु मारु आगणु पगलीनो पाडनार द्योने रन्ना दे दलणा दली ने उभी रही पगलीनो पाडनार द्योने रन्ना दे रोटला घडी ने उभी रही चानकीगो मागनार द्योने रन्ना दे वाझिया मेणा माता दोह्याता — रढि० १ पृष्ठ ८०-८
२ मदी बोई खेत में उगी वालू रेत मे छोटो देवर लाडलो उ मेंदी को रखवाल छोटी ननद लाडली वा मदी चू टन जाय — मालवी लोकगीत, पृष्ठ ४१	२ मेंदी तो वावी माळवे ऐनो रग गियो गुजरात मेदी रग लाग्यो रे नानो देरिडो लाडको ने काई लाव्यो मेदीनो छोड । मदी — रढि० १, पृष्ठ १
३ चटक चादनी सी रात ओ गोरी तो रमवा नीसरया जी म्हारा राज रम्या रम्या घडी दोई रात ओ सायब तेडो माकेल्योजी, म्हारा राज	३ आवी रुडी अजवाली रात राते ते रमवा साचर्या रे माणा र रम्या रम्या पोर बे पोर सायबोजी तेडा मोकले रे माणा र घेरे आवो घरडानी नार

---

१ चूनड़ी, भाग २, भूमिका।

मानो मानो मोटा घर नी नार ओ
घरे चालो आपना जो, म्हारा राज
— १।२२१

वीरा म्हारा लेवा के आया
अच्छा अच्छा सगुन विचारया
हो राज
जद म्हारा वीरा काकड आया
बागारी दूब हुरियाई, हो राज
जद म्हारा वीरा द्वारे आया
द्वार —१।२०

ऊँचा हो आलोजा तमारा ओवरा
नीचो वधावा पटसाल
राजारा मेला में सारस रमी रया
— मालवी लोकगीत, पृष्ठ ११

बागा में बाज जगो ढोल
सेर में बाजे सरनारी
आयो म्हारो माडी जायो वीर
चूनड लायो रेशमी — ३।७

चाद गयो गुजरात
हिरणी उगेगा ।

८ गाजोनी गडल्यो रे म्हारी माई
मेवलो नो बरस्यो
म्हारी माई मेवलो नी बरस्यो
आगण में कोचड क्यो मचो —१।५०

९ सन्देश-वाहक लाल परवा
उड उड रे म्हारा लाल परेवा
नगर बधावो दीजे रे
गाव नी जाणू नाम नी जाणू
कीना घर दू बधाओ जी
—मालवी लोकगीत, १४

अमारे जावु चाकरी रे माणा राज
— रढ़ि० १, पृष्ठ ३५

४ दादा धोडी दखीआ
वीर ने आणे मेलय
मलूगर आबलीओ ।
वीरो आव्यो सीमडीए
सीमु लेरे जाय, मलूगर
— रढ़ि० १, पृष्ठ ५७

५ ऊची मेडी ते मारा सायबानो रे
लोल
नीची नीची फूलवाडी झुकाझूक
हूँ तो रमवा गई ती रे
मोती बाग मा रे लोल
— रढ़ि० २ भूमिका पृष्ठ १८

६ वाग्या वाग्या जगीना ढोल
घरणायु वागे रे सरवा सादनो,
उडे उडे अबील गुलाल
दारुडो उडे रे मोघा मूलनो
— चूदडी भाग २, पृष्ठ २७

७ वीरा चादलियो उग्यो
ने हरण्य आथमीरे ।
— चूदडी १, पृष्ठ ५६

८ काईं मेहुलिया नो वरस्यो
काई वीजलडी नो झबकी रे
काई वाहोलिया नो वाया रे
काई आवडला ने आवडा रे
— चूदडी १, पृष्ठ ४०

९ सन्देश-वाहक भ्रमर
डुगर कोरी ने नीसर्यो ममरो
जाजे रे भमरा नोत रे
गाम न जाणु वेनी नाम न जाणु
किया वा रामा घेर नोत रे
— चूदडी भाग १, पृष्ठ ३२

गुजराती की तरह राजस्थानी लोकगीता का भी मालवी गीता से अधिक निकट का सम्बन्ध है। राजस्थानी और मालवी लोक परम्परा की एकात्मता का प्रमुख कारण यह भी है कि जो जातियाँ राजस्थान से मालव में आकर बसी थी, उनके संस्कार और गीता का प्रभाव यहा की गीत परम्परा का गहराई के साथ स्पर्श कर गया। अनेक राजस्थानी गात तो ऐसे हैं जो मालवी में शब्दश प्रचलित है और स्थूल दृष्टि से देखने वाला को इनमें कोई अन्तर दिखाई नहीं देता है किन्तु मालव की सीमा में आकर इन गीता के बाह्य रूप में कुछ फेर बदल होकर गीत पद्धति एव लोक धुनों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। राजस्थान का प्रसिद्ध गीत पणिहारी [1] मालवी में आकर "पणिहारी मिरगानैणी" बन गया। इसी तरह रतजगा के गीता में भी माता, कुलदेवी, भेरूजी आदि देवी देवताओं के गीता ने एक भिन्न स्वरूप धारण कर लिया है। अभिव्यक्ति की शैली, उपमाना की रूढ़ परम्परा और भावनाओं में कोई अन्तर नहीं होते हुये भी मालवी और राजस्थानी लोकगीता का स्थान भेद भाषा भेद एव रसानुभूति के स्तर की भिन्नता नारी मानस के कल्पना लोक में स्पष्ट हो जाती है। मालवी और राजस्थानी लोक गीता की मार्मिकता और भाषा माधुर्य परम्परा की एकता में भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। निम्नलिखित उद्धरणों में उक्त तथ्य का समर्थन हो जाता है।

मालवी

१. (रतजगा का गीत)

कुल देवी का नखशिख वर्णन

सीस बागडोयो नारेल ओ माता
सीस वागडोयो नारेल
चोटी माता वासग रमी रया
पाटी चाद पंवासिया ए माय
आख्या आम्बारा फाक ओ माता
भाँपण भमरा भमी रया ए माय
नाक सुवारी चोंच ओ माता
होठ पनवाड्या छई रया ओ माय
दात दाडम रा बीज माता
जीभ कमल की पाखडी ए माय
बाया चम्पा केरी डाल
मूँगफली सी आंगल्या ए माय
पेट पोयर को पान माता

राजस्थानी

१. (गणगौर का गीत)

गौरी के नख शिख का वर्णन

है गवरल रूडो है नजारो
तीखो है नेणा रो
सीस है नारेला गवरल सारियो
हो जी बे री वेणी छे वासग नाग
भँवारे हो भँवरो गवरल हे फरे
लिलवट आगल चार
आखडिया रतने जडी
बे री नाक सूआ केरी चूच
मिसराया चुनी जडी
बे रा दात दाडम केरा बीज
हिवडे संचे ढालियो
बे री छाती बजर किवाड
मूगफली सी गवरल आगली

---

१ राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ २५४

हिवडो सचे ढालिया ए माय
जाघा देवरा रा थम्भ माता
पीडल्या बेलण वेलिया ए माय
पाव रुपारी खान माता
एडी सचे ढालिया ए माय
के स्हाने घडोया रे सुनार
वे स्हाने सचे ढालिया ए माय
नइ म्हने घडोया सुनार रे सेवग
नइ म्हने मचे ढालिया रे
रूप दियो करतार रे सेवग
जनम दियो म्हारी मायडो – ११७१

वे री बाय चम्पा केरी डाल
पिंडलियो रोमालिया
वे री जाँघ देवल केरी थाभ
एडी चमके गवरल आरसी
वरा पजो सतवा सू ठ
किण तने घडी रे मिलावटे
वेने क्या तो लाल लुहार
जनम दियो म्हारो मायडो
वे ने रूप दियो करतार
–राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ ३९–४१

२ प्रसग बधावा

म्हारा सुसराजी गाव का गरास्या
म्हारी सासु अलख भण्डार
म्हारा जेठजी बाज उद बेरखां
म्हारी जठानी बेरखानी लूम
म्हारो देवर दातानो चुडलो
म्हारी देवरानी चुडलानी चाप
म्हारी नणदल कसूमल काचली
म्हारा ननदोई काचलो नी कोर
म्हारो नानो कुको हाथ की मुदडी
म्हारी कुन बहू हिवडो हार
म्हारा सायब लिलवट टिलटी
म्हारी सोकड पगनी पेजार
वारू वडवड तमारी जीवने
वरण्या सोई परिवार
वारू सासूजी तमारी कूख ने
– (चन्द्रसिह भाला के लेख से उद्धृत
वीणा, दिसम्बर १९५४)

२. प्रसग बधावा

म्हारो सुसरोजी गढवा राजवी
सासुजी म्हारा रतन भण्डार
म्हारा जेठ जी बाजू बद बाकडा
जेठानी म्हारी बाजूबद री ल ब
म्हारो देवर चुडलो दात रो
देराणी म्हारी चुडलारी मजीठ
म्हारी नणद कसूमल काचली
नणदोई म्हारे गजमोत्या रो हार
म्हारो कु वर घर रो चानणो
कुल बऊ ए दिवले री जोत
म्हारो सायब सिर रो सेवरो
सायबाणी म्हे तो सेजा रो सिणगार
म्हे तो वारया ए वहूजी थारा बोलणे
लडायो म्हारो सो परिवार
–(राजस्थान के लोकगीत पृष्ठ ११२ १३)

३ प्रसग वन्याक (विनायक पूजा)

चालो गजानन्द जोसी क्यां चाला
तो आछा आछा लगन लिखावा
गजानन्द जोसी क्या चाला
कोठारे छज्जे नौबत बाजे

३ हालो विनायक आपा,जोसी रे हालर
चोखासा लगन लिखासां
हे म्हारो विडद विनायक
—राजस्थान के लोकगीत पृष्ठ १३३

नोबत बाजे इन्दरगढ़ गाजे
तो भीनी भीनी भालर बाजे
—मालवी गीत, पृष्ठ ७२

४ प्रसंग, मायरा

बीरा म्हारे माथा ने मेमद लाजो
म्हारी रखड़ी रतन जड़ाजो जी
बीरा रमा भमा से म्हारा आजो
बीरा आप आजो ने भावज लाजो
सरदार भतीजा लारे लाजोजी
बीरा रमा भमा —१।८०

(५) धूप पड़े धरती तपे रे बना
चन्द्र बदन कुम्लाय
जो मैं होती बादली रे बना
सूरज लेता छिपाय
—मालवी दोहे क्रमांक ६६

४ प्रसंग, माहेरा या भात

बीरा म्हारे मायाने महमद ला
म्हारी रखडी बैठ घडा ज्यो
म्हारा रिमक भिमक भानो आ
बीरा थे आजोरे भाभी लाज्यो
नन्दलाल भतीजो गोदी लाज्यो
बीरा
— राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ २१

५ धूप पड़े धरती तपे
म्हारो रग बनडो लूळ लूळ जा
जो मैं होती बादळी
लेती किरण छिपाय जी
— राजस्थान के लोकगीत, पृष्ठ १६

भाव और भाषा साम्य के अतिरिक्त मालवी, गुजराती और राजस्थानी लोकगीतों में कुछ रूढ़ पद्धतियों का समावेश मिलता है, जिसमें वस्तु विशेष के लिये निश्चित शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता है।

अश्वारोहण के लिये	पलाण शब्द का प्रयोग
अश्व के लिये	तेजी, लीलडी, लावेणी, घुड़ला घाडला
अश्वारोही एवं उसके सौन्दर्य के लिये	पातलियो अस्वार
वर के लिये	रायवर, रायजादा
सुन्दर स्त्री के लिये	पद्मणी
भाई के लिये	माडी जाया वीर, जामण जायो, बीरा
पति के लिये	नणद बाई रा वीर, बाईजी रा बीर
वस्त्र के लिये	चूनड चूनडी, दखणी को चीर सालू, पोमचो, पीळ्या
दिशाओं के लिये	उगमणा (पूर्व) आथमणा (पश्चिम)
उद्यान के लिये	चम्पा बाग, नवलख बाग

वृक्षों में आम और केल का सर्वाधिक उल्लेख।
पुष्पों में चम्पा, केवडा, मरवा, मोगरा का वर्णन।
(आवन्तरो के फूल का वर्णन केवल गुजराती लोकगीतों में प्राप्त होता है)

बदलते युग का इतिहास

लोकगीतों में इतिहास का अङ्कन अवश्य होता है । किन्तु उसके चित्र अस्पष्ट एवं रेखाएँ धुंधली रहती हैं । मालवी लोकगीतों में राजपूतकालीन वीर-गाथाओं का इतिहास अत्यन्त ही धूमिल हो गया है । वीर बगड़ावतों की युद्ध प्रियता एवं शौर्य का इतिहास गूजरों की हीड़ में समा गया है और तेज्या धोल्या जैसे अज्ञात वीर नाग-पूजा से सम्बन्धित होकर जाट जाति के परम-पूज्य बन गये हैं । अन्ध श्रद्धा एवं परम्परा की परता में उनका इतिहास एवं युग विशेष की जानकारी प्राप्त करना कठिन अवश्य है, किन्तु सर्वदा दुर्लभ नहीं है । इसी तरह वीर-परम्परा से सम्बन्धित सतियों का इतिहास भी लोकगीतों में सुरक्षित है । जिन अज्ञात वीरांगनाओं के सम्बन्ध में इतिहास मौन है, लोकगीत उनके गौरवमय बलिदान की कहानी सुनाता है । चोवा हेमा और नोजा नाम की जिन सतियों का उल्लेख एक लोकगीत में हुआ है, वे केवल कल्पना जगत की पात्र नहीं हो सकती । अभी तक के प्राप्त मालवी गीतों में राजपूत एवं मुगलकालीन झांकी इससे अधिक नहीं मिल सकती ।

उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशी अंग्रेजों से जूझने में अनेक वीरों ने अपना बलिदान किया होगा । इसके अतिरिक्त आविष्कारों के युग में भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ ही अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन भी उपस्थित हुये हैं । लोकगीतों में यत्र-तत्र उनका संकेत मात्र मिलता है । विगत दो शताब्दियों में इतिहास प्रसिद्ध केवल दो व्यक्तित्व ही ऐसे हैं जिन्होंने यहां के जन मानस को प्रभावित किया है । होल्कर वंश की महारानी अहिल्याबाई ने धर्म, दान और उदारता के पुण्यमय कृत्यों से जनता के हृदय में, उनके गीतों में पवित्र स्मृति के रूप में अपना स्थान बनाया और नरसिंहगढ़ के एक राजपूत वीर चैनसिंह ने अंग्रेजों से जूझकर अपने वीरत्व की अमिट स्मृति को जन मानस पर अङ्कित किया है ।[1]

स्त्रियों ने इतिहास की इस महत्वपूर्ण घटना को लोकगीतों के अनुरूप ढाल कर अधिक रसात्मक बना दिया है ।

राजा सोबालसिंग का चैनसिंग मुलक म राज करयो
कचेरियां बैठता जी साब बरजा, नी हो कुंवर तमारी लड़वा की वेस
भैस्या दुवारता भाई बोल्या, नी हो दादा तमारी लड़वा की वेस
पालणा पे बैठता माजी-बाई बोल्या, नी रे बेटा त्हारी लड़वा की वेस

---

१ चैनसिंह मालव की नृसिंहगढ़ रियासत के राजा सौभाग्यसिंह का पुत्र था । अंग्रेजों ने भोपाल के पास सिहोर की छावनी में धोखा देकर चैनसिंह को गिरफ्तार करने की चेष्टा की । हिम्मत खां एवं बहादुर खां नामक अपने दो वीर साथियों के साथ चैनसिंह वीर गति को प्राप्त हुआ । सिहोर में चैनसिंह की समाधि (छत्री) एवं हिम्मत खां बहादुर खां की कब्रें स्मृति के रूप में आज भी विद्यमान हैं । लोकगीतों में हिम्मत खां और बहादुर खां के नाम हिंदर खां और बदर खां के रूप में बदल गये हैं ।

सेज्या सवारता गोरी हो बोल्या, नी ओ आलीजा थाकी लडवा की जेस
हिदर खा विदर खा यू कर बाल्या, एकला से पड ग्यो है काम
भाई भतीजा घरे रे रया चैनसिंग, एकला से पड ग्यो रे काम
भाई भतीजा घर है रया चैनसिंग, एकला से पड ग्या है काम
सीस कटायो ने,घाट वधायो, मुख पै उडे रे गुलाल
मीवर मे डेरा डाल्या, धड से करयो है जुवार —२।१२२

इतिहास की सामान्य एव स्थूल घटनाओ के अतिरिक्त युग विशेष के परिवर्तन मे भी जन-जीवन मे एक नवीन उत्क्रान्ति होती है और उसका प्रभाव दैनिक जीवन के क्रम पर भी पडता है। यान्त्रिक सभ्यता के विकास ने भारत के नागरिक जीवन पर पर्याप्त असर डाला है। यन्त्र विशेष का प्रथम दर्शन भारतीयों के लिये कौतूहल का विषय रहा होगा। कुए और सरोवर से जल लाने वाली नगर की महिलाओ को नल के जल को प्राप्त करने मे एक नवीन अनुभव हुआ। नल का पानी सर्दी और जुकाम उत्पन्न करने का कारण भी बन गया। एक मालवी लोकगीत मे महिलाएँ फिरङ्गी राजा से नल न लगाने का आग्रह करती हैं।

फिरङ्गी नल मत लगवा रे, फिरङ्गी नल मत लगवा रे
नल को पानी सीत करे जा, म्हारो जी घबरावे

नल के अतिरिक्त दैनिक जीवन की आवश्यकता और सुविधा के लिये विद्युत् से सम्बन्धित अनेक आविष्कारो ने नागरिक जीवन को प्रभावित अवश्य किया है। परन्तु उनका आकर्षण लोकगीतो मे अभी नही उतर पाया है। यातायात के साधनो मे एक अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है, उसकी ओर नारी मानस का ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ है।

प्राचीन काल म एव मध्य-युग म यातायात का प्रमुख साधन बैलगाडी तथा अश्व रहा है। प्राचीन लोकगीतों में गाडी और अश्व का उल्लेख बराबर हुआ है। गाडी और अश्व का गति को जिस समय मोटर और रेल ने पीछे ढकेल दिया तब उसकी महत्ता को लोकगीतो न भी स्वीकार किया कि युग की दौड म गाडी और छकडे तो पीछे रह गये और रेल तेजी से दौडने लगी।[1] रेल के पश्चात् मोटर एव उससे भी तेज गति स उडने वाले हवाई-जहाज मे बैठने की कामना नारी मानस मे जाग्रत हो उठी। आज रेल तो सर्व साधारण के लिये तो सुलभ है किन्तु मोटरकार और वायुयान की सैर करने की कामना जन-मानस मे अकुरित होती रहती है।[2] रेल, मोटर, हवाई जहाज जैसे यान्त्रिक आविष्कारो क

---

१ निकोडा बाया तुम्बा रे उज्जन भाई बेल।
घोडा छकडा रई ग्या ने दौडी गई रेल॥

२ क धना चोरा सो रुल देर रेल मे बठो रेल मे बठो
खडया से छूटी रेल आगरा देखो – १।१११

ख बनी म्हारी बठो उडतो जहाज में
आज कलकत्ता से आई, ठोकर बम्बई मेर में पाई
उसमे पसे की ठहाई
बनी म्हारी लागे सोई मगवाय, बठो उडतो जहाज मे – १।१०२

ग मोटर धीरे चलने दे रे ड्राइवर, बनडो है नादान – ३।३६

प्रति जन मानस में जो प्रथम कौतूहल उत्पन्न हुआ था उसकी झलक भी लोकगीतों में मिल जाती है। किसी नदी पर बने हुये विशाल पुल पर से गुजरती हुई रेल के दृश्य को भी एक गीत में अङ्कित किया है।[1] परिवहन के साधनों के सम्बन्ध में लोक-मानस में एक निश्चित धारणा है कि मोटर आदि तो सुख और वैभव की वस्तु है और जन सामान्य के लिये अप्राप्य है। जनता का वाहन तो गाडी है, टमटम में राजा बैठता है, मोटर मे बाबू बैठता है और साधारण लोगों के लिये तो बैलगाडी ही है।[2] परिवहन के साधनों के अतिरिक्त नागरिक जीवन में नौकरी के रूप मे आजीविका प्राप्ति के साधन से नारी के दाम्पत्य जीवन पर भी असर हुआ। लोकगीतों की नारी का प्रियतम वसन्त और वर्षा ऋतु में मिलन की आकांक्षा रखते हुये भी मिलन योग को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है।[3]

अंग्रेजी शासन मे दलित भारतीय राष्ट्र मे अनेक रोमांचकारी घटनाएं होती रही हैं किन्तु उसका प्रभाव उच्च स्तर व शिक्षित लोगों तक ही सीमित रहा। देश व्यापी एवं जन जीवन को स्पर्श करने वाली घटनाओं से ही जन जीवन में हलचल हो सकती है। पिछले पचीस वर्षों में केवल दो घटनाएं हुई हैं जिसने अकाल और दासता से पीड़ित जन मानस की सुप्त चेतना को झकझोर दिया था। महात्मा गांधी द्वारा प्रेरित राष्ट्रीयता के लिये संग्राम एवं खादी का आंदोलन तथा दो महायुद्धों से प्रभावित महंगाई ने साधारण जन-जीवन को व्यापक रूप मे स्पर्श किया है। गांधीजी जन मानस के लिए अत्याचार और पाप के विरुद्ध जूमने वाली एक जीवित आदर्श की मूर्ति के रूप मे सामने आये। उनकी त्याग-तपस्या और भारतीय धर्म से आवेष्ठित साधना के कारण उनका नाम स्मरण कर मनुष्य अपने कुकर्मों का प्रायश्चित करने की चेष्टा भी करते हैं। एक मालवी लोकगीत में इसी तरह की भावना अभिव्यक्त हुई है।

> जै बोलो महात्मा गांधी की
> बेटी का पइसा से पेटी भराई – (पाठान्तर-पईसा)
> लग गया चोर साथे जी, जै बोलो महात्मा गांधी की
> बेटी का पइसा मे जात जिमाई, कलबल कोडा होय जी, जै बोलो–३।१३८

कन्या के विवाह मे वर पक्ष से रुपया लेकर सामाजिक पाप करने वाले व्यक्ति को सावधान किया गया है कि महात्मा गांधी की जय बोलकर अपने पाप का प्रायश्चित कर ले अन्यथा बेटी को बेचकर जो पाप किया है तो तेरे शरीर में मरने तक कीड़े कलबल करेंगे। गांधाजी के नाम के पुण्य-स्मरण के साथ ही जनता ने खादी की महत्ता के गीत भी गाये हैं।

---

१ चन्द्रकोट दरवाजा उपर चले रेल गाडी – गीत की एक पंक्ति।

२ राजा की टमटम आवेगी बाबू की मोटर आवेगी
हमारी गाडी आवेगी, काला पीपल की घाटी
चढ़ते म्हारी छाती फाटी —३।४७

३ सरद ऋतु सावन की आई, गरम ऋतु फागण की आई
क्या करू मेरी जान, नौकरी बगले की पाई – ३।२०

हाथ से कता हुआ सूत स्वतन्त्रता का प्रतीक होकर लोकगीतों में व्यक्ति को आत्म निर्भर होने की प्रेरणा भी देता है। पति से प्रताड़ित होने पर मालवी नारी सूत कात कर अपना आजीविका प्राप्त करने के लिये स्वावलम्बी बनने की घोषणा कर देता है।

राती पायर पडास कातांगा रेंटयो जी म्हाराज
जावांगा जावरिया रे हाट मागो करा वेचांगा म्हारा राज
रुपया रुपया को म्हारो तार
माहरां री म्हारी कूकडी जो म्हारा राज [१]

स्वावलम्बी जीवन का आदर्श स्वाभिमान के साथ अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देता है। भारत के ग्राम ग्राम मे गांधीजी के स्वदेशी आन्दोलन ने धूम मचा रखी थी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं स्वदेशी के प्रति ममत्व का भाव मालवी लोकगीतों की नारी ने उत्साह के साथ प्रकट किया है।

बना लगना रे लगना काँई करो, बना चीरा रे चीरा काँई करो
काई लगना की लिखत हजार, चलन चल्यो खादी को
किने चलायो लिल्यो रेसमी रे तो किने दियो उपदेस
चलन चल्यो खादी को, जर्मन चलायो लिल्यो रेसमी रे
गांधी जी दियो उपदेस, तो बनडा ने लियो उपदेस
चलन चल्यो खादी को —१।१०६
चोरा तो तम पैरो बना जी, बना सुदेसी बापरोजी
जी वायल मलमल छोड दीजो, जी खादी धर लो पास
सुदेसी बापरो जी – १।१०८

स्वदेशी आन्दोलन के साथ ही महायुद्ध के कारण विश्व-व्यापी महगाई ने युद्ध की ज्वाला से भी भयङ्कर विषमताएं उत्पन्न की और दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करना भी कठिन हो गया। भारतीय नारी के लिये अन्न-वस्त्र की अपेक्षा उसके सौभाग्य शृङ्गार के उपकरणों का अधिक महत्व है किन्तु प्रथम महायुद्ध मे उत्पन्न महगाई ने नारी हृदय को अधिक त्रस्त किया है। सौभाग्य सिन्दूर, कुंकुम आदि भी महगे हो गये और जीवन के इस चरम कष्ट से दुःखी होकर मालवी नारी का हृदय युद्ध लिप्सु हिटलर के प्रति उबल ही पड़ा।

जर्मन का बादसा मती लड रे अङ्गरेज से
जा पडे बिजली गोला बरसे समन्दर भाज म
जी हरो रङ्ग पीलो रङ्ग मोंगो कर दया कङ्कू कर दयो फीको
जी लाल रंग को भाव चडई दयो, लुगडा काय से रंगा र, जर्मन का [२]

प्रथम महायुद्ध की बात जान दीजिये। भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी गिरट

१ मालवी लोकगीत, पृष्ठ २२
२ मालवी लोकगीत, पृष्ठ १००

का जलना चादी के चलन और महगाई की मार लक्ष्य कर युग की विषमता के विरुद्ध जन-मानस की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है —

गिलट की चादी चल गई जी
गिलट की चादी चल गई जी, बडा घरा की नार गिलट मे
जग मग हो गई जी   ग्राम पर केरी लग रई जी
गुड का चढ़ गया भाव सकर की मगी हुई गई जी – ११।१००

सिनेमा का लोकगीतों पर प्रभाव

मौखिक परम्परा में किसी भी देश का लोक-साहित्य अनन्त काल तक अपना अस्तित्व कायम रख सकता है, यदि जन मानस में सामूहिक चेतना के साथ अपनी परम्परा, विश्वास और मान्यताओं के प्रति अटल श्रद्धा (चाहे वह अन्ध श्रद्धा ही क्यो न हो) बनी रह सके। समय के बहते प्रवाह मे लोक-परम्परा की मूल प्रकृति भी चट्टान की तरह अडिग रहने की क्षमता अपने आप में छिपाये हुए है किन्तु विकास के क्रम में मानव अस्तित्व समय की लहर मे एकदम अछूता भी नही रह सकता है। सभ्यता, सस्कृति और शिक्षा के प्रति अपनाये गए भारतीय दृष्टिकोण मे लोकाचार के नाम पर पुरातन परम्परा एव लोकगीतो के अस्तित्व पर आँच आने का उतना भय नहा है जितना कि पश्चिम की भौतिक एव यान्त्रिक सभ्यता के आकर्षण की मोहिनी माया का। अग्रेजी शिक्षा और सस्कृति का प्रभाव हमारी लोक-परम्परा पर अधिक घातक सिद्ध हुआ है। पढे लिखे लोगो को गीतो में ग्राम के गवारपन की बू आने लगी है और उन्हे इस क्षेत्र को प्राय घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। उच्च शिक्षा प्राप्त अभिजात्य परम्परा मे लोकगीतो का लोप होता जा रहा है। शिक्षा से नारी जाति मे भी परम्परागत गीतो के लिए अब सकट उत्पन्न हो गया है। आजकल की पढी-लिखी लडकियो को तो गीत गाने मे शर्म आती है और बूढी महिलाओ के जीवन की समाप्ति के साथ ही लोकगीतो का अपना जीवन भी समाप्त होता दिखाई दे रहा है। वास्तव में शिक्षा ने अन्य मौखिक परम्पराओ के साथ लोकगीतों का भी अहित किया है। शिक्षा के इस व्यापक एव अवश्यम्भावी प्रभाव का अध्ययन और विश्लेषण कर पश्चिमीय लोक-सस्कृति के मर्मज्ञ विद्वानो ने तो यह धारणा बना ली है कि मौखिक परम्परा और लोक-सस्कृति का शिक्षा से कोई उपकार नही होता। कोई भी जाति जब पढना लिखना सीख जाती है तो सर्वप्रथम वह अपनी परम्परागत गाथाओं का तिरस्कार करना भी सीख लेती है। उसे इस प्रकार की परम्पराओ से लज्जा का अनुभव होने लगता है और धीरे धीरे मौखिक साहित्य को स्मृति मे रखकर उसको प्रचलित रखने की क्षमता और प्रयास दोनो से ही उसे विहीन होना पडता है। इस प्रवृत्ति का अन्तिम परिणाम यह होता है कि एक समय में सामान्य जनता की सामूहिक भाव-सम्पत्ति केवल अपढ़ और गँवार लोगो की पैत्रक धरोहर मात्र रह जाती है।[1]

---

१ प्रो० जेम्स चाइल्ड द्वारा सग्रहीत दी इगलिश एण्ड स्काटिश पाप्युलर बेलड्स की भूमिका के आधार पर, पृष्ठ ११।१२

विज्ञान के नित नए आविष्कारों के साथ चलचित्रों के व्यापक प्रचार ने भी जन-मानस में व्याप्त विचार-परम्पराओं को झकझोर दिया है। किसी वस्तु को अच्छी दृष्टि से नहीं देखने वाले पुरातनवादी एवं दृढ विचारों के असरग्रस्तमना व्यक्ति भी सिनेमा के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। अनुकरण की प्रवृत्ति में तत्पर नगर की स्त्रियों पर तो सिनेमा के गानों का सबसे अधिक असर हुआ है। ग्राम का क्षेत्र अभी अछूता है और वहाँ लोकगीतों की परम्परा के पथभ्रष्ट अथवा लुप्त हो जाने का उतना भय नहीं है जितना कि नगर में। नगर की स्त्रियाँ सिनेमा के गानों की भद्दी नकल पर अपने परम्परागत गीतों को तिलांजलि देती जा रही हैं। ऐसे गीतों में जहाँ एक ओर लोक भाषा के स्वाभाविक सौन्दर्य की हत्या होती है वहाँ दूसरी ओर भावनाओं की शाश्वत धारा भी विकृति की ओर मुड़ जाती है। किन्तु सिनेमा के गीतों की धुनों के आधार पर आज धड़ल्ले से सारहीन गीतों का प्रचार बढता जा रहा है जिससे नारी हृदय की प्रकृत रस धारा अदृष्ट हो रही है। मालव के नगरों में प्रचलित सिनेमा से प्रभावित कुछ गीत दिये जा रहे हैं, जिनसे नारी मानस की रुचि और प्रवृत्ति का मोड़ स्पष्ट हो जाता है।

१ मेरा दिल चावे बना आपसे मिलने के लिए
कहो तो चिट्ठी भेजूं कहो तो तारट भेजूं
भेजूं मोटर कार आपसे मिलने के लिए
कहो तो गाडी भेजूं कहो तो मोटर भेजूं
कहो तो भेजूं हवई जहाज वो सनाटे आवे
मेरा दिल — १८८५

२ दादा शरबत का प्याला अनार मगवा दो
एकला नइ पीवा बना को बुलवा दो
दादा हीरा को जडो अगूठी मोत्याँ को हार मगवा दो
एकला नइ पैरा बना को बुलवा दो

(अन्य वस्तुओं के नाम) —१८८६

३ कैसे खडी है बलम नजर धर के, कभी देखते न बना नजर भर के
मैं चूडिया लाया शोक करके, कभी पैरते न देखा नजर भर के
कैसे खडी है बलम अकड करके, मैं तो साडी लाया सैंडल भी लाया
कभी पैरते न देखा जी भरके, ऐसी मारु गी बन्दूक गोली भर के
कैसे १८८९

४ बना खडा कमरे मे हसे मन मन मे, बनी के घर जाना है
सीस पे बना के मोनी सोवे, दुपट्टा पैरा के विदा कर दो
फूलो की बरसा कर दो, बनी के घर जाना है —१८९१

५ ढाई हजार से कम नइ चइये, घर म बउ बुलाने कूँ
दो सौ रुपये साडी चइये, दस की चैन टकाने कूँ
भर्‌या बजार मे बगलो चइये, कुर्सी मेज लगाने कूँ
दो सौ रुपये का पोपलीन चइये, ढाई हजार —१।६२

उपरोक्त गीतों के प्रतिरिक्त सिनेमा मे गाये गये गीता ने भी विवाह के गाथा में अपना स्थान बना लिया है।[1] इस प्रकार के गीता के प्रचलन से दो प्रकार के सकट उत्पन्न हो गये हैं —

१ नारी में गीत निर्माण की मौलिक प्रवृत्ति में अवरोध उत्पन्न होने से शाश्वत भावना की अपेक्षा अनुकरण करने के कारण लोकगीता का भावगत एव भाषा गत माधुर्य समाप्त हो जाएगा।

२ सिनेमा के गीता की धुना को अपनाने के कारण परम्परागत लोकधुनो के अस्तित्व की समाप्ति के साथ ही नवीन धुना का निर्माण भी रुक जाएगा।

भाव, भाषा और लोक-सगीत इन तीनो पर सिनेमा के गीतो की छाया पड रही है और यह *असम्भव नही है कि कालान्तर मे इसका व्यापक कुप्रभाव नगर से ग्रामा की ओर* अग्रसर होकर परम्परा-प्राप्त लोकगीता के अस्तित्व का ही समाप्त कर दे। स्त्रियाँ सिनेमा के गीता को अपना रही हैं और सिने जगत के कुछ कला प्रेमी एव सास्कृतिक चेतना से आलोकित मस्तिष्क के कलाकार लोक कला, लोक-सगीत एव लोकगीता को अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ सगीत निर्देशको ने लोकगीता को लय माधुरी मे, लोक धुना मे सिनेमा के गीता को ढालकर मनोरजन के साथ ही जन-जीवन की परम्परा को सजीव एवं स्पन्दनशील बनाने की चेष्टा की है। सचिनदेव बर्मन, अनिल विश्वास नन्दलाल गुप्ता, सलील चौधरी, प० गोविन्दराम एव जमालसेन आदि सिने ससार के सगीत निर्देशकों ने भारतीय लोक संगीत के लिये वास्तव में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। जनता को आकर्षित करने के लिये जनता की कला का आश्रय ही हमारे सास्कृतिक पुनरुत्थान की दिशा में विशेष महत्व रखता है। यह बडी प्रसन्नता की बात है कि कला के प्रति सुरुचि-पूर्ण भाव नाओ का जाग्रत करने के दायित्व को युग की आवश्यकता के अनुकूल ग्रहण किया जा रहा है।

---

१ राजा की आयगी बरात, रगीली होगी रात
मगन हो मैं नाचू गी आदि गीत प्रचलित हैं।

परिशिष्ट—१ (अ) लोरियां

मालवी लोरिया

१ हलो रे हलो रे भई,
नाना ने पालने रेशम डोर,
हुलरावे जिने घुगरी ने गोळ,
आवो रे चिड़िया रगरोल करा,
छ मन चोगा त्यार करा,
नाना भई को ब्याव करा।

२ नाना ने राख्यो एक पड़ो,
उने जिमावा सीरा ने पूड़ी,
नाना के पालना पाट का फूंदा,
भूला दे विने घी का लूंदा,
नाना के आगणे पाकी बोर,
आग्रो रे छोरा छोरयां,
आग्रो रे बोर,
काच्चा काच्चा फेंकी दो,
पाका पाका म्हारा नाना के दो।

३ हलो रे नाना भूलो रे भई,
नानाजी म्हारो अटेरो घणो,
घी खावा को पटेरो घणो,
घुरे रे कुतरा घुरे रे बिलाई।

४ हलो रे नाना भूलो रे नाना
हूल रे नाना हूल रे,
दूध बतासा पीले रे नाना
हलो रे नाना हलो रे भई,
नाना का मामाजी भूला दे
हलो रे नाना भूलो रे नाना।

५ हलो रे नाना हलो रे भई,
गुदजा रे नाना एक पड़ी, [1]
थारे जिमऊँ सीरो ने पूड़ी,
सीरा पूड़ी में घी घणो,
नाना उपर जो घणो,
हलो रे नाना, हलो रे भई

६ नाना तो म्हारा रायां को,
दूध पिए दस गाया को,
चिड़ी चिड़ो थारो ब्याव करूं,
छ मन चोगा त्यार करु,
गुड़ली गुड़ली पानी मरु,
म्हारा नाना उपर लूण करूं
लूण करो ने रई रे भई,
नाना को करो सगई रे भई।

७ सुदजा नाना झोली में,
हलो रे नाना हलो रे भई,
नाना की बाई तो पानी गई
घर में कुतरा घेर गई,
कुतरा ने करयो उजाड रे भई,
नाना के पड़ी गया धमका चार,
हलो रे नाना हलो रे भई।

८ हलो रे नाना हलो रे भई,
हालर हुलर हाँसी को,
लाल चूड़ो नानी की माँसी को,
पग टूटो नाना की भूआ को।

---

१ पाठान्तर, हलो रे भुलो रे हाँसी को,

सुइजा रे नाना झोली में,
थारी भूआ गई होली में,
हलो रे नाना हलो रे भई।

९ नाना का काकाजी देसावरिया,
गड गुजरात,
माजळ रात,
नाना की टोपी नित नयी,
टोपी फुन्दा वाली,
वा नाना का माथे सोवे
मायड मन हरके
नाना की टोपी नित नयी।

१० सुइजा रे नाना झोली में
माथे टोपी मखमल की
गले खु गाळी चार सौ की,
माथे टोपी गोटा की,
पाव में पन्नी कचन की,
सुइजा रे नाना

११ नानो तो नगजी मोटो नाम
उ जाई वोल्यो मामाजी के गाम
मामाजी ने दी छागर गाय
कुण धुवे कुण उचरवाने जाय,
रस दूध तो म्हारो नानो खाय
छोटी बेया उचरवाने जाय।

१२ सुइजा रे नाना एक घडी ।
थारी मा खइले चार घडी
हागी भर्यो जो गोदडी में
वा तो नद्दी धोवाने जाय
नद्दी का डेंडका मारी मारी खाय।

१३ नाना भाई नाना भई करती थी
रस में पोळी पोती थी,
रस में प्रड गई कांकरिया
नाना का बाप ठाकरिया
ठाकरिया ठकराई करे
नाना भई उपर चॅवर दुले।

(आ)

मामेरा (वीरा)

१ वीरा रमाझमा से म्हारे आजो
वीरा माथा ने मेमद लाजो म्हारे रखड़ी रतन जड़ाजो जी
वीरा काना ने झाल घड़ाजो जी म्हारा झूमका रतन जड़ाजो जी
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो जी
वीरा आप आजो ने भावज लाजो
वीरा सरदार भतीजा लारे लाजो जी वीरा रमझमा "
वीरा हीवड़ा ने हस घड़ाजो म्हारा माला पाट पुवाजो जी
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो
वीरा बह्या ने चूड़ला चिराजो, म्हारे गजर मुजरा लगाओ जी
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो जी
वीरा पगल्या ने पांयल लाजो, म्हारे घुगरा उथल पुवाजो जी "
वीरा रमाझमा से म्हारे आजो

२ ओ वीरा जी माथा रा परवाना
ओ वीरा जी कानारा परवाना
भम्मर घडाव रे सतवन्ता, वेसर घडाव रे कुलवन्ता
ओ वीरा जी तमारी जोड़ी का उज्जैण सिधारिया रे कुलवन्ता
पोथी सी बाचे रे सतवन्ता
ओ भावज तमारी जोड़ी की मेवा मिठाई बांटी रे कुलवन्ती
पानीड़ा सिधारे री कुलवन्ती, मइडो बिलावे री कुलवन्ती
ओ बैंव्या तमारी जोड़ी की आरती सजावे री सतवन्ती

(इ)

वनड़ा-वनड़ी

१ राजा, रासे तम बगलो बंदा जाजो
मैं रउगा अकेली तम जल्दी आ जाजो
छज्जा गिरी होती ईंटडी मे मरी होती
राजा रासे तम भूलो बंदा जाजो
मैं भूलूं अकेली तम जल्दी आ जाजो
आमली की डाली गिरी होती मैं मरी होती
राजा रासे तम बाग लगा जाजो
हूं रहूँगी अकेली जल्दी आ जाजो
उपर से फूल गिरा होता, मरी बच गई मैं मरी होती, राजा ''

२ राजा तम उज्जैण रा खेडा, म्हारा मेला आजो
ए राजा, तम रायेरा जोदा, पूत केवाया रे
नव रंगिया ढोला रे, मेला मे झोलो दे गई
ए राजा तमारी मा जी तो गगा बउ
ए राजा तमारी काकी तो इन्दा बउ
सूरज दुवार्या, पालखे हिदाया आंचला
धवाया रे नवरगिया ढोला।
ए राजा तमारी बैन्या तो सम्पत बई
आरती सजोडे मोतीडा सवारे तमे तिलक करे
वार्या पानी पिलावे रे नवरगिया ढोला।
ए राजा तमारी गोरी तो धूरा बई
ए सेज बिछाए फूलडा बखेरे
पगल्या से चिब द पखो ढोने
ए अङ्गाती लगावे पगाती लगावे
तम पे पंखो ढोले रे नवरगिया ढोला।

(इ) बनड़ा

१ ओ जी बना सा सुनो म्हारी बात, कोटा की नौकरी मत कर जो जी
बूंदी का नौकर भले रीजो जी
ओ जो बना सा सुनो म्हारी बात, कोटा का नौकर मत रीजो जी
वा तो महीनो साडा तीस को जा दस का घडावा बाजूबन्द
मोहन माला बीस की जी
ओ जी बना सा सुनो म्हारी बात, उज्जैन का नौकर मत रीजो जो
इन्दौर का नौकर भले रीजो जो, मईनो तो साडा तीस को जी
ओ जी बना सा

६ ओ जी सासू जी सुनो म्हारी बात, बना सा परणे दूसरी जो
एक छोडी ने लावो दोई चार, म्हारा सरीको नई मिले जी
ओ जो, सासू जी सुनो म्हारी बात, बना सा परणे दूसरो जो
कोटा की लाजो दोई चार म्हारा सरीकी नइ मिने जो
ओ जी सासू जो सुनो म्हारी बात, बना सी परणे दूसरो जी
इन्दौर की लाजो सौ ने पचास, म्हारा सरकी नइ मिले जी
ओ जी सासू जो सुनो म्हारी बात, बना सा परणे दूसरी जी ।

(इ) गाल् गीत

१ ऊँची सी नगरी नीची सी नगरी, वालो पनिहारी
या तो रमझम पानी चाली, वा तो छमछम चाली, तो आडे मिलो गया
लाडू की मिजवानो ओ दारी पेडा की मिजवानी
ओ दारी घेवर की मिजवानो, ऊँची सी
ने जरी को दुपट्टो ओढायो
ओ दारी वायल की मिजवानी, आ दारी पोलकाँ की मिजवानी
वा तो रमझम करती पानी चाली, ऊँची सी नगरी

२ घोडो हिंस्यो रे बागड बडडै चढो घोलो घाडा सतरगी लगाम
सीतल जी की जेळू पूछे रे दादा किको घोडो
थारा यार को घोडो, जागीरदार घाडो, थानेदार को घोडो
दाणा दऊँ रे घोडा पानी पाऊँ रे घोडा, चारो नीरु रे घोडा
थई थई रे घोडा भाई भाई रे घोडा, घोडो हिंस्यो ने बागड बडडे चढी ।

(ड)

भैरूजी

१ कोन नगर से आया सेलीवाला, कोन नगर से आया मोतीवाला
कठे रे कठे ओ थारी थापना जो
नार भरवाडा से आया म्हारी गोरी
मण्डोवर ओ थारी थापना जो
एक झडूल्यो दो सेलीवाला खपरज ओ खपरे भरावा चूरम्या चूरमाजी
दूजो झडूल्यो दो सेलीवाला, खपरज ओ खपरे भरावा खोपरा जी
अगयो झडूल्यो दो सेलोवाला, खपरज ओ खपरे भरावा तलवट बाकलाजी
चोथो झडूल्यो दो सेलीवाला, खपरज ओ खपरे भरावा लूची लापसी
पाचमो झडूल्यो दो सेलीवाला मुकटत ओ मुकटो जडावा साचा मोती को जी
पाच झडूल्या दिया सेलोवाला, पांचा एइ पाचा राखो सजीवता जो।

२ भेरुजी रमझम बाजे तमारा घूगरा
म्हारा आगन बाज्यो जगी ढोल
कलिया छायो मरवो मोगरो
मेरुजी जो तम बाजोट्या का साबल्या
सुतार्‌या को बेटो हाजर होय, कलिया
भेरुजी जो तम कळस्या का साबल्या
कुमारया को बेटो हाजर होय, कलिया
भेरुजी जो तम फुलडा का साबल्या
मालो का बेटो हाजर होय, कलिया
मेरुजी जा तम छत्तर (छत्र) का माबल्या
सुनारिया को बेटो हाजर होय, कलिया
मेरुजी जो तम नारेला का साबल्या
बाणया को बेटो हाजर होय, कलिया
मेरुजी जो तम मदरा का साबल्या
कलाल्या को बेटो हाजर होय, कलिया
भेरुजी जो तम पूजा का सावल्या
पटेल्या को बेटो हाजर होय, कलिया

(उ)

प्रभाती

१ मैथी का लगन लिखाडिया, थावर खोटे वार
वाडी नो बाथरो सब साग ना सिरदार
काका करेलो जाने चालसी, काकी कन्दोरी साथ
आदो तो दादो जाने चालिया मिरच भाभी साथ
बाडी नो बाथरो
गाजर गाडा जोतिया तू बो तो घर बैठो जाय
लोलरी लटको करया जीजी चन्दलोई साथ
वाडी नो बाथरो
थूली ने ठनठन मानियो, माय मेलावो दूध
चावल चटपट माण्डियो मात्र मेरावो खाड
मूली ने मैयो दाई परणाजा, करसा ता हिनविन वात
वाडी नो
थाके तो कावा करण सी मैथे तो देसो छणकार
वाडी नो

२ आसढ महिने तुलसा रोप हो दिया
सावन महिने तुलसा दोई दोई पत्ता, सावले गुणवता
भादवा मे भर भर आये
कुवार महिने तुलसा सकल कु वारा, सावले
कार्तिक महिने तुलसा परणे मुरारी
अगहण महिने तुलसा याज् सिधारिया
पौस महिने तुलसा पौढे मुरारी
माह महिने वसन्त हो पचमी, सावने
फागण होली खेल्या हो मुरारी
चैत महिना वाग मे सिधारिया हो
वैसाख धूनी तापी हो मुरारी
जेठ महिना बैकुण्ठ सिधारिया
दुनिया रल-छल हो जाये मुरारी
कुँवारी गावे ने अच्छा अच्छा वर पावे
परणी गावे पुत्र खिलावे
विधवा हो गावे वैकुण्ठ हो सिधारे
कहत कबीरा सुण भई साधू चरण म शीश नवावे हो मुरारी

सन्दर्भ ग्रन्थ

(अ) हिन्दी

१ आर्य भाषा और हिन्दी (डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी)
२ उत्तरी भारत की संत परम्परा (परशुराम चतुर्वेदी)
३ कबीर ग्रन्थावली
४ कबीर वचनावली
५ कबीर बीजक
६ कला और संस्कृति (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल)
७ कविता कौमुदी (भाग ५ वाँ)
८ काव्य के रूप (गुलाब राय)
९ कीर्तिलता (विद्यापति)
१० गोरखबाणी
११ चन्द्रसखी के भजन (ठा० रामसिंह)
१२ चन्द्रसखी और उनका काव्य (पद्मावती शबनम)
१३ छत्तीसगढ के लोकगीत (श्यामाचरण दुबे)
१४ जायसी ग्रन्थावली
१५ जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त (सुधांशु)
१६ ढोला मारू रा दूहा
१७ थेरी गाथाएँ (भरतसिंह उपाध्याय)
१८ धरती गाती है (देवेन्द्र सत्यार्थी)
१९ धीरे बहो गंगा ,,
२० नाथ-सम्प्रदाय (डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी)
२१ निमाडी लोकगीत (रामनारायण उपाध्याय)
२२ पालि साहित्य का इतिहास (भरतसिंह उपाध्याय)
२३ प्राचीन साहित्य (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)
२४ प्रकृति और हिन्दी काव्य (डॉ० रघुवंश)
२५ पृथ्वी पुत्र (वासुदेवशरण अग्रवाल)
२६ बरवै रामायण
२७ बाघक्षेत्र के भील भिलाले (प्रतिभा निकेतन, उज्जैन)
२८ बिहारी सतसई
२९ बीसलदेव रासो
३० ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन (डॉ० सत्येन्द्र)

३१ भारतीय लोक-साहित्य (श्याम परमार)
३२ मानव समाज (राहुल सांकृत्यायन)
३३ मालवी लोकगीत भाग १ २ एव ३, (अप्रकाशित)—चिन्तामणि उपाध्याय
३४ मालवी दोहे (अप्रकाशित) —चिन्तामणि उपाध्याय
३५ मालवी लोकगीत (श्याम परमार)
३६ मालवी और उसका साहित्य "
३७ मिश्र बन्धु विनोद, भाग १ एव २
३८ राजस्थानी लोकगीत (सूर्य करण पारीख)
३९ राजस्थान के लोकगीत (सूर्य करण पारीख एव नरोत्तम स्वामी)
४० राजस्थानी भाषा और साहित्य (मोतीलाल मेनरिया)
४१ रतनसार
४२ रामचरित मानस
४३ लहर (प्रसाद)
४४ विवेचनात्मक गद्य (महादेव वर्मा)
४५ विश्व की रूपरेखा (राहुल सांकृत्यायन)
४६ साहित्य विवेचन (क्षेमचन्द्र सुमन)
४७ हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण (डा० किरणकुमारी गुप्ता)
४८ हिन्दी काव्य म निर्गुण सम्प्रदाय (बडथ्वाल)
४९ हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग (डा० नामवरसिंह)
५० हिन्दी साहित्य की भूमिका (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)
५१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल "
५२ हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)
५३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)

मॉच की पुस्तकें

१ राजा भरथरी
२ देवर भौजाई
३ नागजी दूदजी
४ सेठ-सेठानी
५ ढोला मारूनी
६ हीर राँझा (हस्तलिखित)
७ विक्रमाजीत "
८ मदनसेन "

(आ) गुजराती–मराठी

गुजराती

१ चूंदडी, भाग १ एव २ (झवेरचन्द मेघाणी)
२ रढियाली रात, भाग १, २, ३ एव ४ ,,
३ सोरठी गीतकथाओ ,,
४ सौराष्ट्र नी रसधार भाग १ २ एव ४ ,,
५ लोकगीत (रणजीतराय महता)

मराठी

६ अपौरुषेय वाङमय (कमलाबाई देशपाण्डे)
७ लोक साहित्याचे लेणे (मालती दाण्डेकर)
८ वरहाडी लोकगीते (पा श्र गोरे)
९ साहित्याचे मूलधन (कानेलकर)

(इ) पत्र-पत्रिकाएं

१ जनपद (त्रैमासिक) खण्ड १, २, ३ एव ४
२ लोककला (त्रैमासिक)
३ मरुभारती (त्रैमासिक)
४ बुद्धिप्रकाश (गुजराती त्रैमासिक)
५ सम्मेलन पत्रिका (लोक सस्कृति अङ्क)
६ विक्रम (मासिक) उज्जैन
७ हस ,, ,,
८ वीणा ,, इन्दौर
आजकल ,, दिल्ली

जयाजी प्रताप (लश्कर), मध्यभारत सन्देश (लश्कर), धर्मयुग, हिन्दुस्तान आदि साप्ताहिक पत्रों के साथ इन्दौर के दैनिक पत्र–नई दुनिया, जागरण, नव प्रभात एव इन्दौर समाचार आदि के साप्ताहिक परिशिष्ट एव विशेषांक।

३१ भारतीय लोक-साहित्य (श्याम परमार)
३२ मानव समाज (राहुल सांकृत्यायन)
३३ मालवी लोकगीत भाग १, २ एवं ३, (अप्रकाशित)—चिन्तामणि उपाध्याय
३४ मालवी दोहे (अप्रकाशित) —चिन्तामणि उपाध्याय
३५ मालवी लोकगीत (श्याम परमार)
३६ मालवी और उसका साहित्य "
३७ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १ एवं ३
३८ राजस्थानी लोकगीत (सूर्य करण पारीक)
३९ राजस्थान के लोकगीत (सूर्य करण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी)
४० राजस्थानी भाषा और साहित्य (मोतीलाल मेनारिया)
४१ रत्नसार
४२ रामचरित मानस
४३ लहर (प्रसाद)
४४ विवेचनात्मक गद्य (महादेवी वर्मा)
४५ विश्व की रूपरेखा (राहुल सांकृत्यायन)
४६ साहित्य विवेचन (क्षेमचन्द्र सुमन)
४७ हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण (डा० किरणकुमारी गुप्ता)
४८ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (बडथ्वाल)
४९ हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग (डा० नामवरसिंह)
५० हिन्दी साहित्य की भूमिका (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)
५१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल "
५२ हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)
५३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)

माँच की पुस्तकें

१ राजा भरथरी
२ देवर भोजाई
३ नागजी दूदजी
४ सेठ सेठानी
५ ढोला मारूनी
६ हीर राझा (हस्तलिखित)
७ विक्रमाजीत "
८ मदनसेन "

(आ) गुजराती-मराठी

गुजराती

१ चूंदडी, भाग १ एव २ (झवेरचन्द मेघाणी)
२ रढियाली रात, भाग १, २ ३ एव ४ "
३ सोरठी गीतकथाओ ,,
४ सौराष्ट्र नी रसधार, भाग १ २ एव ४ "
५ लोकगीत (रणजीतराय मेहता)

मराठी

६ अपौरुपेय वाङमय (कमलाबाई देशपाण्डे)
७ लोक साहित्याचें लेणे (मालती दाण्डेकर)
८ वरहाडी लोकगीतें (पा श्र गोरे)
६ साहित्याचे मूलधन (कालेलकर)

(इ) पत्र-पत्रिकाएं

१ जनपद (त्रैमासिक) खण्ड १, २, ३ एव ४
२ लोककला (त्रैमासिक)
३ मरुभारती (त्रैमासिक)
४ बुद्धिप्रकाश (गुजराती त्रैमासिक)
५ सम्मेलन पत्रिका (लोक सस्कृति अङ्क)
६ विक्रम (मासिक) उज्जैन
७ हंस " "
८ वीणा " इन्दौर
आजकल " दिल्ली

जयाजी प्रताप (लश्कर), मध्यभारत सन्देश (लश्कर), धर्मयुग, हिन्दुस्तान आदि साप्ताहिक पत्रो के साथ इन्दौर के दैनिक पत्र-नई दुनिया, जागरण, नव प्रभात एव इन्दौर समाचार आदि के साप्ताहिक परिशिष्ट एवं विशेषाक।

(ई) संस्कृत, प्राकृत आदि

१ अग्निपुराण
२ अथर्ववेद
३ अर्थशास्त्र (कौटिल्य)
४ अभिज्ञान शाकुन्तल
५ अभिनव भारती
६ ऋग्वेद
७ कामसूत्र
८ काव्यालंकार
९ काव्य मीमांसा
१० काव्य प्रकाश
११ गीत-गोविन्द
१२ थेरी गाथाएँ (पालि)-राहुल सांकृत्यायन आदि द्वारा सम्पादित
१३ दशरूपक
१४ नाट्य शास्त्र (भरत)
१५ प्रतापरुद्रीय
१६ प्रबन्ध चिन्तामणि
१७ प्राकृत-सर्वस्व
१८ बाल रामायण
१९ मनुस्मृति
२० मेघदूत
२१ यजुर्वेद
२२ याज्ञवल्क्य स्मृति
२३ रघुवंश
२४ वाल्मीकि रामायण
२५ [illegible]
२६ शतपथ ब्राह्मण
२७ श्रीमद्भगवद्गीता
२८ सिद्धान्त कौमुदी
२९ सुभाषित रत्नाकर
३० [illegible]
३१ हर्षचरित्

(उ) अंग्रेजी

1 The age of Imperial Kanauj
2 Archer, Notes on the Riddle in India
3 The Age of Imperial Unity
4 Botkin, A Treasury of Western Folk Lore
5 Bacon's Essay's
6 Bacon s (Francis) Selection
7 C E M Joad, The Mind and its working
8 Census Report of Central India, Part XVI, 1931
9 Charles Darwin, The expression of emotions in man and animals
10 Ernest Haekel, The Riddle of the Universe (Thinkers Library)
11 Encyclopaedia Britanica Vol 9
12 Fleet, C I I
13 Fowler D Brooks, Child Psychology
14 Frezer J G , Golden Bough, (Abridged Edition)
15 Frezer J G Totemism Vol 1
16 Frezer J G Folklore in Old Testament
17 George Sampson, Cambridge History of English Literature
18 Hoffding, The Modern History of English Literature
19 H L Chhiber, Physical Basis of Geography of India Vol I
20 H C Ray, Dynastic History of Northern India Vol II
21 Historical Inscriptions of Gujrat Part III
22 Humour in American Songs (Arthur Loccessor)
23 J N Sarkar, Short History of Aurangzeb
24 James Chied, The English and Scottish Popular Ballads
25 K B Das, A study in Orrisan Folklore
26 K M Munshi, The Glory that was Gurjardesa, Part III
27 Lomax, Folk songs of U S A
28 L R Brighwell, The Miracles of life
29 Mc Dougall, An introduction to Social psychology.
30 Malcolm, Memoirs of Sir John Malcolm Part II

31 New History of the Indian People Part II
(Bhartiya Itihas Parishad)
32 Price and Bruce, Chemistry and Human Affairs
33 Randolph, Ozark Folk Songs
34 Spencer (Herbert) Literary Style and Musics
35 Saletore, Life in Gupta Age
36 Taylor, (E B) Anthropology Vol I & II (Thinkers Library)
37 The History and Culture of the Indian People Vol I
38 V Elvin, The Indian Riddle Book No 13 and 14
39 V Smith, Oxford History of India